मेम:साहब

મેમસાહેબ

નિમાઈ ભટ્ટાચાર્ય



मेमसाहब / निमाइ भट्टाचार्य

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

जिनके आग्रह और उत्साह से

'मेम साहब'

का प्रकाशन हो सका

उन कल्याण-कामी भैया, प्रिय मित्र और
हृदयवान् पाठक—

श्री तरुणकान्ति घोष को

—निमाइ

There are two tragedies in life.
One is to lose your heart's desire,
The other is to gain it.

—G. B. S.

जो सब पास हैं, पास रहें, वे
जानें क्या जीवन में;
उन सबसे तुम कहीं पास हो
मेरे अंतर्मन में।

वेस्टर्न कोर्ट
जनपथ, नई दिल्ली

दोला भाभी,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। बहुत-बहुत शुक्रिया। तुम मुझे प्यार करती हो, स्नेह करती हो, जभी तो यह सपना देखा करती हो कि मैं घर-गिरस्ती बसाऊँ, सुखी होऊँ। मोम की गुड़िया सी गोरी खूबसूरत एक बहू मेरे घर आए। वह मेरी देख-भाल करे, मुझे जरा प्यार करे, मेरी जिंदगी को एक सहारा हो। यही तो? सोचने में बड़ा अच्छा लगता है। मेरी इस बेपेंदी के लोटे-सी जिंदगी में एक जूनियर दोला आकर पेंगें देती तो बेजा नहीं होता! शायद हो कि उसके आने से मैं अपने जीवन के साथ ऐसा जुआ नहीं खेलता, भविष्य से ऐसी आँख-मिचौनी नहीं करता। शायद हो कि उसका परस पाकर मेरे कलेजे का दर्द जाता रहता, निकट भविष्य में मसूरी या नैनीताल के किसी नर्सिंग होम में जाने की जरूरत नहीं पड़ती। और भी बहुत कुछ होता शायद। अपने आप से ही इस तरह अपने-आप को छिपाकर भागा-भागा नहीं फिरता। क्यों दोला भाभी?

सच पूछो तो व्याह करने की अपनी ख्वाहिश न रहने के वावजूद अगर कोई लड़की मुझसे शादी करे तो मुझे खास. एतराज नहीं है। वल्कि आग्रह ही है, कह लो। और फिर आग्रह न रहने की वजह भी क्या हो सकती है ?

तुमने खुद ही तो अट्ठारह या उन्नीस साल की उम्र से मेरे खोकन-दा को झुलाना शुरू कर दिया था। दोनों जने युनिवर्सिटी के दो फाटक से निकलते थे। तुम युनिवर्सिटी के फाटक पर से ही २-वी वस पर सवार होती थी और खोकन-दा मेडिकल कालेज के पीछे से नौ नंबर की वस पर सवार होता था। अलग-अलग वस पर चढ़ गए तो क्या हुआ ! दोनों ही जने उतर तो पड़ते थे लिंडसे स्ट्रीट के मोड़ पर। दिसंबर की हड्डी कँपानेवाली सर्दियों में तुम लोगों ने दार्जिलिंग के मजे लिये हैं। मुझे सब पता है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुमने अपने हाथ का कंगन और गले का वह मोटा हार वेच दिया था, इसीलिए लंवे अरसे तक शोध-कार्य करके खोकन-दा पी० एच-डी० हो पाए। और इसी तरह से झुलाते-झुलाते आखिर अचानक एक दिन तुमने उसे अपने झूले पर बिठा लिया।

यह सारा कुछ मेरा आँखों देखा है। और भी वहुतेरों को तो देखा। मंजरी, लिपि, कणिका—इन सब ने क्या कुछ कम खेल दिखलाया। मेरी जवानी की शुरुआत के उन कोमल और हरे दिनों में तुम सबने मुझे काफी प्रभावित किया। शायद हो कि वह प्रभाव अब भी खत्म न हुआ हो। और वह अनुराधा ? कैसी लंबी-लंबी डींगें, कितना लेक-चर, कितने तर्क-वितर्क ! शादी ? सॉरी, आखिरकार एक मर्द की प्यास मिटाने के लिए मेरा शिकार करोगे ? नेवर, नेवर, नेवर।

याद आता है भाभी ? अनुराधा आखिर चीखकर हेनरी फिल्डिंग को कोट करती हुई कहती, "हिज़ डिज़ाइन्स वेअर स्ट्रिक्टली ऑनरेवल, ऐज़ दी सेयिंग इज़ : दैट टु रॉव ए लेडी ऑफ हर फॉर्च्युन वाइ वे ऑफ मैरेज।"

आखिर अपनी उस अनुराधा ने भी एक दिन वर्दवान के नीतीश के गले में माला डाल दी। मैं उस समय दिल्ली में नहीं था। इसलिए अनु-राधा का न्योता मुझे देर से मिला और वह दृश्य देखने की खुशकिस्मती मुझे नसीव न हुई। लेकिन उसके वहूभात* और फूलशय्या† के दिन वर्द-

*वहूभात—नई वहू के आने की दावत। †फूलशय्या—कोहबर।

बान गए बिना मुझसे न रहा गया। पुराने काव्य में जिक्र आया है, अनंतयौवना उर्वशी के कैबरे डान्स के मारे स्वर्ग राज्य के मैनेजिंग डाइ-रेक्टरों के सारे होश-हवास दुरुस्त हो जाते थे। लेकिन ऋषि-मुनियों के नाच से उर्वशी का तपोभंग? नहीं, ऐसा नहीं पढ़ा। मगर हाँ, अनुराधा के मामले में मैंने देखा। एक टुटही जीप, दो सिपाही और एक तोंदवाले सब-इन्सपेक्टर के कंधे पर सवार होकर आइ० पी० एस० नीतीश ने वह नाच दिखाया कि वाह रे वाह, अनुराधा भी क्लीन बोल्ड हो गई।

मैंने उसी समारोह के दिन, भीड़-भाड़ जब जरा पतली हो गई, तो कानों-कान उससे पूछ लिया था—अनू, यह क्या! छि-छि। आखिर मर्द की प्यास मिटाने के लिए शिकार बन गई?

अनुराधा को तो तुम नस-नस पहचानती हो। वह टूट भले जायगी, झुक नहीं सकती। सो उसने शेक्सपियर के 'एँटोनी एँड क्लियोपेट्रा' से कोट करके कहा, "माइ सैलेड डेज व्हेन आइ वाज ग्रीन इन जजमेंट।"

वल्लाह! तुम लोगों की इन करतूतों को देखकर ब्याह करने की इच्छा मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है क्या? सोचता भी हूँ कभी-कभी, काश, मैं भी अगर खोकन-दा या नीतीश की तरह...

खैर, जाने भी दो। यह तो कहो दोला भाभी, दुलहा के लिहाज से मैं क्या बहुत ही गया-बीता हूँ? शायद नहीं, है न? उतना पढ़ा-लिखा जरूर नहीं, लेकिन कई बरस कालेज-युनिवर्सिटी जाता रहा हूँ। अखबार के विशेष प्रतिनिधि की नौकरी भी निहायत बुरी नहीं है। खूब ठाट-बाट है। तनखा भी कोई कम नहीं मिलती। घरबार न सही, कार है! नायब न सही, स्टेनो तो है। और फिर मैंने यह सुना है कि आजकल लड़कियाँ इंग्लैंड-रिटर्न शरारती लड़कों को खूब पसंद करती हैं। लड़कियों के माँ-बाप वैसे लड़कों को स्मार्ट और सॉफिस्टिकेटेड समझ कर दामाद बनाने में ना-नुकुर नहीं करते। उस लिहाज से मैं ओवर-क्वालिफाइड हूँ! एक बार नहीं, मैं विलायत बहुत बार गया हूँ। लोग-बाग कहते हैं, शरारत-शैतानी भी की है।

एक बात और भी है। इंग्लैंड हो आया था, इसलिए पटलडांगा के गोविंद को फिल्मी सितारे जैसा इनकम टैक्स फ्री दस हजार रुपया ब्लैक-मनी मिला था। सो अपना भी भविष्य बड़ा उज्ज्वल लग रहा है। तिस पर जब तुम जैसी हाई फर्स्ट क्लास वाली एजेन्ट है! गाँठ के मोटे और अकल के खोटे लोगों की किसी उड़ना चाहने वाली बेटी का शिकार

सच पूछो तो व्याह करने की अपनी ख्वाहिश न रहने के बावजूद अगर कोई लड़की मुझसे शादी करे तो मुझे खास एतराज नहीं है। वल्कि आग्रह ही है, कह लो। और फिर आग्रह न रहने की वजह भी क्या हो सकती है?

तुमने खुद ही तो अट्ठारह या उन्नीस साल की उम्र से मेरे खोकन-दा को झुलाना शुरू कर दिया था। दोनों जने युनिवर्सिटी के दो फाटक से निकलते थे। तुम युनिवर्सिटी के फाटक पर से ही २-वो बस पर सवार होती थी और खोकन-दा मेडिकल कालेज के पीछे से नौ नंबर की बस पर सवार होता था। अलग-अलग बस पर चढ़ गए तो क्या हुआ! दोनों ही जने उतर तो पड़ते थे लिंडसे स्ट्रीट के मोड़ पर। दिसंबर की हड्डी कँपानेवाली सर्दियों में तुम लोगों ने दार्जिलिंग के मजे लिये हैं। मुझे सब पता है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुमने अपने हाथ का कंगन और गले का वह मोटा हार बेच दिया था, इसीलिए लंबे अरसे तक शोध-कार्य करके खोकन-दा पी० एच-डी० हो पाए। और इसी तरह से झुलाते-झुलाते आखिर अचानक एक दिन तुमने उसे अपने झूले पर बिठा लिया।

यह सारा कुछ मेरा आँखों देखा है। और भी बहुतेरों को तो देखा। मंजरी, लिपि, कणिका—इन सब ने क्या कुछ कम खेल दिखलाया। मेरी जवानी की शुरुआत के उन कोमल और हरे दिनों में तुम सबने मुझे काफी प्रभावित किया। शायद हो कि वह प्रभाव अब भी खत्म न हुआ हो। और वह अनुराधा? कैसी लंबी-लंबी डींगें, कितना लेक्चर, कितने तर्क-वितर्क! शादी? सॉरी, आखिरकार एक मर्द की प्यास मिटाने के लिए मेरा शिकार करोगे? नेवर, नेवर, नेवर।

याद आता है भाभी? अनुराधा आखिर चीखकर हेनरी फिल्डिंग को कोट करती हुई कहती, "हिज़ डिज़ाइन्स वेअर स्ट्रिक्टली ऑनरेबल, ऐज़ दी सेयिंग इज़: दैट टु रॉब ए लेडी ऑफ हर फॉरच्युन बाइ वे ऑफ मैरेज।"

आखिर अपनी उस अनुराधा ने भी एक दिन वर्दवान के नीतीश के गले में माला डाल दी। मैं उस समय दिल्ली में नहीं था। इसलिए अनुराधा का न्योता मुझे देर से मिला और वह दृश्य देखने की खुशकिस्मती मुझे नसीब न हुई। लेकिन उसके बहूभात* और फूलशय्या† के दिन वर्द-

*बहूभात—नई बहू के आने की दावत। †फूलशय्या—कोहबर।

वान गए बिना मुझसे न रहा गया। पुराने काव्य में जिक्र आया है, अनंतयौवना उर्वशी के कैबरे डान्स के मारे स्वर्ग राज्य के मैनेजिंग डाइरेक्टरों के सारे होश-हवास दुरुस्त हो जाते थे। लेकिन ऋषि-मुनियों के नाच से उर्वशी का तपोभंग ? नहीं, ऐसा नहीं पढ़ा। मगर हाँ, अनुराधा के मामले में मैंने देखा। एक टुटही जीप, दो सिपाही और एक तोंदवाले सब-इन्सपेक्टर के कंधे पर सवार होकर आइ० पी० एम० नीतीश ने वह नाच दिखाया कि वाह रे वाह, अनुराधा भी क्लीन बोल्ड हो गई।

मैंने उसी समारोह के दिन, भीड़-भाड़ जब जरा पतली हो गई, तो कानों-कान उससे पूछ लिया था—अनू, यह क्या ! छि-छि। आखिर मर्द की प्यास मिटाने के लिए शिकार बन गई ?

अनुराधा को तो तुम नस-नस पहचानती हो। वह टूट भले जायगी, झुक नहीं सकती। सो उसने शेक्सपियर के 'ऐंटोनी ऐंड क्लियोपेट्रा' से कोट करके कहा, "माइ सैलेड डेज व्हेन आइ वाज ग्रीन इन जजमेंट।"

वल्लाह ! तुम लोगों की इन करतूतों को देखकर ब्याह करने की इच्छा मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है क्या ? सोचता भी हूँ कभी-कभी, काश, मैं भी अगर खोकन-दा या नीतीश की तरह...

खैर, जाने भी दो। यह तो कहो दोला भाभी, दुलहा के लिहाज से मैं क्या बहुत ही गया-बीता हूँ ? शायद नहीं, है न ? उतना पढ़ा-लिखा जरूर नहीं, लेकिन कई बरस कालेज-युनिवर्सिटी जाता रहा हूँ। अखबार के विशेष प्रतिनिधि की नौकरी भी निहायत बुरी नहीं है। खूब ठाट-बाट है। तनखा भी कोई कम नहीं मिलती। घरबार न सही, कार है ! नायब न सही, स्टेनो तो है। और फिर मैंने यह सुना है कि आजकल लड़कियाँ इंग्लैंड-रिटर्न शरारती लड़कों को खूब पसद करती हैं। लड़कियों के माँ-बाप वैसे लड़कों को स्मार्ट और सॉफिस्टिकेटेड समझ कर दामाद बनाने में ना-नुकुर नहीं करते। उस लिहाज से मैं ओवर-क्वालिफाइड हूँ ! एक बार नहीं, मैं विलायत बहुत बार गया हूँ। लोग-बाग कहते हैं, शरारत-शैतानी भी की है।

एक बात और भी है। इंग्लैंड हो आया था, इसलिए पटलडांगा के गोविंद को फिल्मी सितारे जैसा इनकम टैक्स फ्री दस हजार रुपया ब्लेक-मनी मिला था। सो अपना भी भविष्य बड़ा उज्ज्वल लग रहा है। तिस पर जब तुम जैसी हाई फर्स्ट क्लास वाली एजेन्ट है ! गाँठ के माटे और

पिका दोला सरकार के लिए वेशक कोई कठिन काम नहीं है।
लेकिन हाँ, उससे पहले मेम साहव का उपाख्यान सुन लेना तुम लोगों
लए जरूरी है। मेरी उस काली मेम साहब का तुम लोगों ने काफी
ों तक मखौल-मजाक उड़ाया है। हो सकता है, मन ही मन कुछ
रणा भी वना रक्खी हो। तुम्हीं अकेली क्यों, बहुतों के मन में मेरी
म साहव के लिए वहुत-वहुत सवाल हैं। किसी-किसी का ख्याल है, मेम
ाहव असल में कोई है ही नहीं। पूरी की पूरी धोखा-धड़ी है यह, चार
सौ वीसी। और फिर कोई-कोई यह भी सोचते हैं, मेम साहब से मैं महज
प्यार ही नहीं करता, उससे व्याह भी किया है मैंने। तरह-तरह के लोगों
से इस संवंध में मेरे पास चिट्ठियाँ भी कम नहीं आती हैं।

जिनसे भी नया-नया परिचय होता है, वही पूछते हैं, मेम साहब
कौन है? औरत-मर्द, वूढ़ा-वूढ़ी, सवका वस यही एक सवाल। अभी-अभी
उस दिन दिल्ली युनिवर्सिटी की एक साँवली-सलोनी से भेंट हुई। अपने
घर ले गई। थिन-अरारूट के दो विस्कुट, एक संदेश और एक प्याली चाय
देकर होंठों ही होंठों मुस्कुराते हुए पूछा, अम्मा जानना चाहती थीं, मेम
साहव का सही नाम क्या है?

कोई साल भर पहले सिउड़ी से एक वूढ़ी ने सुर्ख लाल रंग की
सिल्क की साड़ी पार्सल से भेजी थी। साड़ी के साथ ही मुख्तसर सी एक
चिट्ठी। लिखा था, तुम्हारी मेम वीवी के लिए आशीर्वाद स्वरूप यह साड़ी
भेज रही हूँ। इस साड़ी में विदेशी मेम अच्छी ही फवेगी। माँ जैसी स्नेह
मयी उन वूढ़ी को मैंने लिखा, माँ जी, इस साड़ी को आप जतन से र
दें। आपकी मेम वहू के साथ कभी वहीं जाकर यह साड़ी ले आऊँगा।

मेम साहव के नाम पर जाने कितना कुछ होता रहता है! इसलि
अव मैंने सोच लिया है, तुम लोगों से यों लुका-छिपी न करके पूरा कि
ही खोल कर कह डालूँ। और, मेरे जीवन का यह सारा इतिहास
विना तुम्हें शादी तै कराने में भी कठिनाई हो सकती है। नैतिकत
तकाजा है, तुम्हें सव कुछ लिखूँ, इससे पहले मेम साहव की इजाज
लूँ। लेकिन आज तो वह इतनी दूर चली गई कि उसकी इजाज
सकना असंभव-सा है। औ र हाँ, सही पता भी तो मुझे नहीं मालूम

दो

ऐसा लगा, मेरी चिट्ठी पढ़कर तुम घबरा गई। पिछली चिट्ठी में खास कुछ नहीं लिखा। भूमिका भी पूरी नहीं हुई। लिहाजा अभी से हौलदिल होने की क्या बात है? और फिर तुम स्त्री तो हो न। पराए प्रेम के मामले में तुम स्त्रियों की उत्सुकता का अंत नहीं होता। वह चाहे पढ़ी-लिखी औरत हो, चाहे अनपढ़, प्रेम-पत्रों के सेंसर में शिरोमणि होती हैं। युनिवर्सिटी में रहते समय देखा तो है, लेक्चर सुनना, कॉफी हाउस में अड्डा मारना जैसा ही दूसरों का प्रेम-पत्र उड़ा देना लगभग सभी लड़कियों का रोजमर्रे का काम था। निरे गँवई गाँव में जाओ, वहाँ भी देखोगी कि पारुल भाभी को चिट्ठी को पढ़े बिना अन्नपूर्णा ननद जी हरगिज नहीं देने की। यह भी सुना है, स्कूल-कालेज में लड़कियों की चिट्ठियाँ आती हैं, तो दीदियाँ बिना एक नजर डाले नहीं रह सकती। छात्राओं की अभिभावकता के बहाने चुरा-छिपा कर प्रेम-पत्र पढ़ लेने को किसी हद तक विधि-सम्मत कहा जा सकता है, उससे ज्यादा कुछ नहीं।

और प्रेम की कहानी जानने में औरतों को अरुचि? इस कलजुग में जानें और भी कितना क्या देखूंगा, सुनूंगा। बिटिया का ब्याह हो जाता है तो माँ तक यह जानना चाहती हैं, हाँ री लल्ली, जमाई ने नेह-जतन किया था न? हजार हो, माँ ही तो ठहरीं! बिलकुल परदा उघार कर सब कुछ पूछ नहीं सकती, लिहाजा घुमा-फिरा कर नेह-जतन की पूछताछ कर लेती हैं। कोहबर तो चाची-मौसी से लेकर दीदियों की भीड़ से खचाखच भरा रहता है।

सती-सावित्री, सीता-दमयंती से शुरू करके हम सबकी माँ-मौसियाँ जिस सभ्यता और संस्कृति की पताका को ढोती आई हैं, हजारों बाधा-विघ्नों से जूझते हुए संस्कृति की जिस धारा को उन्होंने निर्मल रक्खा है, तुम आज उस महान् आदर्श से फिसलोगी, यह मैं सोच नहीं सका था।

सबसे बड़ी बात तो यह, जब मैं अपनी इच्छा से ही तुम्हें सब कह रहा हूँ, तो फिर तुम्हारे शर्म-संकोच की क्या वजह हो सकती है? और फिर यह बताओ, अपना यह इतिहास तुम्हारे सिवा कहूँ भी तो किससे? मुझसे तुम महज एक साल बड़ी हो, तो भी परिचय के पहले ही दिन से मैं तुम्हें प्यार करता रहा हूँ, श्रद्धा करता रहा हूँ। जिस दिन मैंने खोकन-दा के प्रति तुम्हारे प्रेम, भक्ति, श्रद्धा

तुम उसी दिन से मेरी दोला भाभी वनी हो। मेरे विद्यार्थी
के उन अंतिम दिनों में और मेरे कर्म-जीवन के पहले अध्याय
और खोकन-दा ने जिस तरह से मेरी मदद की है, मेरे प्रति जो
भूति दिखाई है, उसकी मिसाल नहीं मिल सकती। इसीलिए तो
नारे सुख-दुख में सबसे पहले तुम लोगों की याद आती है।

मेम साहब वाली वात मैंने जानकर नहीं वताई। तुम लोगों
वहुत भाँप जरूर लिया था, मगर जान नहीं सके थे। भगवान्
से मेरे दिल्ली आ जाने से नाटक और ज्यादा जम गया था। सो
था, तुम्हें और खोकन-दा को एक सरप्राइज दूँगा। इसीलिए कु
वताया। लेकिन अव देर करना ठीक नहीं होगा। तुम जब मे
कराने पर तुल गई हो, तो अव सव कुछ न वताना अन्याय होगा

न केवल मेम साहव, वल्कि मेरे जीवन में जो भी लड़कियाँ
तुम्हें उन सवके वारे में लिखूंगा। तुम्हें सव कुछ वताऊँगा। कुछ
छिपाऊँगा। कुछ और न सही, इतनी गारंटी तो तुम्हें मैं हलफ
दे सकता हूँ कि मेरी यह कहानी तुम्हें वुरी नहीं लगेगी। भापा
एडिट कर लो तो वह छपकर किताव वन सकती है।

सो, हे मेरी दोला भाभी, धीरज धरो! ऐ मेरे खोकन-दा
प्रिये, अपने भाई-से लक्ष्मण देवर पर कृपा करो, उसको इच्छ
करो!

बचपन में मैं गूंगा नहीं था, किसी अंग का खोटा भी नहीं, तो भी माँ शब्द का उच्चारण उस समय नहीं कर पाया, आज भी नहीं। आगे कभी कर सकूंगा, इसकी उम्मीद नहीं है। श्रद्धानन्द पार्क में मैं जिन लड़के-लड़कियों के साथ खेला करता था, उनका अजीब आचरण देखकर मैं काठ का मारा-सा रह जाता था। पाँच-छः साल को उम्र में मैं खुद ही बैठकखाना बाजार जाता और बिरजा मिष्टान्न भंडार से जलपान लाकर अकेले खाया करता था जबकि मेरे सभी संगी-साथी अपनी माँ या दीदी के हाथों खाया करते। खेलते-खेलते कहीं कोई जरा गिरा और मामूली चोट आई, या कि जरा छिल गया, सो वह देखते ही देखते अपनी माँ की गोद पर चढ़कर घर चला जाता। माँ से लिपट कर वे रोने लगते, पर एक कदम भी पैदल नहीं चल सकते। मेरे भी हाथ-पाँव वैसे बहुत बार छिले-कटे, खून निकला, मगर कहाँ, मैं तो नहीं रोया! मैं तो किसी की गोद पर चढकर घर नहीं गया! मुझे जरूर चोट नहीं लगती थी। बचपन में माँ को गँवा बैठने वाले बच्चों को जरूर चोट-वोट नहीं लगती, है न दोला भाभी?

इस पेट के लिए पिताजी को इतना ज्यादा बाहर रहना पड़ता कि मुझे तो खूब मौज था। अगल-बगल के घरों में घूम-घूम कर मैं बड़े मजे देखा करता। साँझ का अंधेरा जरा गाढ़ा हुआ नहीं कि पास-पड़ोस के घरों के लड़के नींद से बेखबर हो जाते, लेकिन मुझे कहाँ नींद आती थी! मैं तो पिताजी के इंतजार में रोज रात के दस-साढ़े दस बजे तक जगा बैठा रहता था।

सबसे मजा होता इम्तहान के समय। मेरे लगभग सभी दोस्तों की माँ दूध और मिठाई लिये लोहे के बड़े फाटक के बाहर खड़ी रहतीं। घंटी बजी नहीं कि लड़के बेतहाशा भागते, जाकर दूध-मिठाई खाते। लेकिन मेरे लिए तो कभी कोई दूध का ग्लास लेकर खड़ी नहीं रही। घंटी बजने पर मैं तो कभी बेतहाशा नहीं भागा, भागकर दूध-मिठाई नहीं खाई।

दशहरे पर सभी कितने कीमती और अच्छे चमकीले कपड़े पहनते! शाम के बाद सब वही कपड़े पहने, सजे-सँवरे माँ का हाथ पकड़ कर, दीदी की गोद पर चढ़कर, दुर्गा देवी को देखने के लिए जाते। और मैं, आगरपाड़ा का पैंट और कमीज पहन कर सुबह-दोपहर को इतना घूमा करता कि रात को बड़े आराम की नींद आती। विजया-दशमी के दिन उन लड़कों को कितने लोग आशीर्वाद देते, कितनी मिठाइयां दिया करते,

लेकिन पिताजी के सिवाय मुझे कोई आशीर्वाद भी नहीं देता, मिठाई भी नहीं।

मेरा बचपन, मेरी किशोरावस्था इसी तरह से बीती। उस समय तो बात दिमाग में नहीं आई, पर अब समझता हूँ कि पेड़ से अच्छा फूल-फल पाने के लिए थोड़ी खाद देने की जरूरत पड़ती है। बचपन में माँ के स्नेह की थोड़ी सी खाद मिली होती तो आज मैं इतना नीरस और कठोर बबूल का पेड़ नहीं होता। मेरा भी जीवन, हो सकता है, ओर-छोर तक फैले रेगिस्तान-सा नहीं होता।

माँ को खोते सभी हैं। कोई बचपन में, कोई किशोरावस्था में, कोई जवानी में, कोई बुजुर्ग होकर या कोई बुढ़ापे में। किशोरावस्था या जवानी में, बुजुर्ग होकर या बुढ़ापे में माँ को गँवाने में फिर भी थोड़ा-बहुत दिलासा है। लेकिन मुझ जैसे, जो बचपन में माँ को खो बैठते हैं, जिन्हें माँ के स्नेह के स्वाद तक को समझने का मौका नहीं मिलता और उसे खो बैठते हैं, उनके लिए क्या भरोसा है!

बहुतों को माँ नसीब नहीं है, लेकिन उन्हें हर कदम पर उनके स्नेह का स्पर्श मिलता है। माँ का कमरा, माँ का संदूक, माँ के असबाब—उनकी तसवीर रहने पर भी मन के परदे पर माँ की धुंधली-सी याद झाँक जाती है। मेरे फूटे भाग्य को इतना भी नसीब नहीं। निमतल्ला के मसान घाट पर माँ की एक तसवीर ली गई थी। पाँच रुपए पर उस तसवीर की तीन प्रतियाँ भी मिली थीं। लगातार डेरा बदलते रहने की वजह से दो प्रतियाँ जानें कहाँ गुम हो गईं और तीसरी, दीदी की गिरस्ती में भूखे दीमकों की भूख की जलन मिटा रही है। आदमी के जीवन में पहली और प्रधान नारी जो आती है, वह है माँ। उनका स्नेह, उनकी ममता, उनका चरित्र, उनका आदर्श ही हर बेटे के जीवन की पहली और सबसे बड़ी दौलत होती है। उसी नेह-परस, उसी ममता की दौलत से मैं सदा के लिए वंचित रह गया। इसीलिए जीवन में नारी की जरूरत और उसकी महत्ता को समझने में मुझे काफी समय लग गया।

छुटपन में ही माँ को खो बैठने और आसपास अपनी बहन या और किसी नारी के न होने का नतीजा यह हुआ कि अरसे तक स्त्रियों के संबंध में शंका और संकोच से परे होना मेरे लिए संभव न हो सका। अपनी किशोरावस्था की, अभी-अभी उस दिन की बात याद आ जाने से आज भी हँसी आती है।....

दरजा नौ से दस में गया था। डैने उगने शुरू हुए थे। हाफ पैण्ट के बजाय धोती पहनने लगा था। पूरी बाँह की कमीज की बाँह मोड़े बिना बुद्धू-बुद्धू-सा लगता। श्रद्धानन्द पार्क में मुहल्ले के लड़कों के साथ फुटबाल खेलने में आत्मसम्मान को खासी आँच-सी आती थी। तीसरे पहर का बस एक ही मन-बहलाव था, दो-चार साथियों के साथ मुहल्ले में यहां-वहां अड्डा मारना। मण्टू-दा के यहां मेरा आना-जाना था, घनिष्ठता थी। पूस की संक्रान्ति पर मण्टू-दा की माँ ने मुझे बड़े प्यार से पीठा* और खीर भी खिलाई थी। सुना था, मेरी दीदी के ब्याह के समय मण्टू-दा के घर के सभी लोगों ने बड़ी सहायता की थी। उस परिवार के हर किसी से मेरा परिचय था, उस घर की बहुतेरी बातें मुझे मालूम थीं। सिर्फ एक नन्दिनी के बारे में मुझे पता नहीं था। छोटानागपुर के पठार से मण्टू-दा की वह नटखट और किशोरी भतीजी अचानक कब इस महानगरी में पधारी थीं, इसकी मुझे खबर न थी। यह भी पता न था कि वह दरजा नौ से दस में पहुँच कर मिर्जापुर के वीणापाणि बालिका विद्यालय को धन्य बनाने के लिए कलकत्ता आई है। और भी बहुत कुछ नहीं जानता था। नहीं जानता था कि इस चौदह साल की ही उम्र में वह अपने जीवन-नाटक के नायक को ढूंढने के लिए निकल पड़ी है। यह सब कुछ मालूम नहीं था मुझे।

एक दिन का जिक्र है, कहानियों की कुछ किताबें लेकर मैं आ रहा था कि माथे पर कागज की चोट-सी लगने से मैं चौंक उठा। उठाया उसे। एक लिफाफा था। लिफाफे पर नाम-पता कुछ भी नहीं लिखा था। लिखा था—तुम्हारी चिट्ठी। तुम्हारी चिट्ठी! मतलब कि मेरी चिट्ठी। पल भर के लिए मैं घबरा गया। एकाध मिनट ठिठक कर मैं खड़ा भी रह गया था शायद। जरा देर में शायद चीख कर मण्टू-दा को पुकार ही उठता। लेकिन एकाएक किसी ने मानो मेरे दिमाग में एक सूझ दी। अपने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर एक बार देख लिया। उस बूढ़े काकातुआ के सिवा और कोई नहीं दिखाई दिया। मैंने लिफाफे को जरा घुमा-फिराकर देखा। ऊपर की लिखावट को कई बार पढ़ा—तुम्हारी चिट्ठी। उसके बाद जैसे ही दुतल्ले की तरफ नजर उठाई कि एक हँसमुख और खूबसूरत लड़की दिखाई पड़ गई।

*चावल का बना एक पकवान।

बात बहुत दिनों की हो गई। सब कुछ ठीक-ठीक याद नहीं है। लेकिन धुंधला-धुंधला-सा इतना याद है कि कैसा तो एक इशारा करके नन्दिनी दुबक गई थी। नारी-चरित्र का मुझे कोई अनुभव नहीं था, फिर भी यह समझने में मुझे जरा भी कठिनाई नहीं हुई कि यह चिट्ठी उसी की लिखी हुई है।

लगभग दौड़कर ही अपने घर आया। कमरे को अन्दर से बन्द करके चिट्ठी को पढ़ा। एक बार नहीं, अनेक बार। चिट्ठी की भाषा तो अब याद नहीं है, पर उसका भाव कुछ-कुछ याद है। नन्दिनी की उस चिट्ठी में कुछ तो आवेग था, कुछ उच्छ्वास। चिट्ठी से अच्छा भी लगा, डर भी लगा। उससे भी ज्यादा हैरान रहा। धनी की लाड़ली के जीवन-उत्सव में मेरा बुलावा! इस टूटी डोंगी पर सवार होकर क्या नन्दिनी जिन्दगी के समन्दर में चल पड़ेगी? मैं सोच भी न सका।

नन्दिनी ने उस पत्र का जवाब माँगा था। देने की हिम्मत नहीं पड़ी। हौसला भी नहीं हुआ। जवाब नहीं दिया, फिर भी दूसरी चिट्ठी मिली। उसमें यह इशारा था कि उसके मन के राज्य का राजकुमार मैं हूँ। उड़न-घोड़े पर सवार होकर मैं जाऊँगा और उसे अपनी जीवन-संगिनी बनाऊँगा। उसने ऐसे और भी अनेक सपने देखे थे। जिसकी जिन्दगी में किसी बात की कमी नहीं, विलासिता जिसका स्वभाव है—ऐसा बेसिर-पैर का सपना देखना उसके लिए हो सकता है स्वाभाविक हो। पर गरीबी की गुदड़ी में लिपटे मेरे जैसे किशोर के लिए ऐसा सपना देखना मुमकिन न था। जभी तो उसके इस बुलावे को मैं मान नहीं पाया। उसे मानने की न तो मुझमें जुर्रत थी, न ही हियाव था।

नन्दिनी से मैंने मुहब्बत नहीं की, किन्तु प्राणवन्त उस किशोरी को मैं कभी भूल न सकूँगा। उसने मेरे जीवन-यज्ञ में उद्‌बोधन-गीत गाया था। मेरे जीवन के रंगमंच से वह लड़की जरा उझक-झाँक कर ही हट गई थी, महत्त्व का कोई पार्ट अदा करने का उसे अवसर नहीं मिला, फिर भी मेरे लिए उसकी एक अनन्य भूमिका रह गई है। बी० ए० या एम० ए० पास कर लेने पर जीवन की विशाल पृष्ठभूमि में बीते दिनों की बहुतेरी यादें खो जाती हैं, खोती नहीं है पाठशाला के गुरुजी की याद! नन्दिनी मेरी वैसी ही एक अनमोल याद है। वह मेरे सुबह के आसमान की एक तारिका है। उस सितारे की जोत में मैं अपनी जिन्दगी की राह नहीं चल पाया या कि उसकी जरूरत नहीं हुई। न सही, फिर भी उसने

मेरे जीवन-दिग्दर्शन में मदद की थी। सबसे बड़ी बात कि उसने मुझे मेरे 'मैं' के आविष्कार में मेरी सहायता की थी।

मुहब्बत क्या है, उसकी जरूरत क्या है, यह मैंने उस समय नहीं समझा, नहीं जाना। नन्दिनी ने मुझसे क्यों प्यार किया, प्यार करके उसने चाहा *क्या था, पाया क्या था—मैं कुछ भी नहीं जानता।* सिर्फ इतना पता है कि मेरे सुख से उसे सुख मिलता था, मेरे दु:ख में उसने छिप-छिपकर आँसू भी बहाया है। इन सारी अनुभूतियों को छन्द में बाँध कर प्रकट करने का मौका उसे कभी नहीं मिला। लेकिन जब कभी वैसा मौका हाथ आया, नन्दिनी ने उसके सदुपयोग में कोई कोर-कसर नहीं की।

सरस्वती पूजा के पहले, कई दिन मरने की भी फुरसत नहीं रहती थी। खाने-पीने की बात तो दूर, सोने तक का समय नहीं मिलता था। सारा दिन, सारी रात रिपन स्कूल में ही गुजारा करता। नन्दिनी को पक्की खबर होती कि मैं कोई गरम कपड़ा साथ नहीं ले गया हूँ। साँझ के बाद किसी बहाने वह छिपकर मुझे ऊनी चादर दे आती थी। कहती, अजी, तुम्हें क्या सर्दी भी नहीं लगती? कहीं बुखार आ गया तो?

एक बार सच में मैं खूब बीमार पड़ गया था। नौ बजते न बजते बाबूजी तो चल देते। और लौटते रात के वही दस बजे। अखिल मिस्त्री लेन के उस मशहूर टुटहे मकान के अँधेरे कमरे में मैं अकेले पड़ा रहता। नन्दिनी के ही कहे मण्टू-दा के यहाँ से मेरा पथ्य आया करता। स्कूल आते-जाते—दोनों वक्त नन्दिनी मुझे देख जाया करती। थोड़ा-बहुत सेवा-जतन भी करती थी शायद।

यह सब अनुभव मुझे नहीं था। सिर्फ मेरे लिए कोई बैठी राह देखा करेगी; मुझे प्यार करके, मेरी सेवा मेरा जतन करके कोई मन ही मन तृप्ति का अनुभव करेगी, यह मैं सोच नहीं सकता था। मेरे जीवन में नन्दिनी ने ही इस अनसोचे अध्याय का आरम्भ किया।

मैट्रिक पास करने के बाद नन्दिनी बम्बई चली गई। मेरे जीवन के उस क्षणिक अध्याय का अन्त हो गया। लेकिन मेरे जीवन से वह एकबारगी विदा नहीं हो गई। नियमित रूप से उसके खत आया करते। और मेरे जन्मदिन पर उसकी शुभकामना आया करती। मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर या नेताजी सुभाष नहीं हूँ। मुझ जैसे एक निहायत मामूली आदमी के जन्मदिन पर कोई उत्सव या धूमधाम हो सकती है, यह बात मेरी

कल्पना से परे थी। मेरे जन्मदिन पर पिताजी दूब-धान से मुझे आशीर्वाद देकर अपने दफ्तर को चल देते। उस बार भी इस नियम में कुछ इधर-उधर नहीं हुआ। अपने टिफिन के पैसे बचाकर तीसरे पहर मेरे लिए साधारण-सी भेंट लाकर नन्दिनी ने मुझे अवाक् कर दिया।

नन्दिनी आज बहुत दूर चली गई है। पति-पुत्र के साथ सुख से अपनी घर-गिरस्ती कर रही है। उसको आज कितना काम है, कितनी जिम्मेदारी! इसके बावजूद मेरे जन्मदिन पर शुभकामना का तार भेजना वह कभी नहीं भूलती।

कलकत्ते से जाते समय नन्दिनी से मेरी मुलाकात नहीं हुई। एम० ए० पढ़ते समय तक आई० ए० एस० लड़के से उसका ब्याह हुआ। न्योता आया था। न्योते के साथ एक व्यक्तिगत पत्र भी था। लेकिन मेरे लिए उस समय बम्बई जा सकना किसी भी तरह सम्भव नहीं था। ट्यूशन के पेशगी रुपये लेकर मैंने पन्द्रह रुपये की करघे की एक साड़ी उसे भेजी थी। इस बीच अपने जीवन-संग्राम में मैं कुछ इस कदर रत हो गया था कि उसको याद करने तक की फुरसत न थी।

कोई दसेक साल बाद किसी काम से मैं गंगटोक गया था। तीन-चार दिन बाद कलकत्ता लौटते हुए सिलिगुड़ी आया। रास्ते में मजबूर होकर रुकना पड़ा। सेवक ब्रिज के पास धँसना गिरने से रास्ता बन्द हो गया था। कुली-मजदूर रास्ते को साफ कर रहे थे। मुझ जैसे और भी बहुत-से लोग कुदरत की इस कारगुजारी से खीज कर इधर-उधर घूम रहे थे। रास्ता साफ होने में और भी दो घण्टे की देर थी। बीच के इस लम्बे समय में बहुतों से जान-पहचान हुई। करसियांग के जवान एस० डी० ओ० से भी खासा परिचय हो गया।

कई महीनों बाद कार्यवश फिर दार्जिलिंग जा रहा था। रास्ते में करसियांग पड़ता था। सोच रखा था कि एस० डी० ओ० साहब से मिल लूंगा। सिलिगुड़ी से करसियांग पहुँचा। अचानक उनके दफ्तर में जा धमका। एस० डी० ओ० साहब अकचका गए। लगातार दो प्याला कॉफी पीकर ही मैंने चल देने की तैयारी की। परन्तु एस० डी० ओ० साहब ने कहा, ऐसा कभी होता है भला। मेरे क्वार्टर में चलिए, लंच कर लीजिए,

फिर तीसरे पहर दार्जिलिंग जाइएगा।

उन्होंने मेरे हाँ-ना की राह नहीं देखी। फ़ोन उठाकर अपनी स्त्री से कहा, नन्दा, कलकत्ते से मेरे एक मित्र आए हैं। लंच के लिए उन्हें साथ ला रहा हूँ। तुम इन्तजाम कर लेना।

बारह बजे के लगभग एस० डी० ओ० साहब मुझे साथ लिये अपने क्वार्टर में पहुँचे। बैठक में मुझे बिठाकर वह नहाने के लिए चले गए। कुछ मिनटों के बाद, और कोई नहीं, स्वयं नन्दिनी हाथ में कॉफी का प्याला लिये मेरे सामने हाजिर हो गई! हम दोनों ही एक साथ बोल पड़े—तुम?

उस दिन करसियांग पहाड़ के कुहरे का सारा धुंधलका हटा कर नन्दिनी के आँख-मुँह में मैंने जो चमक, जो खुशी देखी, उसे कभी नहीं भूलूँगा। मैंने एस० डी० ओ० साहब से कहा, अजी जनाब, आप मण्टू-दा के घर के जमाई हैं, मुझे पता भी न था। मैंने मुख्तसर में उनके घर से अपनी घनिष्ठता की बात बताई। यह भी नहीं छिपाया कि बचपन में आपकी स्त्री के साथ खेला-कूदा भी है।

ससुराल का दूत मानकर एस० डी० ओ० तो मारे खुशी के मतवाले हो उठे। लंच की मेज पर स्क्वैस का गिलास हाथ में उठा कर मेरी सेहत के लिए कहते हुए उन्होंने ऐलान किया, आज रात मिस्टर जर्नलिस्ट स्पेशल डिनर के मुख्य अतिथि होंगे और रात यहीं रहेंगे।

मैंने कहा, सो कैसे होगा!

एस० डी० ओ० साहब ने कहा, अरे साहब, यह न भूलिए कि मैं महज शासन ही नहीं चलाता, फैसला भी करता हूँ। मैं यहाँ का चीफ जस्टिस कम प्राइम मिनिस्टर हूँ।

नन्दिनी ने कहा, एक युग के बाद तो भेंट हुई। एक दिन रुक जाओगे तो कौन बड़ा नुकसान होगा, तकलीफ होगी?

सच बताऊँ, वह दिन बड़े आनन्द से बिताया। सोच नहीं सका था कि नन्दिनी इतना आदर, इतना जतन करेगी।

इस जीवन के चक्कर में मैं बहुत दूर छिटक गया हूँ। नन्दिनी से उसके बाद फिर भेंट नहीं हुई, भविष्य में कभी होगी कि नहीं, यह भी नहीं पता। लेकिन उसको याद नहीं भूलूँगा।

एक बात बताऊँ दोला भाभी? करसियांग छोड़ने के पहले नन्दिनी ने कहा, एक अर्ज करूँ तुमसे?

कहा, इसके लिए क्या इजाजत की जरूरत है ?
सो नहीं है। मगर यह कहो कि मेरी बात रक्खोगे।
दा होते समय मन जरा पिघल आया था। दलील देने जैसी इच्छा
ी। कहा, जरूर रक्खूंगा।
—तो, अपनी पुत्रवधु का नाम नन्दिता रखना। रक्खोगे न ?
उसके इस अजीब अनुरोध से मैं अचम्भे में आ गया था। होंठ काटता
। बोल न सका। सिर्फ सिर हिलाकर हामी भरा।
चिट्ठी को और लम्बा नहीं करूंगा। फिर भी मेरी चिट्ठी को एक बार
ढ़कर तो तुम्हें कल नहीं पड़ती। खैर, और चाहे जो करो, मेरी इन
र्चिट्ठयों को कालेज ले जाकर तुम क्लास में पढ़ने मत बैठ जाना। तीन-चार
दिन के लिए इलाहाबाद जा रहा हूँ। अब लौटने के बाद ही लिखूंगा।

चार

सोचा था, तीन ही चार दिन में इलाहाबाद से लौट आऊँगा। उन्हीं दिनों में भारतवर्ष की भाषा समस्या का कोई न कोई हल निकल आएगा, ऐसी उम्मीद थी। आज मुल्क एक ऐसी स्थिति पर आ पहुँचा है कि हम लोगों की कोई भी आशा कभी पूर्ण होगी, ऐसा नहीं लगता। सो भाषा के बारे में भी अपनी उम्मीद पूरी नहीं हुई और मेरे लिए इलाहाबाद से लौटना भी संभव न हुआ। मैं आज भी इलाहाबाद में हूँ, कल और परसों भी। शायद और भी ज्यादा दिन रहना पड़े।

कई दिनों से लगातार टाइपराइटर खट्-खट् करके एलर्जी-सी
आई है। इसीलिए मुँह का जायका बदलने की गर्ज से तुम्हें अपनी
साहब की कहानी फिर से लिखना शुरू कर रहा हूँ।

नंदिनी की इधर विदाई हुई और उधर मेरा जीवन-संग्राम शुरू हु
यह तो तुम जानती ही हो कि बंगाल के दो टुकड़े होने के साथ-सा
जैसे लाखों लाख युवक-युवतियों की तकदीर के भी टुकड़े-टुकड़े हो
ख्वाब में भी कभी नहीं सोचा था कि किशोरावस्था और जवानी की
वेला में इस तरह तूफान उठ आएगा। सोच नहीं सका था कि ज
सारा क्षितिज ऐसे अंधकार से भर जाएगा।

रिपन स्कूल से निकल कर रिपन कालेज में दाखिल हुआ।

ही बात सुन रक्खी थी, आर्ट्स पढ़ने से भविष्य का भरोसा नहीं। बिना साइंस पढ़े देश और देश के युवकों की मुक्ति का कोई उपाय नहीं। बाप-दादों का ज्ञान से परिचय रहा था, पर विज्ञान से अपने किसी पुश्त का कोई वास्ता नहीं रहा। फिर भी मैंने विज्ञान की साधना शुरू की। लेकिन देश की हालत कुछ इस तरह उलझी हुई थी कि केवल विज्ञान की साधना से गुजर-बसर की गुंजाइश नहीं थी। सो लक्ष्मी की साधना भी शुरू की।

कालेज की पढाई मुख्य जरूर थी, पर साँझ-सवेरे ट्यूशन करके रोटी कमाना भी कम महत्त्वपूर्ण काम नहीं था। यों दो नावों पर पैर रखकर जान को आ बनी थी। अपने ऊपर ख्याल रखने की फुर्सत नहीं मिलती। बचपन में कालेज-जीवन के बारे में रूपकथा जैसी बहुत सारी कहानियाँ सुना करता था। इसीलिए स्कूल में पढ़ते समय सपने बहुत देखे थे। सपना देखता था कि धोती-कुरता पहने हाथ में कापी थामे कालेज में घूमता फिर रहा हूँ; मास्टरों की तरह प्रोफेसर लोग छात्रों को नाहक बक-झक नहीं करते। क्लास से गायब होने की बेरोक-टोक आजादी है। ऐसे और भी। उम्मीद की थी कि कालेज का जीवन हमारे हाथों वृहत्तर सफल जीवन का पासपोर्ट दे देगा। इन कई वर्षों की शिक्षा-दीक्षा और उससे भी ज्यादा अनुभव मेरी आँखों में नया सपना, मन में नई आशा भर देगा और उन्हें साकार कर सकना सहज कर देगा। शायद छिपे तौर पर मन ही मन यह आशा भी की थी कि मैं सार्थक, सफल और सर्वांगीण आदमी बनकर गर्व के साथ भविष्य की ओर बढ़ जाऊँगा।

उस समय यह पता नहीं था कि बंगाल के सभी युवक कालेज-जीवन में ऐसा ही सपना देखते हैं और वह सपना सदा सपना ही रह जाता है। किसी का भी सपना शायद साकार नहीं हो पाया। फिर भी बंगालियों के लड़के सपने देखते हैं। देखते हैं कि उनका जीवन हँसी और गीत से भर जाएगा। जिंदगी की राह की चढ़ाई-उतराई को पार करने में उनकी जीवन-संगिनी उनकी मदद करेगी। और भी बहुत कुछ।

लाखों लाख करोड़ों करोड़ बंगाली युवकों की नाईं किसी दुर्बल घड़ी में मैंने भी शायद ऐसा सपना देखा था। बीते दिनों की नाकामयाबियों के इतिहास से मैंने सबक नहीं लिया, पूर्वसूरियों के अनुभव मुझे रोक नहीं सके, संयत नहीं कर सके।

लेकिन अपनी कल्पना के विमान से उड़कर मैं ज्यादा दूर नहीं गया।

मैंने कहा, इसके लिए क्या इजाजत की जरूरत है ?

—सो नहीं है। मगर यह कहो कि मेरी बात रक्खोगे।

विदा होते समय मन जरा पिघल आया था। दलील देने जैसी इच्छा नहीं थी। कहा, जरूर रक्खूंगा।

—तो, अपनी पुत्रवधु का नाम नन्दिता रखना। रक्खोगे न ?

उसके इस अजीब अनुरोध से मैं अचम्भे में आ गया था। होंठ काटता रहा। बोल न सका। सिर्फ सिर हिलाकर हामी भरा।

चिट्ठी को और लम्बा नहीं करूंगा। फिर भी मेरी चिट्ठी को एक बार पढ़कर तो तुम्हें कल नहीं पड़ती। खैर, और चाहे जो करो, मेरी इन चिट्ठियों को कालेज ले जाकर तुम क्लास में पढ़ने मत बैठ जाना। तीन-चार दिन के लिए इलाहाबाद जा रहा हूँ। अब लौटने के बाद ही लिखूंगा।

चार

सोचा था, तीन ही चार दिन में इलाहाबाद से लौट आऊँगा। उन्हीं दिनों में भारतवर्ष की भाषा समस्या का कोई न कोई हल निकल आएगा, ऐसी उम्मीद थी। आज मुल्क एक ऐसी स्थिति पर आ पहुँचा है कि हम लोगों की कोई भी आशा कभी पूर्ण होगी, ऐसा नहीं लगता। सो भाषा के बारे में भी अपनी उम्मीद पूरी नहीं हुई और मेरे लिए इलाहाबाद से लौटना भी संभव न हुआ। मैं आज भी इलाहाबाद में हूँ, कल और परसों भी। शायद और भी ज्यादा दिन रहना पड़े।

कई दिनों से लगातार टाइपराइटर खट्-खट् करके एलर्जी-सी हो आई है। इसीलिए मुँह का जायका बदलने की गर्ज से तुम्हें अपनी मेम साहब की कहानी फिर से लिखना शुरू कर रहा हूँ।

नंदिनी की इधर विदाई हुई और उधर मेरा जीवन-संग्राम शुरू हुआ। यह तो तुम जानती ही हो कि बंगाल के दो टुकड़े होने के साथ-साथ मेरे जैसे लाखों लाख युवक-युवतियों की तकदीर के भी टुकड़े-टुकड़े हो गए। ख्वाब में भी कभी नहीं सोचा था कि किशोरावस्था और जवानी की संधि-वेला में इस तरह तूफान उठ आएगा। सोच नहीं सका था कि जीवन का सारा क्षितिज ऐसे अंधकार से भर जाएगा।

रिपन स्कूल से निकल कर रिपन कालेज में दाखिल हुआ। सबसे एक

ही बात सुन रक्खी थी, आर्ट्स पढ़ने से भविष्य का भरोसा नहीं। बिना साइंस पढ़े देश और देश के युवकों को मुक्ति का कोई उपाय नहीं। बाप-दादों का ज्ञान से परिचय रहा था, पर विज्ञान से अपने किसी पुश्त का कोई वास्ता नहीं रहा। फिर भी मैंने विज्ञान की साधना शुरू की। लेकिन देश की हालत कुछ इस तरह उलझी हुई थी कि केवल विज्ञान की साधना से गुजर-बसर की गुंजाइश नहीं थी। सो लक्ष्मी की साधना भी शुरू की।

कालेज की पढ़ाई मुख्य जरूर थी, पर साँझ-सवेरे ट्यूशन करके रोटी कमाना भी कम महत्त्वपूर्ण काम नहीं था। यों दो नावों पर पैर रखकर जान की आ बनी थी। अपने ऊपर ख्याल रखने की फुर्सत नहीं मिलती। बचपन में कालेज-जीवन के बारे में रूपकथा जैसी बहुत सारी कहानियाँ सुना करता था। इसीलिए स्कूल में पढ़ते समय सपने बहुत देखे थे। सपना देखता था कि धोती-कुरता पहने हाथ में कापी थामे कालेज में घूमता फिर रहा हूँ; मास्टरों की तरह प्रोफेसर लोग छात्रों को नाहक बक-झक नहीं करते। क्लास से गायब होने की बेरोक-टोक आजादी है। ऐसे और भी। उम्मीद की थी कि कालेज का जीवन हमारे हाथों वृहत्तर सफल जीवन का पासपोर्ट दे देगा। इन कई वर्षों की शिक्षा-दीक्षा और उससे भी ज्यादा अनुभव मेरी आँखों में नया सपना, मन में नई आशा भर देगा और उन्हें साकार कर सकना सहज कर देगा। शायद छिपे तौर पर मन ही मन यह आशा भी की थी कि मैं सार्थक, सफल और सर्वांगीण आदमी बनकर गर्व के साथ भविष्य की ओर बढ़ जाऊँगा।

उस समय यह पता नहीं था कि बंगाल के सभी युवक कालेज-जीवन में ऐसा ही सपना देखते हैं और वह सपना सदा सपना ही रह जाता है। किसी का भी सपना शायद साकार नहीं हो पाया। फिर भी बंगालियों के लड़के सपने देखते हैं। देखते हैं कि उनका जीवन हँसी और गीत से भर जाएगा। जिंदगी की राह की चढ़ाई-उतराई को पार करने में उनकी जीवन-संगिनी उनकी मदद करेगी। और भी बहुत कुछ।

लाखों लाख करोड़ों करोड़ बंगाली युवकों की नाईं किसी दुर्बल घड़ी में मैंने भी शायद ऐसा सपना देखा था। बीते दिनों की नाकामयाबियों के इतिहास से मैंने सबक नहीं लिया, पूर्वसूरियों के अनुभव मुझे रोक नहीं सके, संयत नहीं कर सके।

लेकिन अपनी कल्पना के विमान से उड़कर मैं .

रिपन कालेज के हवाई अड्डे से टेक ऑफ करते ही कई बार क्रैश लैंड करके होश में आ गया था।

एक ओर रुपए-पैसे की चिंता तो दूसरी ओर भविष्य की चिंता। इसके पीछे मैं इस कदर पागल-सा बना रहता था कि इतना सब सोचने का अवकाश नहीं था कि मेरा मधु पीने के लिए आस-पास कोई मधुमाछी उड़ती है या नहीं। जीवन के साथ-साथ मन भी कैसा तो संकुचित हो गया था। मेरे सिमटे-से जीवन में जिन कुछ स्त्री-पुरुषों का आना-जाना था, उनकी ओर भी पलट कर ताकने का उत्साह या उत्सुकता नहीं थी।

मगर ताज्जुब है, कुछ दिनों के बाद यक-ब-यक मैंने यह ईजाद किया कि कौन तो मेरी मन-वीणा के तार पर कभी-कभी झंकार छेड़ती है। आँखों की निगाह कैसी तो रंगीन-सी लगी। कई दिन पहले तक जहाँ मुझे अपनी ओर ताकने तक की फुर्सत नहीं थी, वहीं मैं पलट कर अपनी ओर ताकने लगा। एक और भी गेरुआ कुरता बनवाया। कायदे के साथ धोती बाँधना शुरू किया। मुहल्ले के सैलून में बाल बनवाना अब नहीं जँचता। अगले महीने जब ट्यूशन के रुपए मिले, तो नए फैशन की कोल्हापुरी चप्पल भी खरीद ली।

मेरे रोजमर्रे के जीवन में छोटे-मोटे ऐसे और भी परिवर्तन आए। पहले दो-एक कापी-किताबें लेकर कालेज जाया करता था। अब किताब लेकर कालेज जाने में आत्मसम्मान को खलने लगा। किताब हाथ में लेना छोड़ दिया। सिर्फ कापी लिये कालेज जाने का नियम बना लिया। गर्ज कि मैं एक नए धर्म में दीक्षित हुआ। वासांसि जीर्णानि करके मैं एक नया 'मैं' हो गया।

तकदीर अच्छी थी। ज्यादा दूर बढ़ने की नौबत नहीं आई। ठोकर खाकर गिर पड़ा। अपनी आत्मकथा के उन रंगीन पन्नों की याद आने से आज हँसी आती है। लेकिन उस दिन हँसी नहीं आई थी। उस दिन तो मरीचिका को ही चरम सत्य मानकर उसके पीछे दौड़ पड़ा था। घटना बड़ी मामूली-सी है।

बैरकपुर-टीटागढ़ या खिदिरपुर के बड़े-बड़े कल-कारखानों की तरह उन दिनों हमारे कालेज में भी तीन शिफ्ट चलते थे। सुबह लड़कियों का, दोपहर को लड़कों का और रात को बड़े-बुजुर्गों का क्लास चलता था। बेथून या लेडी ब्रेबोर्न कालेज में कुमारी युवतियों की तादाद जरूर ज्यादा थी, फिर भी हमारे कालेज के मार्निंग सेक्शन की शक्ल और ही तरह

की थी। नीलिमा सरकार जैसे अभी-अभी के खिले गुलाबों की संख्या ज्यादा नहीं थी। देश के आजाद होने के बाद बहुतों के ही घर-संसार को आग लग गई। एक टुकड़ा कपड़ा और एक मुट्ठी अन्न के लिए, बीमार बच्चे के पथ्य के लिए, जीने की निहायत जरूरी जरूरतों को पूरा करने के लिए बंगाल की हजारों हजार लाखों लाख गिरस्त-बहुओं को डलहौजी स्क्वायर के रंगमंच पर उतरना पड़ा। उस रंगमंच में प्रवेश पाने के पासपोर्ट के लिए ही बहुतेरी भाभियों और छोटी मौसियों को फिर से कालेज में दाखिल होना पड़ा। इसके सिवाय भी कुछ अन्य स्त्रियों ने उस समय नई शिक्षा को अपनाया। देश के स्वाधीन होते ही बहुतेरे अँधेरे घरों में एकाएक बीसवीं सदी की रोशनी छिटक आई। हमारे कालेज की वीणा मौसी की नाईं जिन स्त्रियों ने कोई अन्याय किए बिना भी दिनों, महीनों, बरसों पति और ससुराल के बेहद जुल्मो-सितम सहे हैं, शादी शुदा होने के बावजूद जिन्हें स्त्री की मर्यादा नहीं नसीब हुई, पति का प्यार नहीं मिला, बेटा-बेटी की माँ बनने के बाद भी जो माँ होने के गौरव से वंचित रहीं, ऐसी अनेक स्त्रियाँ घर के उस कैदखाने के अँधेरे कुएँ से छिटक कर बाहर निकल आईं। अनजाने, अनचीन्हे भविष्य का सामना करने के लिए उनमें से बहुतों ने फिर से कालेज में नाम लिखाया। ऐसी अनेक स्त्रियाँ हमारे कालेज में भी आई थीं।

दिन में हाफ आदर्शवादी, हाफ भावुक, हाफ पालिटिसियन, हाफ अभिनेता, हाफ गायक, हाफ खिलाड़ियों की संख्या ही ज्यादा थी। और जो लोग शाम को आते थे, उनमें से ज्यादातर डलहौजी-कैनिंग स्ट्रीट, क्लाइव स्ट्रीट से अधमरे-से भागते हुए आया करते।

सवा दस बजे लड़कियों का क्लास खत्म होता और लड़कों का शुरू होता। मेरा क्लास कभी सवा दस बजे, कभी ग्यारह बजे शुरू होता। सवा दस बजे से क्लास होता तो लड़के हरगिज कभी देर नहीं करते। बल्कि दस बजते न बजते वे सब कामन-रूम छोड़कर दुतल्ले-तिनतल्ले की ओर चल पड़ते। सवा दस बजे की उस संधि-वेला के लिए और-और लड़कों की तरह मुझे भी आने की बेताबी होती, लेकिन सवेरे दो-दो ट्यूशन पढ़ाने के बाद कालेज आते-आते साढ़े दस बज जाते। इसीलिए सवा दस बजे की क्षणिक वसंती बयार का मजा लेने का सौभाग्य मुझे सदा नहीं मिलता।

वीणा मौसी से प्रायः पूरबी सिनेमा के आस-पास भेंट हुआ करती

थी। वह व्याहता युवती थीं, पर सिंदूर नहीं लगाती थीं माँग में। वह कहती थीं, व्याह करके भी जब पति को नहीं पाया, ससुराल में जगह नहीं मिली, तो सिंदूर फिर किसके लिए लगाऊँ? काहे को लगाऊँ? फुट-पाथ के एक किनारे खड़े होकर हम लोग दो-चार मिनट वात कर लेते थे। कालेज के छोकरे अध्यापक और छात्रों में से कोई-कोई उधर से गुजरते हुए रसीली निगाह से ताका करते। वीणा मौसी और मैं, दोनों ही जने यह देखा करते मगर परवाह नहीं करते।

लगातार कई दिनों तक वीणा मौसी से भेंट नहीं हुई। शुरू के कई दिनों तक तो खास कुछ ख्याल नहीं किया। जब पूरा एक सप्ताह निकल गया और भेंट न हुई तो जरा चिंतित हुए विना न रहा गया। लेकिन उनके घर जाकर खोज-खवर लूँ, यह भी नहीं वन पा रहा था। कालेज खत्म होते न होते, तुरंत ट्यूशन के लिए भागना पड़ जाता।

उस दिन भी कालेज जाते समय वीणा मौसी से मुलाकात नहीं हुई। लेकिन उसी पूरवी सिनेमा के आस-पास अचानक जिंदे वारूद का एक ढेरी-सी वह मेरे सामने आ खड़ी हुई। बोली, सुनिए। वीणा-दी वहुत वीमार हैं। आपको वुलाया है।

सवेरे साढ़े दस बजे हरीसन रोड के आगे पूरवी सिनेमा के पास ऐसी एक खूवसूरत वला मुझ पर वीणा मौसी का सम्मन जारी करेगी, इसका कयास भी न था। एक क्षण के लिए हड़वड़ा कर चौंक उठा था। जरा सम्हला तो वहुत सारे सवाल मन में आए, लेकिन मुँह से वाहर निकलने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई। मैंने सिर्फ इतना ही पूछा, आपको कैसे मालूम हुआ?

—मैं वीणा-दी के घर गई थी।

उसी दिन तीसरे पहर मैं वीमारपुरसी में वीणा मौसी के यहाँ गया था। मैं पहुँचा ही कि उन्होंने पूछा, नीलिमा से तुझे खवर मिली, क्यों?

मैंने पूछा, कौन नीलिमा?

—अरे, वही नीलिमा सरकार, जो हम लोगों के साथ पढ़ती है....

—सो मैं नहीं जानता, लेकिन आज सवेरे ही पूरवी सिनेमा के पास खूवसूरत-सी एक लड़की....

वीणा मौसी ने आगे नहीं वढ़ने दिया। बोली, हाँ-हाँ, वही तो नीलिमा है।

मैंने कहा, अच्छा!

वीणा मौसी को मैंने अपने मन की हलचल का जरा भी पता नहीं चलने दिया। अपने को जब्त कर लिया। जरा देर गपशप करके आने लगा तो मैंने उनसे पूछा, कालेज के कोई आपको देखने के लिए नहीं आते हैं ?

—आते हैं। बहुतेरे आते हैं।

तीन-चार दिन के बाद फिर उन्हें देखने के लिए गया। देखा, उस दिन वाली वह नीलिमा सरकार भी वहाँ बैठी हैं। उनके नमस्कार का जवाब देकर मैं बगल के मोढ़े पर बैठ गया। चादर को गले तक खींच-कर करवट लेती हुई वीणा मौसी ने कहा, नीलिमा, पता है, बच्चू पहले हम लोगों के ही मुहल्ले में रहता था। हमारे मुहल्ले में रहते समय ही इसकी माँ गुजरीं...

नीलिमा ने कहा, अच्छा !

मैंने कहा, मेरी जीवन-कथा सुनने का और भी बहुत वक्त मिलेगा। आज छोड़िए। यदि लिख सकतीं, तो मेरे जीवन पर वीणा मौसी एक रामायण लिख डालतीं। मेरी खुशकिस्मती है कि मौसी की जबान चलती है, कलम नहीं चलती। लेकिन मैं तो इतने ही के मारे परेशान हूँ।

नीलिमा से परिचय और बातचीत वही पहली बार हुई। दस-बारह दिन के बाद फिर वीणा मौसी के यहाँ हम दोनों की मुलाकात हुई। उस दिन हम दोनों वहाँ से एक साथ निकले। कालेज स्क्वायर तक दोनों साथ पैदल गए। वहाँ से अलग होकर अपनी-अपनी राह।

उस मामूली-सी जान-पहचान से ही मैं कैसा तो बदल गया। सबेरे के ट्यूशन से थोड़ी-बहुत कन्नी काट कर, नहाने-खाने वाले अध्याय को कुछ मुख्तसर और जल्दी करके भाग कर सवा दस बजे से पहले ही कालेज पहुँचने लगा। कभी उससे भेंट होती, कभी नहीं। कभी बातचीत होती, कभी नहीं। कभी दूर से ही खड़े-खड़े तिरछी निगाह और होंठों ही होंठों मुसकाने की अदला-बदली। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। लेकिन इतने से ही मैं कैसा तो स्वप्नातुर-सा हो पड़ा। नीलिमा को को-पाइलट बना कर मैंने अपनी कल्पना के हवाई जहाज से टेक ऑफ किया। भाव के समुद्र में बहता चलने लगा।

होंठों की उस दबी मुसकान और लमहे भर नजर मिलने की ही पूँजी पर मैं बहुत, बहुत दूर तक बढ़ गया। माथे पर मोर पहनकर नीलिमा के गले माला डाल दी, उसके बगल में बैठकर कोहबर जागा। बहुभात और

शय्या के दिन काफी रात गए मेहमानों को विदा करके मैं नीलिमा के
रे में गया, अंदर से दरवाजे को बंद कर लिया। बहुत करीब में बैठ-
र उसे थोड़ा प्यार-दुलार किया। उसके बाद धीरे-धीरे उठा। बत्ती को
ल करते ही बड़े जोरों का धक्का लगा। मेरी कल्पना के हवाई जहाज
क्रैश लैंड किया। अपनी को-पाइलट नीलिमा को फिर मैंने खोज कर
पाया ही नहीं।

हिम्मत करके किसी से कुछ पूछते भी नहीं बना। बड़े उद्वेग में दिन बीत रहे थे। नीलिमा-विहीन जीवन भार हो उठा। बीच-बीच में मन में वैराग्य झाँक-झाँक जाने लगा। कुछ दिन और अगर खबर नहीं मिलती, तो शायद बद्री-केदार की ही यात्रा पर निकल पड़ता। भगवान् दयालु हैं। इसीलिए उस बार संसार छोड़ने की नौबत नहीं आई। नीलिमा से भेंट हो गई।

भेंट हुई वीणा मौसी के ही यहाँ। नीलिमा के कपाल पर सिंदूर का उतना बड़ा एक टीका देखकर मन ही मन मुझे बड़ी चोट लगी थी। पहले सहज होकर उससे बात नहीं कर सका। शायद हो कि उसने मेरे मन के द्वन्द्व की भाषा को समझ लिया। इसलिए वह खुद ही मुझसे बहुत सहज हो गई।

जानती हो दोला भाभी, नीलिमा के ब्याह के बाद ही हम दोनों
मित्रता हुई। जब कभी किसी काम से दक्षिण कलकत्ता गया, तो काली
घाट में नीलिमा से मिलता आया। नीलिमा के पति संतोष बाबू अ
मेरे परम मित्र और हितैषी हैं। इस समय वे लोग अहमदाबाद में
संतोष बाबू एक बहुत बड़ी कपड़ा मिल के चीफ एकाउंटेंट हैं। व
मोटी तनखा पाते हैं। नीलिमा अहमदाबाद में टैगोर सोसाइटी
सेक्रेटरी है। शायद तुम्हें याद हो, उस बार गोआ आपरेशन्स को
करके दिल्ली लौटते समय मैं दामन गया था और बीमार पड़ गया
दूसरा कोई उपाय न देखकर मैंने संतोष बाबू को ही एक अर्जेंट टे
भेजा। मुझे लिवा जाने के लिए पति-पत्नी दोनों ही तुरंत आ
लोगों के सेवा-जतन से दो हफ्ते में मैं चंगा हो गया। उसी समय
ने मेम साहब को अहमदाबाद बुलाया। दो हफ्ते बीमार रहा अ
नहीं भेजी, इसके लिए मेमसाहब बहुत नाराज हो गई थीं। व
चुप रहा। उसके दोनों हाथ पकड़ कर नीलिमा ने कहा, वी
ऐसी होती कि तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा जरूरी है, तो तुम्हें

भेजती। मैंने डाक्टर मैत्र से पूछा भी था। वह बोले, हड़बड़ा कर उन्हें बुला भेजने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता हूँ। कुछ ठीक हो जायें, तो खबर दीजिएगा।

नीलिमा जरा रुक गई। उसके बाद दोनों हाथों मेम साहब के मुखड़े को उठाकर बोली, और फिर बहन, मैं और तुम्हारे भैया भी बच्चू से प्यार करते हैं। तुम्हारी कमी जरूर नहीं मिटी होगी, मगर सेवा-जतन में हम लोगों ने त्रुटि नहीं रहने दी है।

मेम साहब ने झटपट आँसू पोंछ कर अपने चेहरे पर हँसी बिखेर ली। बोली, नीलिमा-दी, दरअसल मैंने आप लोगों को कष्ट नहीं देना चाहा था। लेकिन पहले आतो तो अपने मन को थोड़ी राहत मिलती। बस, और क्या....

नीलिमा ने इससे आगे नहीं बढ़ने दिया। उस अध्याय की वहीं पर इति हो गई।

उसके बाद भी एक सप्ताह और रह गया था वहाँ। काकरिया लेक के किनारे-किनारे हम सब रोज टहला करते थे। कितनी खुशी, कितनी चहल-पहल मचाई। खैर, छोड़ो उसे।

जब नंदिनी ने मेरे जीवन में झाँका था, तो मैं चौंका था। सोच नहीं सका, सोचने का साहस नहीं हुआ कि कोई लड़की मेरे जीवन में आ सकती है या कि कोई लड़की मुझे अपने जीवन-रथ का सारथी बना सकती है। लेकिन जिस दिन नीलिमा मिली, उस दिन कैसे जो शंका की वह घटा फट गई, मैं नहीं जानता। लेकिन हाँ, यह बात बेशक सच है कि नानी की कहानी की राजकुमारी की नाईं नीलिमा के स्पर्श से मेरी नींद खुल गई थी, सचमुच ही मैं किशोरावस्था से जवानी के सिंह दरवाजे पर जा पहुँचा था।

नीलिमा के बारे में मैंने आज तक किसी को बताया नहीं। यह सब बताने की है भी नहीं। ये बातें निरी निजी हैं मेरी। यहाँ तक कि खुद नीलिमा भी नहीं जानती, शायद हो कि कभी जान भी न पाए।

हाँ, मेम साहब को बताया था। वह क्या बोली थी, पता है? बोली थी, खूबसूरत औरत देखने से तुम्हारा माथा चकरा जाता है, यह मुझे मालूम है। मुझ जैसी काली लड़की को तुम नहीं पसंद करते, यह बात इतना घुमा कर कहने की क्या पड़ी है?

मैंने सिर्फ कहा,

रँगा पहर की शेष किरण से वह था चैत्र मास—
देखा था उन आँखों मैंने अपना सत्यानाश।
नित-नित जगती के खेला में
प्रतिदिन प्राणों के मेला में
घाट-वाट में सहस जनों का हास और परिहास—
देखा था उन आँखों मैंने अपना सत्यानाश!

एक दवा निःश्वास छोड़ते हुए मैंने कहा था, तुम्हारा जला नसीब! करोगी क्या! वने तो वदल डालने की कोशिश करो।

वात को और न वढ़ाकर मेम साहव होंठों में हँसी और मुँह चिढ़ा कर चली गई।

पाँच

दिल्ली लौट आया हूँ। लेकिन ये कई दिन ऐसी परेशानियों में बीत गए कि तुम्हें चिट्ठी लिख ही नहीं पाया। और इस बीच तुम लोगों की मित्र माधुरी चटर्जी और उनके पति आए थे। माधुरी का खयाल आता है? प्रेसिडेंसी में फिलासफी ले रक्खी थी। पार्क सरकस-बेगवगान के मोड़ पर रहती थी।

जब से दिल्ली आया हूँ, परिचित, आधे परिचित ऐसे वहुतेरे लोग मेरे वसेरे में रोजाना आया ही करते हैं। कोई इंटरव्यू देने, कोई दफ्तर के काम से, कोई देहरादून, मसूरी, हरिद्वार जाते हुए लाल किला, कुतुव मीनार, राजघाट, शांतिवन देख जाने के इरादे से। माधुरी होशियार है। लाख हो, आखिर तुम लागों की ही मित्र है न! पति दफ्तर के काम से आए थे—वह आई थी पति को प्रेरणा देने के लिए! अव भी पहले की जैसी हल्ला-हुल्लड़ करती है। पति को सवेरे ही दफ्तर भेज देती और तमाम दिन मेरे साथ चक्कर काटती फिरती। मैं थक जाता, मगर माधुरी नहीं थकती। तीसरे पहर उसके पति लौट आते तो हम लोगों की दूसरी इनिंग्स शुरू होती।

जो भी हो, दो दिन मजे में वीते। माधुरी के हाथों तुम्हारी एक साड़ी और पेटू खोकन-दा के लिए थोड़ा-सा सोहन हलुआ भेजा है। साड़ी तुम्हें पसन्द आई कि नहीं लिखना।

मुझ पर से नीलिमा की आँधी निकल गई, तो मैंने अचानक अखबार-नवीसी शुरू कर दी। मेरे जीवन की वह एक अनोखी घड़ी थी। जिंदगी का सारा हिसाब-किताब उलट-पुलट हो गया। मध्यवित्त बंगाली परिवार का लड़का। मैट्रिक पास करके आइ० ए०, आइ० ए० के बाद बी० ए०। उसके बाद युनिवर्सिटी का दिया हुआ पासपोर्ट लेकर चौदह आने किस्म लड़के जीवन-युद्ध का पावर लीग खेलने उतर पड़ते। बाकी दो आने और आगे बढ़ जाते। उनमें से कोई-कोई फर्स्ट डिवीजन में, कोई आइ० एफ० ए० शील्ड या रोवर्स खेलते। कोई-कोई इससे भी आगे बढ़ जाते।

मैं पावर लीग खेलने के लिए ही पैदा हुआ था और उसी की तैयारी कर रहा था। बीच-बीच में अवश्य डाक्टर होने का, इंजीनियर होने का सपना देखा करता, या कि यह सोचता, अध्यापक बनूँगा। चुनटदार धोती पहने कालेज जाया करूँगा; लड़कियों को, लड़कों को पढ़ाया करूँगा। लड़कियों से घनिष्ठता के लिए मुँह से लार टपकते रहने के बावजूद मन की वह बेकली हरगिज जाहिर नहीं होने दूँगा। लेकिन तो भी लड़कियाँ कितने कारणों से, कितनी जरूरतों से मेरे पास आया करेंगी। इलोरा के यहाँ किसी दिन चाय पर जाने की वजह से औरतों में तरह-तरह की सरस कहानियाँ फैल जाएँगी। उसके बाद आदि-इत्यादि, और क्या!

हमारे अपने सगों में से अखबार में काम करने की बात तो दूर, कोई कभी अखबार के कार्यालय तक भी नहीं गया है। लिहाजा किसी ने यह कल्पना नहीं की थी कि उसके खानदान का यह कुलांगार अखबार में नौकरी करेगा। देश के बँटवारे के बाद से हम सब का समाज-जीवन कई परिचित धाराओं में बहने लगा। चीन्हे दायरे से बाहर जाने की जरूरत या ताकीद खास किसी ने कभी महसूस नहीं की। देश के स्वतंत्र होते ही बीते दिनों की वह सब रीति-नीति, तौर-तरीके, और जरूरतें जाने कहाँ खो गईं! शान्त और स्निग्ध यह धरती मानो करोड़ों-करोड़ साल पीछे मुड़कर आग के गोले में बदल गई। जैव जरूरतें बेहद नंगे रूप में सामने आईं। इतिहास की बलि होकर आदमी जीने के लिए पागल की भाँति चारों ओर दौड़ते फिरे। जिसको जहाँ सींग समाई, उसने उसी दिन आग के गोले-सी पृथ्वी में वहीं अपना डेरा डाल दिया। लखपती का लड़का कालेज स्ट्रीट में फेरीवाला बना, हमसे तुमसे भी ज्यादा जाने-माने परिवार की बहुतेरी बहू-बेटियाँ बहूबाजार और लिंडसे स्ट्रीट के मैसेज-पाथ में जाकर अपनी देह बेचने को मजबूर हुईं।

बहूबाजार के रथ के मेले या विजयादशमी के दिन कुम्हारटोली घाट की बेहिसाब भीड़ में खोए हुए बच्चों को देखा है कभी ? देखा है, किस कदर फुक्का फाड़कर रोते हैं वे ? गौर करके देखा है कि बाप-माँ से बिछुड़कर बेबस-बेसब्र होकर कैसी अर्थहीन भाषा में सबकी तरफ ताकते हैं ? मैं भी उस दिन अपने भविष्य के लिए वैसी ही बेमानी भाषा में चारों तरफ ताक रहा था। क्या अच्छा है और क्या बुरा, और कौन-सा सहज है और कौन-सा सख्त—उस समय यह सोचने का न तो मुझे समय था, न थी जुर्रत। जभी तो अखबार के रिपोर्टर होने का अप्रत्याशित अवसर पाकर मैं बेखटके आगे बढ़ गया।

रामायण में मैंने पढ़ा है, सतीत्व का सबूत देने के लिए सीता को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी थी। उस अग्नि-परीक्षा में खरी उतरने के बाद भी सीता का स्थान स्वामी के पास नहीं हुआ। राजराजेश्वरी गर्भवती सीता को अपने-बेगानों, बंधु-बांधुवों से दूर सर्वस्वहीन होकर घोर जंगल में शरण लेनी पड़ी थी। सुनती हो दोला भाभी, मुझे अक्सर ही ऐसा लगता है कि सीता के गर्भ से ही शायद बंगालियों के पुरखों का जन्म हुआ था। नहीं तो आखिर पूरी की पूरी बंगाली जात ऐसी अभिशप्त क्यों हुई ? आजादी की लड़ाई में चरम अग्नि-परीक्षा देने के बाद भी राहु-ग्रास से उसे मुक्ति क्यों नहीं मिली ? स्वाधीन सार्वभौम भारतवर्ष के नागरिक होने के बावजूद उसकी आँखों से आँसू का बहना बंद क्यों नहीं हुआ ?

तुमसे मैं सच कहता हूँ दोला भाभी, उस दिन की याद आते ही आज भी तन-बदन सिहर उठता है, दिमाग चकराने लगता है, आँखों की निगाहें धुँधली हो जाती हैं। वैसे ही दुर्दिन में मैंने नई राह पर चलना शुरू किया। सबेरे के जो ट्यूशन थे, उन्हें तो नहीं छोड़ा, परन्तु शाम का पढ़ाना बंद कर दिया। दोपहर को अपना क्लास करके तीन या साढ़े तीन बजते ही नोट-बुक और पेंसिल लेकर सभा-समिति या प्रेस-कान्फ्रेंस में चला जाता। उसके बाद आफिस। रोज रात के बारह-एक बजे तक काम करना पड़ता। कभी-कभी घर लौटने में रात के तीन-चार भी बज जाते।

लगातार महीनों, बरसों इसी तरह से काम करता रहा, पर बदले में मिला क्या ? पहले साल फूटी पाई भी नहीं मिली। अपने ट्यूशन की ही कमाई से ट्राम-बस का किराया चलाता रहा। दूसरे साल से दस रुपया माहवार पैदा करना शुरू किया। इस बीच विज्ञान की साधना का पहला

पर्व समाप्त हुआ। पिताश्री ने फरमान जारी किया, इस पत्रकारिता का खेल खत्म करके कोई रास्ता पकड़ो। बात सही थी। आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति उस समय ऐसी ही संकट की थी कि कुछ न कुछ किए बिना चल नहीं रहा था। मेरे दोस्त-अहबाब भी इसी एक समस्या के आमने-सामने आए। सबने यह अनुभव किया कि कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। लेकिन करना क्या होगा, कहाँ जाना पड़ेगा इसका पता किसी को नहीं था। डाक्टरी-इंजीनियरिंग पढ़ने लायक रसद किसी के पास नहीं थी। लाचारी उस कूचे की ओर किसी ने कदम नहीं बढ़ाया। पचास रुपये की एक ऐप्रेंटिस के लिए मैं आर्मी रिक्रूटिंग आफिस से लेकर खिदिरपुर-बैरकपुर के सारे कल-कारखानों के दरवाजों की ठोकर खाता फिरा। नहीं नसीब हुआ। इसलिए विज्ञान की साधना को आखिरी सलाम करके साहित्य-साधना और अखबार-नवीसी से ही दूसरे अध्याय की शुरुआत की।

इतनी सब बातें नहीं लिखता। और, हो सकता है, बहुत कुछ तुमने सुना है या जाना है। लेकिन यह सब तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ कि अपने जीवन की किस परिस्थिति में मैंने मेम साहब को पाया था, इसे जाने बिना तुम सही तौर से उसके महत्त्व को नहीं समझ सकोगी।

जवानी में प्रायः सभी लड़की-लड़के प्रेम करते हैं। यह उनका धर्म है, कर्म है। कुछ-कुछ प्रयोजन भी है। इसके सिवा बचपन और किशोरावस्था को लांघकर पूर्णता प्राप्त करने का यह सबसे बड़ा सबूत है। कालेज के कामनरूम या थिएटर के ग्रीनरूम में बहुतेरी प्रेम-गाथाओं का आदि पर्व रचा जाता है, लेकिन उनमें से ज्यादातर की मीयाद बड़ी थोड़ी होती है। हलकी-सी हँसी, थोड़ी-सी गपशप, थोड़ा-सा मिलना-जुलना—इसी से बहुतेरी लड़के-लड़कियाँ प्रेम के नशे में चूर हो जाते हैं। जीवन की उपलब्धि किए बिना, घात-प्रतिघातों से जीवन की अग्नि-परीक्षा से खरे उतरे बिना जो लोग प्रेम करने का दावा करते हैं; या तो वे बेवकूफ हैं या फिर झूठे हैं। दो मन, दो प्राण, दो धाराएँ, दो अनपहचाने आदमी एक साथ मिलकर कोरस गाएँगे, और उसका कोई परिवेश नहीं होगा, कोई तैयारी नहीं होगी, यह नहीं हो सकता। चूँकि यह परिवेश और तैयारी नहीं रहती है, इसीलिए हमारे यहाँ के कालेज-रेस्तराँ के प्रेम लगभग विफल हो जाते हैं। दूध को जमा कर मीठा दही खाना हो, तो काफी तदबीर और तैयारी की जरूरत पड़ती है। उस हिसाब में जरा

इधर-उधर हुआ, जरा भी गड़बड़ी हुई तो दही नहीं जमने का और
हीं जम भी जाय, तो खट्टा होगा।

एक जोड़ी स्त्री-पुरुष में, छंद में बँधा सुंदर जीवन गढ़ने के लि
हज आँख का नशा और देह की भूख ही काफी नहीं होती। और भी
हुत कुछ की जरूरत पड़ती है। और फिर जीवन की इस चरम चाह को
वाहने का भी एक समय होता है। लेकिन उसे पाना हो तो पाने का
अधिकार अर्जन पड़ता है।

खास-खास परिस्थिति और परिवेश में बहुत बार बहुतेरे लोग अच्छे
लग जाते हैं। अस्पताल की सदा हँसमुख नर्सें कितनी अपनी, कितनी प्यारी
लगती हैं। लेकिन अस्पताल से बाहर? समाज-जीवन के बहुत फैले हु
दायरे में? अपना जानकर उन्हें कितने लोग अपना सकते हैं?

मेरी जिंदगी अगर सुन्दर, स्वाभाविक और छंदमयी होकर आ
बढ़ती होती, तो किसी भी औरत से जिंदगी की जरूरत पूरी हो जाती।
लेकिन मैं अपने जीवन के एक-एक पल के लिए दहकता रहता था।
मामूली सम्मान के साथ जीने के लिए अनगिनती लोगों के दरवाजे-दरवाजे
भटकते फिरने के बाद भी कोई नतीजा नहीं निकला। सिर्फ सवा सौ रुप
के मामूली रिपोर्टर की नौकरी के लिए लगातार कितने दिनों तक कितने
लोगों को मक्खन लगाना पड़ा, नहीं बता सकता। विद्यासागर और
विवेकानंद के वंशधरों का मन तो कभी नहीं पिघला।

क्यों, अपने लोग, बंधु-बांधव? अजी, पचीस या पचास रुपये माहवार
पाने वाले रिपोर्टर से अपनत्व कैसा? गिने-गिनाए कुछ मित्रों को छोड़कर
सबके लिए मैं अछूत बन गया।

दोला भाभी, अपनी हद्द की बदनसीबी के उन दिनों का इतिहा
तुमको अब नहीं लिखूंगा। तुम्हें तकलीफ होगी। लेकिन इतना जान ल
तुम्हारे उस कलकत्ते के राजपथ पर मैं बहुत दिनों तक पागल की त
घूमता रहा हूँ, एक पैसे की कमी के कारण सेकंड क्लास ट्राम पर
नहीं चढ़ सका। निकट के नाते के दो-चार व्यक्तियों के प्रति अपना
अदा करके बहुत दिनों तक अपने नसीब से दोनों जून भोजन भी
जुटा पाया। लेकिन अजीब बात! विधाता मेरे लिए जितने ही निर्दयी
मेरा संकल्प उतना ही दृढ़ होता गया।

विधाता से इस तरह लुकाछिपी खेलते हुए सात-आठ साल
गये। फिर भी कोई कूल-किनारा नजर नहीं आया। इन सात-आठ

ॆ अंदर मेरी दृष्टि में काफी परिवर्तन हो गया था। सात-आठ साल पहले ैंने सिर्फ जीने के लिए काम शुरू किया था, लेकिन सात-आठ साल े बाद मैंने महज जीना नहीं चाहा। लाखों-लाख लोगों के जंगल में े खो जाने को तैयार न था। रोटी-कपड़े और सर छिपाने की जगह के ासले को ही सिर्फ सुलझाना नहीं चाहा, मैंने मन ही मन कुछ और भी उम्मीद की।

लेकिन उम्मीद करने से ही तो सब कुछ मिल नहीं जाता। और सिर्फ उम्मीद पर कितने दिनों तक ऐसी लड़ाई लडी जा सकती है? मैं हाँफ उठा। धीरे-धीरे मानो मन का तेज और शरीर की ताकत को खोने लगा। लाख हो, आखिर सब्र की भी कोई हद होती है।

मैंने काम-काज से जी चुराना शुरू किया। दौड़-धूप कर रोज नई खबरें जुटाने के बजाय समाचार-विभाग में सहसंपादकों के साथ अड्डे-बाजी मेरे लिए ज्यादा आकर्षक हो गई। न केवल दफ्तर में, बल्कि ऐसे दूसरे-दूसरे अड्डों पर भी जाना शुरू कर दिया। भविष्य के बारे में कैसी तो दार्शनिकों जैसी उदासी मुझमें आ गई। मतलब कि मैं खूब ही बद-लने लगा।

ज्यादा नहीं, और कुछ ही दिन इस तरह से चलता तो मैं निस्संदेह सदा के लिए खो जाता। ऐसी ही एक चरम घड़ी में वह अघटन घट गया।

शांतिनिकेतन से कलकत्ता लौट रहा था। बोलपुर स्टेशन में दाना-पुर पैसेंजर के जिस डब्बे में मैं चढ़ा, उसमें और भी बहुतेरे लोग सवार हुए। भीड़ में किसी तरह से जगह बनाकर मैं एक तरफ बैठ गया। खिड़की के पास सर रखकर अनमना-सा कुछ देर तक जानें क्या देखता रहा। दो-चार स्टेशन भी निकल गए। वीरभूमि की लाल माटी और ताड़ के पेड़ों को कब पीछे छोड़ आया, यह भी ख्याल न रहा। बाहर अँधेरा उतर आया। अपनी उदास निगाह को फेरकर डब्बे के अंदर ले आया। सोचा, कमरे को एक नजर ठीक से देख लूँ। लेकिन देखते न बना। आगे की तरफ बढ़ते ही नजर ठिठक गई। बुद्धि की दमक से दम-कती घनी काली और खिंची हुई ऐसी आँखें मैंने पहले कभी नहीं देखी। एक बार नहीं, दो बार नही, बार-बार उन्हें देखा। छिप-छिपकर फिर-फिर देखा। एड़ी-चोटी अच्छी तरह से देखा। असभ्य की नाईं, बदतमीज की नाईं मैं केवल उस ओर ताकता रह गया।

काश, मैं खोकन-दा जैसा साहित्य का अच्छा विद्यार्थी होता ! और संस्कृत साहित्य मेरा पढ़ा हुआ होता ! फिर तो मैं कालिदास के उत्तरमेघ की पंक्तियाँ उद्धृत करके कहता—"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।" कालिदास की तरह मैं इससे आगे नहीं बढ़ पाया। यहीं पर रुक गया। और फिर दानापुर पैसेंजर के उस डब्बे में उतने-उतने मुसाफिरों की नजर में धूल झोंक कर इससे ज्यादा आगे भी क्या बढ़ा जा सकता है ?

आगे चल कर मेम साहब को मैंने अपने उस दिन के इरादे की बात बताई थी। कई महीने के बाद मैं और मेम साहब दानापुर पैसेंजर से ही शांतिनिकेतन से कलकत्ता लौट रहे थे। बर्दवान पहुँचने पर डब्बा लगभग खाली हो गया। उधर वाली बेंच पर एक बूढ़ा-बूढ़ी के अलावा और कोई मुसाफिर नहीं था। मेरी हथेली पर मुँह रखकर मेम साहब खिड़की से बाहर की तरफ ताक रही थी। मैं भी जैसे कुछ सोच रहा था कि मेम साहब ने मुझे झटका देकर कहा, सुनो।

मैंने कोई ख्याल नहीं किया। मेम साहब ने फिर आवाज दी, सुनो न।

—कुछ कह रही हो ?

अपने हाथ से मेम साहब ने मेरे मुँह को अपनी ओर घुमा लिया। उँगली से मेरे कपाल पर के बालों को सरका दिया। दो-चार मिनट तक सिर्फ ताकती ही रही मेरी ओर। जरा हँसी। शर्मीली निगाह को अपना ओर जरा घुमा लिया।

अब की मैंने उसके मुँह को अपनी ओर घुमा लिया। पूछा, कुछ कहोगी ?

मेरी तरफ वह ताक नहीं सकी। गाड़ी के डब्बे की उस मद्धिम रोशनी में ठीक समझ नहीं सका, लेकिन मुझे लगा, शर्म से उसका चेहरा तमतमा उठा है। देखने में बड़ा अच्छा लग रहा था। दो-चार मिनट तक मैंने जो भरकर उसे देख लिया। उसके बाद कानों में फुसफुसा कर कहा, शर्म लग रही है ?

मेम साहब ने जवाब नहीं दिया। हँसकर रह गई। जरा देर बाद मेरे कानों में कहा, एक बात पूछूँ ?

—पूछो।

—पहली बार जब तुमने गाड़ी में मुझे देखा था, देखने में तुम्हें अच्छी लगी थी मैं ?

—मुझे लगा था—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी।
मध्ये क्षमा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः॥
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां।
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

मेम साहब ने तड़ से मेरे गाल पर एक थप्पड़ मार कर कहा—बेशर्म कहीं के।

—छिः-छिः मेम साहब, तुमने मुझे बेशर्म कहा। बेशर्म कहना हो तो कालिदास को कहो।

मैंने जरा रुककर पूछा, रामायण पढ़ी है?

—क्यों? अब रामायण से कोई कोटेशन सुनाओगे क्या?

—पहले मैंने जो पूछा है, उसका जवाब दो।

—पढ़ी है।

—मूल या उसका अनुवाद?

—मूल संस्कृत नहीं, उसका अनुवाद पढ़ा है।

—वेरी गुड! दंडकारण्य मे सीता को पहली बार देखकर रावण ने क्या कहा था, मालूम है?

—रावण ने सीता के रूप की बड़ाई की थी, लेकिन ठीक क्या कहा था, यह याद नही है।

—कोई बात नहीं, मैं याद कराये देता हूँ। रावण ने सीता से कहा था....

मेम साहब ने टोक कर कहा, रहने दो, कहना नही पड़ेगा। पंक्तियाँ ठीक-ठीक याद नही हैं, मगर मैं जानती हूँ कि रावण ने कैसा गजब का वर्णन किया था।

जरा देर रुक गई। नजर को एक बार घुमाकर अपना मुँह मेरे मुँह के पास लाकर बोली, तुम दूसरे रावण हो। डकैत कहीं के! दिन-दहाड़े कलकत्ता शहर में तुमने मुझे चुरा लिया।

खैर। उस दिन आखिर मैं पकड़ा गया। चोरी-चोरी देखने में पकड़ गया। जैसे ही नजर मिली कि मैंने अपनी नजर घुमा ली। लेकिन मिनट भर के बाद फिर ताकने लगा। फिर पकड़ा गया। फिर देखा, फिर पकड़ा गया।

मेम साहब की दो साथियों में किसी को कुछ भनक नहीं

हवड़ा स्टेशन पहुँचने के वाद डब्बे से उतरने पर मैं मायूस हो गया, यह उसने खूब समझा। लेकिन किया क्या जाय? दो में से कोई भी कुछ बोल नहीं सका। जिंदगी के मेह वरसते रास्ते पर चलते हुए बिजली की थोड़ी-बहुत कौंध सबके जीवन में कौंध जाती है। इसमें हैरान होने की कौन-सी बात है? अस्वाभाविक भी नहीं है यह।

वे तीनों डब्बे से उतर गईं। उसके काफी देर के बाद मैं उतरा। धीरे-धीरे गेट की तरफ चला। उसकी तरफ फिर एक बार ताक लिया। सोचने लगा, बस यही तो, गेट पार होने भर को देर है। हम दोनों ही कलकत्ते की इस अपार भीड़ में खो जाएँगे। हो सकता है, जिंदगी में फिर कभी हमारी मुलाकात न हो। हो सकता है क्या, हरगिज कभी भेंट नहीं होगी। मैंने गेट की तरफ ताका, तो लगा कि मेम साहब पल भर के लिए ठिठक गई और मुड़ कर पीछे की तरफ ताका। मैंने दूर से हाथ हिला कर उसे विदा किया।

कौन-सी वात हो गई, यह किसी ने भी न जाना, किसी ने नहीं समझा। और तो और, मैं भी ठीक-ठीक नहीं समझ सका कि क्या हो गया। इससे पहले और कभी तो मैंने किसी स्त्री की तरफ इस तरह से ताका नहीं था और किसी स्त्री ने भी मुझे इस कदर बेताव नहीं बनाया था। मैंने इतना ही समझा कि हो न हो, इसमें ईश्वर का कोई इशारा है। साथ ही मेरे मन को यह विश्वास भी हुआ कि हम दोनों की भेंट फिर होगी ही।

यकीन मानो दोला भाभी, आँखों का सिर्फ नशा ही नहीं, मेम साहब के शरीर का आकर्षण भी नहीं, मानो किसी और भी गजव के खिंचाव का मन में अनुभव कर रहा था मैं। मन ही मन मैंने यह खूब जाना कि मेरे जीवन-संग्राम की नयी सेनापति आ धमकी! यह सेनापति मुझे आसानी से हरगिज हार नहीं मानने देगी, मुझे पीठ नहीं दिखाने देगी। भविष्य के अंधकार में मुझे खो जाने नहीं देगी।

यह सोच कर मैं दंग रह जाता हूँ कि किस्मत इन्सान को कहाँ ले जा सकती है, दो अनजानों को किस गजब के तरीके से घनिष्ठता के धागे में बाँध देती है।

दूसरे दिन खासी देर करके मैं दफ्तर पहुँचा। चीफ रिपोर्टर को उम्मीद नहीं थी कि मैं पहुँचूंगा। इसलिए उन्होंने वेलिंगडन स्क्वायर की सभा और दो-तीन प्रेस कानफरेंस को कवर करने का इंतजाम पहले ही

कर लिया था। फिर भी मेरे पहुँचते ही वह उछल जो उठे तो मुझे ताज्जुब हुआ। पूछा, माजरा क्या है ?

—फौरन भागो। पार्क स्ट्रीट के आर्ट इन इंडस्ट्रीज में जाकर यामिनी राय की चित्र-प्रदर्शिनी को देख जाओ। आज ही प्रदर्शनी का आखिरी दिन है। उसका एक रिव्यु नहीं निकलने से मेरा यहाँ आना मुश्किल हो रहा है।

मैं समझ गया कि ऊपरवालों के बार-बार तकाजे के बावजूद रिव्यू नहीं छपा। एडीटर साहब नाराज हैं।

कलकत्ते के और-और संवाददाताओं की तरह नृत्य-गीत या कला की समझदारी मुझमें भी नहीं थी, लेकिन मौका पड़ जाता तो उन पर कालम का कालम लिख सकता था। तानसेन सदारंग को भी तो कवर किया है! बड़े गुलाम अली साहब गाने से पहले मंच के पास ब्लैकबोर्ड पर राग आदि लिख दिया करते थे। मेरे जैसे और-और संगीत-विशारद रिपोर्टर भी उस फारमूले के सहारे मजे में एक पैराग्राफ लिख देते। बहादुरी दिखाते हुए अंत में राय भी देते—खाँ साहब के गाने में पिछली बार के बजाय ज्यादा तन्मयता थी। कभी यों लिख मारा, सितार पर राग बागेश्वरी बजाकर रविशंकर ने मंत्र-मुग्ध कर दिया। अलग राय भी है, लेकिन जहाँ तक मेरा ख्याल है, राग बागेश्वरी में ही रविशंकर अपने कलाकार को सबसे ज्यादा प्रभावशाली रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

और, महाजाति सदन में रवीन्द्र संगीत सम्मेलन जो हुआ था ? कम से कम एक कालम रोज लिखना पड़ता था। लिखा, आज के अधिवेशन के सबसे ज्यादा उल्लेख योग्य कलाकार द्विजेन मुखर्जी थे। खास करके उनका वह अंतिम गीत—पात्र विदाई की स्मृति के अमृत से भरा रहे, भरा रहे—दिनों तक नहीं भूल सकूँगा। पिछले साल के सम्मेलन में इस गीत को एक दूसरे प्रसिद्ध गायक ने गाया था। अच्छा ही गाया था। लेकिन तो भी मानो इतना अच्छा नहीं लगा। लगता है, दर्द की कमी थी। इसके सिवाय कुछ गीत ऐसे हैं, जो खास-खास गायक के ही गले से निखरते हैं। 'चैत के दिन में झड़े पात के पथ पर'—इस गीत को गाते बहुतेरे लोग हैं, लेकिन पकज मल्लिक जैसा दूसरा कोई गा सकता है क्या ? और सहगल का गाया हुआ वह गीत....आमि तोमाय जतो.... कानन देवी का 'उस दिन दोनों भूले थे वन में' ?

इसी तरह की सूझ-बूझ और कलम के जोर से रिपोर्टर मजे में काम चला लेते हैं। अखबारों के रिपोर्टर बहुत हद तक गाँव के डाक्टरों जैसे होते हैं। विशेषज्ञ किसी रोग के नहीं, मगर इलाज हर बीमारी का करते हैं। जरूरत पड़ने पर छुरी-कैंची लेकर एक फटा ऐप्रन डाले पंचानन चटर्जी या मुरारी मुखर्जी की भूमिका में उतरने में भी उन्हें कोई झिझक नहीं होती।

लिहाजा बगैर हिचकिचाए मैं भी यामिनी राय की चित्र प्रदर्शनी के रिव्यू के लिए चल दिया।

एक तो प्रदर्शनी का अंतिम दिन और फिर आर्ट इन इंडस्ट्री का छोटा-सा हॉल। खासी भीड़ थी। उसी भीड़ में घूम-घूम कर मैं कुछ-कुछ नोट करता जा रहा था। एक हॉल से दूसरे में जाते हुए अचानक मेम साहब से भेंट हो गई। सोचने में अचंभा-सा लगता है, लेकिन हजार हो, कल्पना से भी सत्य गजब का होता है। क्यों दोला भाभी!

हम दोनों साथ ही बोल पड़े, अरे, आप?

—आप यामिनी राय के भक्त हैं शायद? मेम साहब ने मुझसे पूछा।

—चूंकि पचास रुपए माहवार की रिपोर्टरी करता हूँ, इसलिए आधे घंटे के लिए भक्त बन गया हूँ।

—आप रिपोर्टर हैं?

—बेशर्मी और बेहयाई देखने के बाद भी समझने में कष्ट हो रहा है?

—राम-राम, ऐसा क्यों कहते हैं?—पास की पेंटिंग पर एक नजर डालकर मेम साहब ने कहा—रिपोर्टरों को तो बड़े मजे हैं।

मैंने एक लम्बी उसाँस भर कर कहा—नदी का यह किनारा उस किनारे के बारे में यही सोचता है, कि....

पंक्ति पूरी करने का मौका नहीं मिला। उसके पहले ही वह बोल उठी, देखती हूँ, आप रवीन्द्रनाथ के भी भक्त हैं।

मेरे मुँह से अचानक निकल पड़ा, जरा देर में देखेंगी कि मैं आपका भी भक्त हूँ।

भीड़ थी। और बात न हो सकी। इन्हीं एक-दो मिनटों में कुछ कला-रसिकों ने एक नजर हम लोगों को देख लिया।

बगल वाले हॉल को जरा जल्दी-जल्दी देखकर हम दोनों साथ ही

बाहर निकल आए।

रात के प्राय: डेढ़ बज रहे हैं। इसलिए आज अब यहीं समाप्त कर रहा हूँ। कल सुबह तड़के ही जगना है। नौ बजे से प्रधान मंत्री का मंथली प्रेस कानफरेंस है। तुम समझ ही सकती हो, कल मेरे नसीब में क्या मुसीबत लिखी है।

कल तो तुम दोनों की छुट्टी है। तुम लोग जरूर जग रहे हो। मैं मजे में कल्पना कर रहा हूँ, खोकन-दा तुम्हारी गोद में सिर रखकर लेटे हुए हैं और तुम अपने उसी मशहूर बेसुरे गले से उन्हें कोई सड़ा हुआ-सा प्रेम का गीत सुना रही हो। है न?

छे

खोकन-दा से तुम्हारी जो पहली भेंट हुई थी, उस भेंट में उसने तुम्हें क्या संबोधन किया था, किस भाषा में क्या कहा था, इसकी मुझे खाक भी जानकारी नहीं है। मुझे यह भी नहीं मालूम कि उस दिन तुमने उसे किस रूप में ग्रहण किया था। लेकिन यह कल्पना तो मैं मजे में कर सकता हूँ कि खोकन-दा का सिर पहले तुमने ही खाया था। कोई कवच-तावीज पहन रखी थी कि नहीं, नहीं जानता, लेकिन कोई न कोई टोटका किया जरूर था। नहीं तो खोकन-दा जैसा आदमी...

नाराज हो रही हो? नाराज मत हो। असल में तुम्हारे उस मामले का आदि-पर्व जाना हुआ होता तो मुझे बड़ी सहूलियत होती। उस दिन आर्ट इन इंडस्ट्री से निकलने के बाद मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि क्या कहूँ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। पार्क स्ट्रीट पार करके चौरंगी होते हुए एसप्लानेड की तरफ जाते-जाते मैंने सिर्फ कहा—मुझे खूब यकीन था कि आपसे भेंट होगी।

—सच?

—सच।

—आज ही भेंट होगी, यह भी जानते थे?

—नहीं, सो नहीं जानता था। इतना ही जानता था कि भेंट होगी।

मेम साहब ठिठक पड़ी। गरदन घुमाकर मेरी ओर देखते हुए अचरज

पूछा, यह आप कैसे जानते थे कि हमारी फिर से भेंट होगी ?

मैंने सीधे जवाब नहीं दिया, बल्कि पलटकर पूछा—आपके पिताजी या लीगल प्रैक्टिशनर हैं ?

—अचानक यह सवाल क्यों ?—मेम साहब के कपाल पर संदेह की लकीर उग आई।

—घबराइए नहीं, मैं मोहन डाकू या डिटेक्टिव किरीटी राय नहीं हूँ।

किड स्ट्रीट को पार कर लिया। मैंने भाँप लिया कि मेम साहब के मन के आसमान से संदेह की बदली गई नहीं है। जभी मैंने कहा, इस बात में तो कोई शुबहा ही नहीं कि आपने कानून नहीं पढ़ा है। लेकिन आपने जिस ढंग से जिरह करना शुरू किया था कि लगा, आप कानूनदाँ की बेटी हैं।

अब की मेम साहब हँस पड़ी। मन भी कुछ हलका हुआ शायद। कई मिनट तक दोनों ही चुपचाप अजायबघर पार कर गए। वाइ० एम० सी० ए० को पीछे छोड़ दिया। लिंडसे स्ट्रीट के मोड़ पर आ निकले। और भ आगे बढ़े। फिरपो से आगे सीधे न जाकर राक्सी की ओर मुड़े। चुप्पी मैंने ही तोड़ी—चाय पीजिएगा ?

—चाय ? खास नहीं पीती। लेकिन चलिए, पी लें।

बगल के रेस्तराँ के एक केबिन में बैठ गये। बैरा आया। अपने हाथ के तौलिए से उसने साफ-सुथरी टेबिल को और एक बार पोंछ दिया। गंदा मेनू-कार्ड मेरी ओर बढ़ाकर एक नजर मेम साहब को देख लिया।

—दो फिश फ्राइ। दो चाय।

बैरा चला गया। बोलूँ-बोलूँ करते-करते ही कई मिनट बीत गए। इतने में बैरा दो छूरियाँ और दो फार्क हमारे सामने करीने से रख गया। फिर सोचने लगा, कुछ बोलूँ। लेकिन बोल नहीं पाया। बैरा फिर आ पहुँचा। एक बोतल साँस और दो ग्लास पानी रख गया। मैं समझ गया कि बैरा ने सोच लिया है, जोड़ी नई है। इसीलिए इन्स्टालमेंट में काम कर रहा है। फिश फ्राइ का प्लेट लेकर बैरा के आने से पहले ही मैंने पूछा, कुछ सोच रही हैं ?

आँचल को खींचकर मेम साहब ने कहा, नहीं, खास कुछ नहीं।

—खास कुछ न सही, कुछ तो सोच रही हैं ?

फिश फ्राइ आ गई। मैंने एक टुकड़ा उठा कर मुँह में डाला। मेम

साहब लेकिन कांटे को हाथ में लिये कुछ सोच रही थी। पूछा, कुछ पूछना है ?

—एक बात बताइएगा ?

—बेशक।

—हम दोनों की भेंट होगी, यह बात आपने जानी कैसे ?

—कैसे, सो तो नहीं कह सकता, पर मेरे मन में यह पक्का विश्वास था कि आपसे जरूर भेंट होगी।

—सिर्फ मन का विश्वास ?

—हाँ।

एक तो वह पहली मुलाकात थी, फिर उस बैरे छोकरे के फर्ज की वह मुस्तैदी ! ज्यादा बात नहीं हो सकी। रेस्तरां के उस केबिन से निकलने के पहले मैंने नोट-बुक का एक पन्ना फाड़ कर अपने आफिस का टेलिफोन नंबर लिख दिया। कहा, मौका मिले तो टेलिफोन कीजिएगा।

कुछ तो शर्म से और कुछ चाह कर भी मैंने उसका नाम-धाम, पता-ठिकाना, कुछ भी नहीं जानना चाहा। जी में तो बहुत कुछ आ रहा था। ख्वाहिश हो रही थी कि कहूँ—

तुम मुखातिब भी हो, करीब भी हो।
तुम्हें देखूं कि तुमसे बात करूं!

फिर मन में आया, नहीं, नहीं। इससे तो बल्कि यह पूछूं,

आँखों में ही रहे हो, दिल से नहीं गए हो
हैरान हूँ ऐ साकी, आई तुम कहाँ से !

तुमसे सच कहता हूँ भाभी, उसे अपने करीब पाकर, नजदीक से देखकर यही महसूस हो रहा था, यह तो वही है, जिसे पाने के लिए मैंने इतनी लम्बी दूरी तै की है, इतने दिनों तक संग्राम किया है। मन ही मन में यह खूब अनुभव कर रहा था कि मेरे वे दिन आ गए।

सोचा और भी बहुत कुछ था। वे सारी बातें अब आज लिख कर नाहक ही इस चिट्ठी को नहीं बढ़ाऊंगा। लेकिन एक बात जान लो, मेम साहब एक ही है, लासानी ! इस दुनिया में और भी करोड़ों-करोड़ असंख्य स्त्रियाँ हैं, जिनके स्नेह-प्रेम से करोड़ों-करोड़ पुरुषों का जीवन धन्य हुआ है। उनके स्पर्श से बहुतों की आँखें खुली हैं। मैं उन सबके प्रति अपनी श्रद्धा, अपनी कृतज्ञता जाहिर करता हूँ। मैं जानता हूँ, मेरी काली मेम साहब से बहुतेरी स्त्रियाँ खूबसूरत हैं, बहुतेरी उनसे कहीं ज्यादा पढ़ी-

लिखी हैं। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे लिए दुनिया में एक ही स्त्री आई है और वह मेरी मेम साहब है। मेम साहब के सिवा मेरे जीवन को इस रूप में गढ़ना और किसी के भी वश की बात नहीं थी। मिट्टी से हर कारीगर ही तो खिलौना गढ़ता है, लेकिन सबकी कुशलता क्या बराबर होती है? मेरी मेम साहब वह अनन्य जीवन-शिल्पी है, जिसने गीली माटी से मुझे एक जीवंत खिलौना बना दिया है।

सुनकर तुम हैरान रह जाओगी, उस रोज मैंने उसके बस पर सवार होने तक का इंतजार नहीं किया। उससे पहले ही एक बस पर सवार होकर अपने आफिस चला आया। मन ही मन सोचा, मैंने तो उसके लिए बहुत कुछ सोचा, सोचता हूँ। अब रेकर्ड की दूसरी पीठ भी देख ली जाय। देखें तो सही, वह मेरे लिए सोचती है या नहीं!

रात को आफिस पहुँचा तो देखा, बड़ी हलचल है। साँझ के बाद ही टेलिप्रिंटर पर न्यूज एजेंसी की खबर आई है—पूर्व-पाकिस्तान के बागेरहाट में बड़ा हंगामा हुआ है। कैसा हंगामा हुआ और उसकी कलकत्ते में क्या प्रतिक्रिया होती है, इस चिंता से सभी परेशान हो रहे थे। दूसरे दिन मेरी ड्यूटी स्यालदा स्टेशन पर पड़ी। पूर्व-पाकिस्तान से आने वाले मुसाफिरों से मिलकर वहाँ की परिस्थिति का पता करना होगा। दूसरे दिन खुलना की गाड़ी आई थी, लेकिन काफी देर करके। प्लेटफार्म से दूसरे लोगों को पहले से ही हटा दिया गया था। कई सरकारी कर्मचारी वहाँ मौजूद थे। बागेरहाट की हालत जान लेने के बाद उन लोगों ने सभी मुसाफिरों को ताकीद कर दी, खबरदार अफवाह न फैलाएँ।

आने वालों की बातचीत से साफ समझ में आया कि परिस्थिति गंभीर है। कहाँ से, कैसे यह हंगामा हुआ, यह कोई नहीं बता सका। लेकिन यात्रापुर के एक सज्जन ने बताया, बागेरहाट की एक आम सभा में पश्चिम पाकिस्तान के एक नेता के भाषण के बाद ही पहले कुछ लूट-पाट शुरू हुई। दो-तीन दिन के बाद छुरेबाजी होने लगी। गुंडों के हाथ सबसे पहले लतीफुर्रहमान ने अपनी जान गँवाई।

स्यालदा स्टेशन के टिकटघर के सामने एक संदूक पर बैठ कर हम दोनों जने बातें कर थे। बात कर नहीं रहा था, बात सुन रहा था। ये सज्जन पहले एक छोटे-से स्कूल में मास्टरी करते थे। उस स्कूल में ये बहुत दिनों तक पढ़ाते रहे। बागेरहाट का एक-एक आदमी उन्हें पहचानता था, मानता था। ज्यादातर छात्र ही वहाँ मुसलमान थे। सो हों।

वह सब भी उन्हें खूब चाहते थे। लतीफुर साहब जब उस स्कूल के सेक्रेटरी थे तो स्कूल दुमंजिला बना। लड़कों के वालीवाल खेलने का इंतजाम किया गया, शिक्षकों की तनखा भी दस-पंद्रह रुपये करके बढ़ी। पता नहीं क्यों, अगले साल सरकार ने स्कूल-कमेटी को तोड़ दिया। कई महीने के बाद स्कूल की रकम के दुरुपयोग के जुर्म में लतीफुर साहब को गिरफ्तार किया गया। लेकिन कचहरी में जुर्म का कुछ भी साबित नहीं हुआ।

इस बीच स्कूल की नई प्रबन्धकारिणी ने उन्हें अयोग्य बताकर नौकरी से हटा दिया। दूसरा कोई रास्ता न देखकर उन्होंने एक दूकान खोल ली। शुरू-शुरू में दूकानदारी बड़ी वाहियात लगती थी। लेकिन चारा क्या था? आगे चलकर अवश्य व्यवसाय में जी लगा। कारबार जम भी गया। फूटे भाग्य को वह भी नसीब न हुआ। इस बार के हंगामे में वह दूकान भी जलकर खाक हो गई।

ये किस्से न भी सुनता तो हर्ज नहीं था। लेकिन करता भी क्या! दूसरा ऐसा कोई वहाँ का नहीं मिला जिसकी बात पर भरोसा करके रिपोर्ट लिखी जाय। इसलिए चुपचाप सुन रहा था। आखिर इतनी देर तक धीरज के साथ सुनने का पुरस्कार बाद में मिला।

लतीफुर साहब जब विद्यार्थी थे, तो छात्र-कांग्रेस में थे। आगे जब उन्होंने वकालत शुरू की, तो राजनीति से पल्ला झाड़ लिया। लेकिन पूर्व-पाकिस्तान की राजनीतिक आबहवा जब जटिल हो उठी, तो वह राजनीति के मैदान में फिर से उतरे। समूचा खुलना जिला लतीफुर साहब की बात पर उठता था, बैठता था। जिले में कहीं भी कोई जुल्म हुआ, गलत बात हुई कि वह दहाड़ उठे। खुलना डॉक के कई हजार बंगाली मुसलमान मजदूर बहुत दिनों के जुल्मो-सितम और बेइज्जती के खिलाफ लतीफुर की अगुआई में ही पहले-पहल डटकर खड़े हो गये थे।

पूर्व-पाकिस्तान की गद्दी से फजलुल हक साहब को उतार कर पूर्वी बंगाल को सीधी राह पर लाने के लिए इस्कंदर मिर्जा ढाका आये। कुछ ही दिनों में उन्होंने लतीफुर साहब को बुलवा भेजा। लतीफुर साहब लाट साहब का न्योता खाने के लिए ढाका गये थे, पर एक ही शाम बूढ़ीगंगा की हिलसा मछली खाकर न्योता खाना खतम नहीं हो गया। दो साल तक केन्द्रीय कारागार में आराम करने के बाद कहीं उन्हें खुलना आने की इजाजत मिली।

खुलना लौटने के बाद लतीफुर साहब और भी खिलाफ में खड़े

आफिस लौटकर रिपोर्ट लिखनी थी। इतना ... नी सुनने
नहीं था। इसीलिए उस भले आदमी से पूछा, लतीफुर साहब
क्या करते हैं ?
—लतीफुर साहब नहीं रहे। बागेरहाट के इस दंगे की पहली बलि
ए।
—कह क्या रहे हैं आप ?
—यही सवाल तो हम सब का है।
—फिर भी, क्या समझते हैं ?
—बागेरहाट के लाहौर काटन मिल में बहुत दिनों से मजदूरों की
हड़ताल चल रही थी। मजदूरों के नेता वही थे। कुछ दिनों से ऐसी अफ
वाह उड़ रही थी कि लतीफुर साहब को सबक सिखाने के लिए शहर
बाहर से बहुतेरे गुंडे आए हुए हैं। हमें इस बात पर एतबार नहीं हुआ,
इसलिए कि बागेरहाट में लतीफुर साहब के बदन पर हाथ लगाने की
हिम्मत खुद इस्कंदर मिर्जा को भी न थी। बुधवार की साँझ को दंगे की
खूनी होली शुरू हुई। दूसरे दिन मैं घर से बाहर नहीं निकला। शुक्र
वार को सवेरे जब मैं अपनी दूकान देखने गया तो सुना, लतीफुर साह
का काम तमाम कर दिया गया है।
मैं ताड़ गया, लतीफुर साहब को खत्म करने के लिए ही लाहौर काटन
मिल मालिकों की साजिश से बागेरहाट में दंगा कराया गया। क्योंकि
शहर की हालत अगर ठीक रही होती तो उनकी राह के उस काँटे को
उखाड़ फेंकना मुमकिन नहीं था।
आफिस से लौटने में काफी रात हो गई। काफी थकावट महसूस
कर रहा था। तो भी बागेरहाट दंगे की नेपथ्य कहानी मैंने लिख डाली।
इसीलिए दिनभर मेम साहब के बारे में सोचने का मौका नहीं मिला।
दूसरे दिन मेरा वीकली ऑफ था। दफ्तर नहीं गया। उसके दूस
दिन मेरी टेलिफोन ड्यूटी थी। इसलिए कुछ देर करके आफिस गया।
उस समय आज की तरह डायल घुमाते ही नंबर नहीं मिलता
था। आपरेटर पर निर्भर रहना पड़ता था। अखबारों के रिपोर्टरों
नाइट-टेलिफोन ड्यूटी अजीब होती है। पुलिस, अस्पताल, ऐंबुलेंस,
रेल-पुलिस, स्टेशन, दमदम हवाई अड्डा आदि जगहों से रोजाना हि
स्थानीय समाचार के लिए करीब सौ के टेलिफोन करना पड़ता।

अख़बारी मुहल्ले में तथा एक ही टेलिफोन एक्सचेंज के दायरे में और भी चार-पांच अख़बार के दफ्तर थे। एक्सचेंज के आपरेटर लोग हर रात को लाइन देते-देते प्राय: रिपोर्टर ही बन गए थे। नंबर बताने की जरूरत नहीं होती थी, इतना ही कहना काफी होता था, रिवर पुलिस दीजिएगा जरा ?

जवाब मिलता, रिवर पुलिस एनगेज्ड। टाइम्स ऑफ इंडिया बात कर रहा है।

आज की तरह उन दिनों हवाई अड्डे पर रिपोर्टर नाम की कोई चीज नहीं थी। इसलिए छोटे-मोटे समाचार के लिए एयरपोर्ट पुलिस सिक्युरिटी को रोज फोन करना पड़ता था। सो रिवर पुलिस नहीं मिलता तो कहता, एयर पोर्ट दीजिए।

कहना भर कि आपरेटर कह देता, सिक्किम के महाराज के एराइवल के सिवाय आज और कुछ नहीं है।

और तुरन्त कहते, आप जरा नीलतरन से बात कर लीजिए। किसी सीरियस ऐक्सीडेण्ट की खबर है।

ऐसा नही कि सभी आपरेटर ऐसी सहायता करते। लेकिन ज्यादातर लड़कियां ही काफी सहयोग देती। रात को टेलिफोन-ड्यूटी करते-करते बहुतेरी आपरेटरों से बहुत-से रिपोर्टरों का बड़ा मीठा नाता हो गया था।

कभी-कभी जब समाचारों की भीड़-भाड़ नही होती तो हम लोग आपस में सुख-दुख की बातें करते। ऐसी ही बातों के सिलसिले में हम लोगों ने टेलिफोन एक्सचेंज की बहुत-सी कहानियां सुनी थी। बहुत-से अफसरों की 'अनटोल्ड स्टोरी' भी सुनी। कुछ का अखबार में छापकर पर्दाफाश भी किया था, इससे आपरेटरों पर अफसरों की मनमानी बन्द हुई थी।

आपरेटर भी हमारी कुछ कम मदद नहीं करती थीं। उस समय का जिक्र है, जब कैलाशनाथ काटजू बंगाल के गवर्नर और डॉ० राय मुख्य मन्त्री थे। काफी जोरों की अफवाह फैली थी कि कुछ मामलों में उन दोनों में गहरा मतभेद हो गया है। लेकिन लाख कोशिश करके भी हम उसके ठीक-ठीक कारणों का पता नही पा रहे थे। आखिर एक दिन अचानक ही एक आपरेटर ने बताया, जानते हैं, आज टेलिफोन पर गवर्नर से मुख्य मन्त्री की खासी झड़प....

दो दिन बाद उसी झगड़े की कहानी हमारे अखबार को बैनर

स्टोरी बन गई। मोटे-मोटे हरफों में चार कालम की समरी में लिखा गया, राजभवन के निकट सम्पर्क में रहने वाले बड़े ही विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि प्रशासन सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को लेकर राज्यपाल से मुख्य मन्त्री की अनबन हो गई है!

इस समाचार से देश की जनता या राइटर्स बिल्डिंग के कुछ अफसर ही नहीं, खुद डाक्टर राय और काटजू साहब तक चौंक उठे। बड़ी खोज-पड़ताल हुई, पर उन्हें यह राज नहीं मालूम हो सका कि ऐसी गुप्त खबर बाहर कैसे निकल गई!

हम लोग आफिस में बैठे हँसते रहे। सोचते रहे, हम चाहते तो जानें और कितना क्या छाप देते, पर छापा नहीं!

आपरेटर लड़कियों से ऐसी बहुतेरी चौंकाने वाली खबरें हमें मालूम हो जाती थीं और बीच-बीच में बाजार गर्म कर देते थे। मन्त्री और अफसर लोग नाहक अँधेरे में टटोला करते थे और हम सब मुस्कुराते हुए मन्त्रियों और अफसरों के यहाँ उन्हीं के पैसे से उन्हीं के घर में बैठे चाय पिया करते।

उस दिन रात आफिस पहुँच कर सदा की भाँति टेलिफोन उठा कर पूछा, कौन बोल रही हैं?

गला पहचाना हुआ था। जवाब मिला, मैं हूँ गार्गी।

दूसरे ही क्षण मिस गार्गी चक्रवर्ती ने मुझसे पूछा, अब की बहुत दिनों के बाद आपको टेलिफोन ड्यूटी पड़ी है, है न?

मैंने कहा, नहीं, बहुत दिन कहाँ....

गार्गी ने बीच ही में टोक कर पूछा, कल और परसों आप दफ्तर नहीं आए थे?

—क्यों, क्या बात है?

—पहले बता दीजिए कि दो दिन आप थे कहाँ?

—और कहाँ रहूँगा? कलकत्ते में ही था। असल में कल मेरा आॅफ था और परसों रात बड़ी देर करके आफिस आया था।

—ऐसा?

—जी, हाँ।

गार्गी चक्रवर्ती टेलिफोन छोड़ नहीं रही थी। खींच-खींच कर इधर-उधर की दो-चार बातें कहकर उसने पूछा, तो कैसे हैं आप?

—आज अचानक पचास रुपये के एक रिपोर्टर की इतनी खोज-खबर

ले रही हैं, माजरा क्या है ?

'जस्ट ए मिनिट' कहकर गार्गी किसी ग्रोर को लाइन देने लगी। मैं रिसीवर थामे रहा। जरा ही देर में वह मेरी लाइन पर ग्रा गई। कल-परसों ग्रापके बहुत बार फोन ग्राए थे।

गार्गी को मैं देख तो नहीं पा रहा था, पर उसके हँसी-खुशी से भरे मुखड़े का मजे में ग्रनुभव कर रहा था। मैंने जरा मजाक करके कहा, मैं कुछ मिस गार्गी तो हूँ नहीं कि मेरे बहुत फोन ग्राएँगे !

—ग्रच्छा !

—जी हाँ।

गले को कुछ ग्रभिनव-सा करके गार्गी बोली, बहुत न सही, ग्रापको कोई एक तो बहुत बार फोन कर सकती है न ! जस्ट ए मिनिट....

गार्गी फिर लाइन देने चली गई।

मैं सोचने लगा, मुझे बहुत बार फोन ग्राखिर कौन कर सकता है ? मेम साहब बहुत हुग्रा एक बार कर सकती है, लेकिन बहुत बार किसने किया ?

गार्गी ने लौट कर कहा, कसम, एक ने ग्रापको बहुत बार....

—लेकिन उसमें ग्रापको इतना इण्टरेस्ट !

—खास नहीं। पहले ग्रापका ऐसा टेलिफोन नहीं ग्राता था, इसी लिए....

ग्रबकी मुझे शुबहा हुग्रा। तो क्या मेम साहब थी ?

गार्गी ने कहा, लीजिए, मैं जोड़ देती हूँ।

—ग्रापने नम्बर भी ले रक्खा है ?

उधर से गार्गी का गला नहीं सुनाई पड़ा। जरा ही देर में बोली, लीजिए, स्पीक हेयर....

मैंने खूब संयत होकर सम्बोधन किया, नमस्कार !

—नमस्कार।

—क्या खबर है, कहिए ?

—खबर क्या होगी। दो दिन से तो ग्रापका पता नहीं था।

मेम साहब मुझे दो दिन से खोज रही थी, यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। फिर भी बनकर मैंने कहा, ग्रापने फोन किया था क्या ?

—हाय राम, ग्रापसे किसी ने कहा नहीं ?

हमारे दफ्तर ग्रौर ग्वाले के गुहाल में कोई फर्क नहीं है, यह बात मैं

मेम साहब को कैसे समझाऊँ ? सो मैंने कहा, अखबार के दफ्तर में इतने फोन आते हैं कि याद रखना किसी के लिए सम्भव नहीं है। और फिर रोज ही तो ड्यूटी बदल जाती है।

मेम साहब तुरन्त बोली, क्यों, उन आपरेटर भद्र महिला ने आपसे नहीं कहा ?

गार्गी एकाएक हम दोनों की लाइन में आकर बोली, कहा है।

मेम साहब चौंकी। लेकिन मैं जानता था कि गार्गी हम लोगों की लाइन छोड़कर जाने वाली जीव नहीं है।

मेम साहब ने घबरा कर पूछा, वह कौन हैं ?

—मिस गार्गी चक्रवर्ती।

लाख हो, आखिर औरत ही तो है! गार्गी का नाम सुनते ही मेम साहब का मन शंकालु हो उठा। ईर्ष्या भी हुई शायद। सो बुझौवल बुझाने की तरह पूछा, आपसे मिस चक्रवर्ती का खूब परिचय है न ?

मैं अपने तईं जरा हँसा। कहा, हम रिपोर्टरों का प्रायः सभी आपरेटरों से खूब परिचय है।

मैंने फिर व्यंग से पूछा, दिमाग में किसी कहानी का प्लाट आ गया है क्या ?

मेम साहब शायद समझ गई, गार्गी के बारे में ज्यादा पूछताछ करना बेकार है। बोली, कल आपसे मिलकर कथानक को ठीक कर लूँगी।

मैंने छूटते ही पूछा, कल भेंट होगी आपसे ?

—तीसरे पहर हो सकती है।

—मैं पाँच बजे लिंडसे स्ट्रीट के मोड़ पर आपका इंतजार करूँगा।

दोला भाभी, तुमसे छिपा थोड़े ही है कि कलकत्ता शहर में मध्यवित्त लड़के-लड़कियों का थोड़ा-सा प्रेम करना कैसा कठिन काम है। प्रेम को छोड़ो, गुपचुप दो बातें करने तक की जगह नहीं है कलकत्ते में। हम जब छोटे थे, तो लेक जाकर प्रेम करने का रिवाज चालू था। आगे चलकर उस लेक में इतनी हताश प्रेमी-प्रेमिकाओं ने अपनी जान दी कि वहाँ अब प्रेम करने की तो क्या, घूमने की सोचना भी असंभव है।

ऐसा गजब का शहर सारी दुनिया में तुम्हें कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगा। इस कलकत्ते के सिवाय संसार के सारे शहर-नगर में घूमने-टहलने की कितनी अच्छी-अच्छी जगहें हैं। रोज-रोज और भी नई-नई सुन्दर जगहें तैयार हो रही हैं घूमने की। लेकिन अपने इस कलकत्ते में ? वही जॉब

चार्नक और क्लाइव के ओवरसियर लोग जो कर गए हैं! हम लोगों के समय तक वह भी साबित न रहा। लगता है, कलकत्ते के लोगों को एक अंधे कुएं में ठूंस कर चाबुक से पीटा जा रहा है, लेकिन उन बेचारों को जरा आंसू बहाने का समय या फुर्सत नहीं है।

सभी युग में, सभी देश के लोगों ने प्रेम किया है, करेंगे। जवानी के अपने उन रंगीन दिनों में वे सबसे जरा अलग-थलग रहेंगे, जरा आड़-ओट में चलेंगे। लेकिन कलकत्ते में यह संभव है भला! नया-नया व्याह करके पति-पत्नी जरा एकांत अकेले में बैठकर मन की दो बातें करें, ऐसी जगह कहां है यहां? मां को खोने वाला बच्चा या बच्चे को खोने वाले माता-पिता इस कलकत्ते में जो खोलकर रो नहीं सकते। आदमी के जीवन में इससे बढ़कर और ट्रेजेडी क्या हो सकती है?

मैंने किताबों में पढ़ा है, नेताओं के भाषणों में सुना है, ये बंगाली सौंदर्य के पुजारी हैं, कलचर के मैनेजिंग एजेंट हैं। रुचिबोध शायद सिर्फ बंगालियों में ही है। लेकिन मैं हलफ उठाकर कह सकता हूं, कोई भी निरपेक्ष विचारक कलकत्ता शहर की शकल-सूरत देखकर बंगालियों को यह अपवाद हरगिज नहीं देंगे। चितपुर-जोड़ासांको में बैठकर रवीन्द्रनाथ ने लिखा कैसे, सोच ही नहीं पाता। शेक्सपियर, बायरन या आज के टी० एस० इलियट को इस चितपुर में छोड़ दिया जाता, तो कविता की कौन कहे, एक पोस्टकार्ड भी नहीं लिख सकते।

ताज्जुब है, इतने पर भी बंगाली लड़की-लड़के आज भी प्रेम करते हैं, कविता की चर्चा करते हैं, कला की साधना करते हैं। जहां गुलमुहर का एक भी पेड़ नहीं, जहां कोयल की कूक नहीं सुनाई पड़ती, जहां क्षितिज की ओर आंखें दौड़ाने से सिर्फ जूट मिलों की चिमनियां और धुआं ही नजर आता है, विश्वकर्मा के उस तीर्थ में मैंने और मेम साहब ने अपना नया जीवन शुरू किया।

सात

मुझे लग रहा था कि चिट्ठियां बेहद लंबी होती जा रही हैं और तुमने और भी बड़ी-बड़ी, बहुत बड़ी चिट्ठी लिखने को लिखा है। यह भी लिखा है, न हो तो कई दिनों की छुट्टी लेकर कलकत्ते जाकर तुम्हारे आमने-

सामने बैठकर ही सारा कुछ सुनाऊँ। पहली बात तो यह है कि अभी लोक-सभा का बजट सेसन चल रहा है। छुट्टी लेकर कलकत्ता जाने का कोई सवाल ही नहीं उठता। और, अपनी जुवानी यह कहानी मैं तुम्हें सुना नहीं सकता। मेम साहब मुझे कितना प्यार करती थी, कितना लाड़ करती थी, कितनी तरह से लाड़ करती थी, हम दोनों ने किस प्रकार से जगकर रातें बिताई हैं—यह सब तुमसे मैं कहूँगा कैसे? मारे शर्म के मेरे गले से बोली नहीं फुटेगी। भगवान् ने गला सबको दिया है। लेकिन गले के स्वर के सिवाय सुर क्या सबको है? मिठास है? नहीं है। कंठ रहने से ही क्या सारी बातें कही जा सकती हैं? सुख-दुख, हँसना-रोना, खुशी-गम—सारी अनुभूतियों को क्या शब्द दिया जा सकता है? हो सकता है कि दूसरे लोग कह सकते हों, लेकिन मुझमें वह क्षमता नहीं है। मुझे माफ करना।

समय होता तो चिट्ठियाँ और लंबी हो सकती थीं। यह भी है कि लिखते हुए बहुत बार कलम भी रुक जाती है। मुझे चमका देकर मेरा मन कब जो बीते दिनों की याद करने योग्य स्मृतियों के गहन में जा छिपता है, समझ नहीं पाता। देर तक खोज-ढूंढ़ करने के बाद पता लगता है कि वह तो मेम साहब के आँचल में जा छिपा है। तुम्हें यह सब चिट्ठियाँ लिखने बैठता हूँ तो उन दिनों की स्मृतियाँ बार-बार याद आती हैं। मन ही मन कभी हँसता हूँ, कभी शर्म आती है। कभी ऐसा लगता है कि मेम साहब गीत गा रही है और मैं बेसुरे गले से कोरस गाने की कोशिश कर रहा हूँ। इस चिट्ठी के लिखते समय मन में रिवाल्विंग स्टेज घूम गया, दृश्य बदल गया। मेरी आँखें धुंधली हो आईं। कलम थम गई। जरा ही देर में दोनों आँखों से आँसू बह निकले।

तुम्हें चिट्ठियाँ लिखते हुए ऐसे ही हर पल अपने को मैं भुला बैठता हूँ दोला भाभी। आप ही अपने को खो बैठता हूँ। फिर बड़े कष्ट से पुराने दिनों की ओर लौटता हूँ और तब तुम्हें खत लिखने लगता हूँ।

पहले से ही तुम्हारा जी दुखाने का जी नहीं है। समय पर तुम मेरे आँसुओं के इतिहास को जानोगी। लेकिन इतना जान लो कि आज सीधा खड़ा होने तक की ताकत मुझमें नहीं है। चलने की ताकत नहीं है। किसी तरह से मानो लुढ़क कर चल रहा हूँ।

यह सब पढ़ने में जरूर तुम्हारा जी नहीं लग रहा होगा। हमारे पहले अपायंटमेंट की सुनने के लिए तुम छटपटा रही होगी। क्यों? मगर

मात्र पहले ही दिन को क्यों, और भी बहुत कुछ तुम्हें बताऊँगा। बात लेकिन बहुत दिनों की हो गई। कुछ बातें, कुछ याददाश्त धुंधली हो गई हैं।

उस दिन दोपहर में मैं दफ्तर गया। कुछ देर तक काम किया, फिर एक जरूरी काम का बहाना बना कर डेरे लौट आया। साबुन मल कर खूब अच्छी तरह से नहाया। धुली हुई धोती और कुरता पहना। चेहरे पर थोड़ा-सा पाउडर भी मल लिया था शायद। उसके बाद काली मैया की तसवीर को कई बार प्रणाम करके निकल पड़ा। देर न हो कहीं, इसलिए बहुत पहले ही निकला।

साढ़े पाँच बजे एसप्लानेड पहुँच गया। दफ्तरों की छुट्टी का समय। जाने-पहचाने बहुत-से लोगों से भेंट हो सकती है। इस डर से चौरंगी से आगे रावसी सिनेमा के बगल से घूमकर न्यू मार्केट चला गया। दूकानों के सामने कुछ देर तक घूमते रहने के बाद लिंडसे स्ट्रीट के मोड़ पर आ पहुँचा।

ज्यादा देर रुकना नहीं पड़ा। लगभग उसी समय मेम साहब आ गई। एक नजर उसे देख लिया। बहुत अच्छी लगी। वह मुझे बड़ी पवित्र मालूम हुई। बड़ा मामूली साज-सिंगार किया था। अपने घने काले और लंबे बालों का एक साधारण-सा जूड़ा बाँध लिया था। चेहरे पर प्रसाधन की बू-बास नहीं थी। पहनावे में करघे की एक मझली किस्म की साड़ी। बदन पर लखनऊ चिकन का ब्लाऊज। दाएँ हाथ में एक कंगन, बाईं कलाई पर स्टेनलेस स्टील के बैंड में बँधी घड़ी। हाथ में दो-एक कापी किताबें और पर्स।

पहले किसने बात की, अब याद नहीं आ रहा। बात क्या हुई, वह भी ठीक-ठीक याद नहीं। हाँ, इतना याद है कि मैंने पूछा था, चाय पीजिएगा?

मेम साहब ने कहा, नहीं, चाय छोड़िए। उससे अच्छा है, चलिए, कहीं जरा बैठें।

रास्ता पार करके मैदान की ओर गया। वहाँ से कुछ दूर जाकर एक कोने में दोनों जने बैठ गए। देर तक दोनों ही चुपचाप रहे। बीच-बीच में उसकी तरफ देखता रहा और तृप्ति से मन मेरा भरता गया। मेम साहब भी रह-रहकर मुझे देख रही थी। कई बार दोनों की आँखें लड़ गईं। दोनों हँसे।

सेकंड भर वाद फिर मैंने मेम साहव की ओर ताका। अब की उससे चुप रहते न वना। बोली, क्या देख रहे हैं ?

पहले तो मुझसे जवाब नहीं दिया गया। लाज लगी, हिचक हुई।

जरा देर में मेम साहव ने फिर पूछा, क्या हो गया ? जवाव नहीं दे रहे हैं ?

—हर समय हर सवाल का जवाब भी दिया जा सकता है क्या कि जवाव देने की क्षमता होती है ?

—मेरा सवाल क्या वहुत मुश्किल है ?

—कुछ दिनों के वाद यह सवाल मुश्किल नहीं रहेगा, पर आज तो वहुत मुश्किल लग रहा है।

दोनों की निगाह चारों ओर घूम गई। मैंने फिर चोरी से मेम साहव को देख लिया। पकड़ में नहीं आया। लेकिन अंत तक नहीं बच सका, पकड़ में आ गया।

मुस्कुराते हुए मेम साहव ने जानना चाहा, इस तरह से क्या देख रहे हैं ?

मैंने कई वार जो-सो, बे-जरूरत की बातें बता कर उसके प्रश्न को टाल जाना चाहा। लेकिन टाल नहीं सका।

मैंने कहा, आप नहीं जानती हैं कि मैं क्या देख रहा हूँ ?

—नहीं।

—सच ?

मेम साहव फिर हँसी। वोली, पहले ही दिन कैसे समझ गए कि मैं झूठ वोल रही हूँ ?

—नहीं-नहीं, सो नहीं।

—तो फिर वताइए कि क्या देख रहे हैं। मेम साहव ने जैसे अपनी माँग पेश की।

अव मैंने देर नहीं की। मेम साहव को देखते हुए ही कहा, आपकी आँखें वड़ी सुंदर हैं....

होंठ काटते हुए मेम साहव ने मुँह फेर लिया। जरा दबे गले से कहा —ठेंगा सुंदर हैं !

कुछ देर के लिए फिर चुपचाप। मेम साहव ने कहा, मैं काली कुरूप हूँ, इसलिए मेरा मखौल उड़ा रहे हैं ?

दोला भाभी, कोई वजह नहीं थी, फिर भी हम दोनों ने मुस्कुराते

हुए देर तक तर्क किया। पहले-पहल प्रेम में पड़ जाने पर नाहक ही ऐसा बहुत कुछ करना होता है न? अंत में मैंने फिर कहा, सच में आपकी आँखें बड़ी सुंदर हैं।

रुखसत होने के पहले मैंने कहा, पहले ही परिचय के दिन आपके रूप की आलोचना से यदि कोई चूक हुई हो तो माफ करेंगी मुझे।

तुमने तो मेम साहब को देखा है। तुम्हीं सच-सच कहो तो, उसकी आँखें सुंदर हैं या नहीं। वैसी काली, खिचो-खिचो-सी, बुद्धि से दमकती हुई आँखें मैंने तो अपनी जिंदगी में कहीं नहीं देखीं। उन आँखों ने मुझे चुंबक की तरह खींच लिया था। पहली ही बार जब दानापुर पैसेंजर में मेम साहब से भेंट हुई, तभी मैंने यह समझ लिया था कि मेरे एकाकी जीवन का अब अंत होने वाला है। मैदान में मेम साहब के खूब नजदीक बैठकर मेरी वह धारणा और दृढ़ हो गई। मैंने खूब समझा कि जीवन-देवता मुझे इस भीड़ में खोने नहीं देंगे। उन्होंने मेरे जीवन-संग्राम के सेनापति की नाईं चुपचाप एकांत में मेम साहब को भेज दिया है।

मेरी नई सेनापति ने भी शायद समझ लिया था कि महज थोड़ी-सी मुस्कुराहट, जरा-सा गीत, जरा-सा सुख, थोड़ी-सी खुशी, थोड़े-से प्यार के लिए ही विधाता उसे खींच कर मेरे निकट नहीं लाया है।

दो-चार दिन जब और भी भेंट-मुलाकात हो चुकी, तो एक दिन पार्क सर्कस के मैदान के एक कोने में बैठकर मेम साहब को मैंने अपनी जीवन-कहानी सुनाई। सारा कुछ सुनकर मेम साहब ने कहा, धातु बेशक अच्छा है, मगर मिलावट हो गई है। जेवर बनाने के लिए इसे तपाना कुछ ज्यादा पड़ेगा, पिटाई ज्यादा करनी होगी।

—किसको तपाना है, किसको पिटाई करेंगी?

—समझ नहीं रहे हैं?

—अकल हो, तब तो समझूँ!

हँसते हुए जरा ऊँची आवाज में उसने कहा, अजी, आपको।

लगभग तुतलाता-सा मैंने पूछा, आप मुझे तपाइएगा, पीटिएगा?

नाहक गंभीरता लाने की कोशिश करती हुई मेम साहब बोली, और नहीं तो क्या, आपकी पूजा करूँगी?

जरा देर रुककर बोली, आप देखिए तो सही, आपको मैं किस तरह काबू में करती हूँ!

—सच?

जरूर।

—कर सकेंगी ?

—बेशक ! बड़े हो आत्मविश्वास से मेम साहब ने जवाब दिया।

—मेरी माँ तक पहले ही चल दीं कि कहीं हार न जायँ...सो आप....

और भी कई सप्ताह बीत गए। इस बीच मेम साहब यह जरूर समझ थी कि इम्तहान देकर मैंने किसी तरह पास भर किया है, पढ़ा-लिख कुछ खास नहीं है। इसीलिए उसने कहा, थोड़ा-थोड़ा रोज पढ़ा कीजिए

—अरे, इस उमर में अब पढ़ाई-लिखाई !

...साफ और सीधा जवाब मिला—बेकार की दलील न दें। थोड़ा-बहुत जरूर पढ़ा कीजिए रोज।

—एक दर्जन अखबार और एक दर्जन जर्नल तो रोज पढ़ता हूँ।

—अखबार में काम करने के लिए सिर्फ अखबार पढ़ने से काम नहीं चलता, कुछ और भी पढ़ना चाहिए।

मैं चुप रहा। बैठे-बैठे मेम साहब की बात सोचता रहा। मेम साहब ने कहा, एक बात बताइएगा ?

—बताऊँगा।

—मेरी बातों से आपको खीज हो रही है, है न ?

—नहीं, नहीं, खीजने की क्या बात है ?

—तो फिर इतना गंभीर होकर क्या सोच रहे हैं ?

मेरी निगाह उदास हो गई। मन भूत-भविष्य के सारे आसमान में उड़ता फिरने लगा। मैंने इतना ही कहा, जरा भी खीज नहीं आ रही है। मैं फकत यही सोच रहा हूँ कि आज तक तो और किसी ने मुझसे य सब बातें नहीं कहीं !

—तो क्या हुआ ?

हम दोनों की बातें इसी तरह से आगे बढ़ती गईं। अंत में मेम स ने कहा, क्या आप ताजिंदगी एक मामूली रिपोर्टर ही रहेंगे ?

—महज सवा सौ माहवार के रिपोर्टर बनने का ही सौभाग्य तक नहीं हुआ, तो कल्पना के सहारे कितना आगे बढ़ूँ ?

मेम साहब ने खुलासा कह दिया, छोड़िए इन बातों को। सिर्फ भूत और वर्तमान में ही महदूद नहीं है, दर असल भ जीवन है।

—भूत और वर्तमान के क्षयरोग से रीढ़ ही टूट गई है।

भरोसा नहीं होता कि भविष्य में तन कर खड़ा हो सकूँगा।

—यह बात सही नहीं हुई। भूत और वर्तमान है कैनवस, महज पृष्ठभूमि। तसवीर तो अभी आँकी ही नहीं गई है।

खैर, मेम साहब ने कहा, भूत और वर्तमान के लिए इतने परेशान न हों, भविष्य के लिए अपने आपको तैयार कीजिए। क्लासिक्स पढ़िए, अच्छा-अच्छा साहित्य पढ़िए।

लड़के-लड़कियाँ आमतौर से विद्यार्थी जीवन में ही पढ़ा करते हैं। मेरे साथ जो हुआ, वह यह कि मुझे गाइड करने वाला ही कोई नहीं था। दूसरे, विद्यार्थी जीवन में उसकी सुविधा और सुअवसर नहीं मिला। इम्तहान पास करने के लिए मजबूरन कुछ बंगला और अंगरेजी साहित्य पढ़ना जरूर पड़ा। इसके सिवा बंकिम, शरत्, रवीन्द्र को किसी न किसी कारण या उपलक्ष से पढ़ा। कभी-कभार किसी दुर्घटनावश जानसन या टी० एस० इलियट को भी शायद पढ़ा। लेकिन पढ़ना कहने से असल में जो मतलब निकलता है, वह पढ़ाई नहीं पड़ी। मेम साहब के पाले पड़कर अब मैंने वास्तव में कुछ पढ़ना शुरू किया।

कभी अपने घर से, कभी युनिवर्सिटी लाइब्रेरी से मेम साहब किताबें ला-लाकर मुझे देने लगी। मैंने भी धीरे-धीरे पढ़ना शुरू कर दिया। अंगरेजी और बंगला दोनों। विद्यासागर, हेमचंद्र, नवीनचंद्र, माइकेल मधुसूदन को फिर से पढ़ा। रमेशचंद्र, शिवनाथ शास्त्री भी नहीं छूटे। उसके बाद मेम साहब ने मोहितलाल मजुमदार से ले कर जीवानंद दास का भी प्रेसक्रिप्शन दिया। उधर डोरोथी पार्कर को पढ़ा, पढ़ी राबर्ट फ्रॉस्ट, टी० एस० इलियट, एजरा पाउंड की कविताएँ। मेरा मन छटपट करने लगा। मेम साहब से कहा, मेम साहब, अब आप अपनी यह पाठशाला बंद कीजिए।

इस पर मेम साहब ने क्या कहा, पता है? कहा, फालतू बक-बक मत करो। बिना लिखे-पढ़े पत्रकारिता करते तुम्हें शर्म नहीं आती?

—शर्म। पत्रकारों को शर्म! तुमने मुझे हँसा दिया मेम साहब।

मेम साहब के दबाव से हक्सले, हेनरी ग्रीन, हेमिंग्वे, लारेंस डुरेल, ऐनी पोर्टर मेरी मेकार्थी को दुनिया भर की किताबें पढ़ गया।

एक दिन मेम साहब ने 'गीतवितान' की एक प्रति मुझे भेंट की। मैं हैरान रह गया। सोचा, मेम साहब अब मुझे संगीत विद्यालय में दाखिल करेंगी क्या? मैंने पूछा, और तानपूरा नहीं मिलेगा?

मेम साहब नाराज हो गई—मेरा सर मिलेगा !

बाद में बोली, जब फुर्सत रहे, तो गीतवितान के पन्ने उलटाया करना। बहुत अच्छा लगेगा। देखना, लगेगा कि तुम बहुत कुछ सोच सकते हो, कल्पना कर सकते हो।

इस बीच एम० ए० पास करके मेम साहब ने एक महिला कालेज में अस्थायी रूप से पढ़ाना शुरू कर दिया। और भी बहुत कुछ हो गया। मेम साहब ने मेरे मन के सूनेपन, जिंदगी की नाकामयाबी और भविष्य के प्रति आशंका को समझा। मेरे जीवन-यज्ञ में उसने अपनी अन्यतम आवश्यकता का अनुभव किया। मैंने खुद एक दिन उससे कहा, समझी मेम साहब, पहले मैंने महज जीना चाहा था, लेकिन आगे चलकर एक कमजोर घड़ी में मैंने सपना देखा कि मैं आगे बढ़ रहा हूँ। मैंने भी दस में से एक होने का सपना देखा। उसी सपने के नशे में काफी अरसा बीत गया। जब सुध-बुध आया तो अपनी दुर्दशा पर आप ही चौंक उठा, घबरा गया, हताश हो पड़ा।

रुक कर साँस ली।

फिर कहा, और तब सारी आशा-आकांक्षा, स्वप्न-साधना को जलांजलि देकर अपने आपको अदृष्ट के हाथों सौंप दिया। लेकिन तुमको देखने के बाद से मेरा सारा हिसाब-किताब उलट-पुलट हो गया। लमहे में फिर सारे सपने उड़कर आए और मेरे मन के आसमान में इकट्ठे हो गए।

मैंने मेम साहब का हाथ पकड़ लिया। कहा, भगवान् की शपथ खाकर कह रहा हूँ। तुम्हें देखकर लगा, तुम तो मेरी ही हो। भगवान् ने मानो इस अंधे कुएँ से मुझे छुटकारा दिलाने के लिए ही तुम्हें भेजा है।

मेम साहब मेरी तरह कभी ज्यादा नहीं बोलती थी। इतना ही कहा, हो सकता है ! नहीं तो फिर दूसरे ही दिन वैसे अप्रत्याशित रूप से तुमसे भेंट क्यों होती ?

अदृष्ट के इशारे को, नियति के निर्देश को मेम साहब भी समझ गई थी। बहुत-बहुत बातें करके आखिर दोनों हाथ उठाकर मैंने अपने आपको मेम साहब के हाथों सौंप दिया था। मेम साहब का अनुष्ठान बड़ा ही संक्षिप्त-सा हुआ।

रोज की तरह उस दिन मैं डेढ़-दो बजे आफिस गया। टेलिप्रिंटर की एकाध लोकल कापी देखते न देखते टेलिफोन की घंटी बज उठी। रिसि-

वर उठाकर आदत के मुताबिक कहा, रिपोर्टर्स।

—दफ्तर कब पहुँचे ?

—बस, थोड़ी ही देर पहले।

—एक बात कहूँ ?

—कहो।

—मानोगे ?

—क्यों नहीं ?

—चलो न, घूम आएँ जरा।

मैंने जरा अवाक् होकर जानना चाहा, अभी ?

—हाँ।

—बात क्या है, सो तो कहो।

—चलते हो कि नहीं, सो कहो ?

चीफ रिपोर्टर या न्यूज एडीटर उस समय तक आए नहीं थे। सोचने लगा, क्या किया जाय। मेम साहब टेलिफोन थामे रही। मैंने डायरी उठा कर देखा, दो प्रेस कानफरेंस के अलावा और कुछ नहीं था। एक चार बजे, दूसरा शाम के सात बजे।

मेम साहब से पूछा, सात बजे तक लौट आ सकूँगा ?

—सात बजे तक ? शायद नहीं।

—तो ?

—आठ-साढ़े आठ बजे तक जरूर लौट आएँगे।

चीफ रिपोर्टर के नाम एक पुर्जा छोड़ गया, एक जरूरी समाचार के लोभ से बाहर जा रहा हूँ। रात को आकर टेलिफोन ड्यूटी करूँगा।

दफ्तर से निकला। एसप्लानेड के मोड़ पर दोनों इकट्ठे हुए। वहाँ से सीधे दक्षिणेश्वर चल दिए। मंदिर खुला नहीं था। लाचारी इधर-उधर का चक्कर काटते हुए पंचवटी से आगे और कुछ दक्षिण गंगा के किनारे एक पेड़ तले हम बैठ गए।

मेम साहब ने कहा, आँखें बन्द करो।

—क्यों ?

—ओफ् ! हर वक्त क्यों मत किया करो। कहती हूँ, आँखें बंद करो।

—बिलकुल कि आधा बंद करूँ ?

—तुम तर्क बहुत करते हो। अब को मेम साहब ने [illegible]
आइ से, क्लोज योर आइज़।

कर लीं आँखें बंद। दूसरे ही क्षण मैंने अनुभव किया, मेम साहब मेरे दोनों पैरों पर हाथ रखकर प्रणाम कर रही है। चौंककर मैंने आँखें खोल दीं—यह क्या हो रहा है ?

मैंने देखा, मेम साहब के चेहरे पर उन्मुक्त आनन्द की बाढ़ खेल रही है, दोनों आँखों में परम तृप्ति की लौ जल रही है। दोनों हाथों से मेम साहब के मुखड़े को ऊपर उठाकर पूछा, यों एकाएक प्रणाम क्यों किया तुमने मेम साहब ?

मेम साहब ने कोई जवाब नहीं दिया। मेरी तरफ उसने आत्म-समर्पण की भाषा में ताका। मैं भी देर तक उसकी तरफ देखता रहा। उसके बाद फिर पूछा, बताओ तो सही, प्रणाम क्यों किया ?

मेम साहब ने इस बार कहा, मैंने तुम्हें प्रणाम किया। तुम मुझे आशीर्वाद नहीं दोगे ?

मैं दंग रह गया। अपनी दीनता अखर गई। खुद को बड़ा छोटा लगा। मेम साहब ने प्रणाम किया, तो कैफियत तलब न करके आशीर्वाद देना मेरा पहला फर्ज था। जो हो, मैंने झट मेम साहब को अपनी ओर खींच लिया। दोनों हाथों से उसके मुखड़े को ऊपर उठाकर कहा, भगवान् तुम्हें सुखी करें।

मेम साहब ने झटके से अपने को अलग करके दोनों हाथों से मुझे कसकर दबाते हुए कहा, भगवान् क्या करेंगे, यह भगवान् ही जानें, लेकिन तुम मुझे सुखी करोगे ?

—तुम्हें क्या लगता है ?

—मुझे तो डर लगता है।

—काहे का डर ?

मेम साहब ने कान में फुसफुसाकर कहा, हजार हो, हो तो आखिर अखबार के रिपोर्टर ! क्या पता, कब, कहाँ, कौन-सी खूबसूरत बला तुम्हें आँधी की तरह उड़ा ले जाये !

—अच्छा !

—और क्या ! मर्दों का एतबार नहीं....

—तुमसे भी मुझे बहुत डर है मेम साहब !

मेरी बाँहों के बंधन से अपने को छुड़ाकर उँगली से अपनी ओर दिखाती हुई बोली, मुझसे तुम्हें डर है ?

—जी, मेम साहब !

—फालतू मत बको।

—फालतू नहीं मेम साहब ! ऐसे किसी आदमी का आमंत्रण आ जाय, जो जीवन मे भली भांति प्रतिष्ठित है, तो पचास रुपए के इस रिपोर्टर को भुल जाने मे जरूर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी।

मेम साहब दप् से जल उठी—यह हर बार पचास रुपए का रिपोर्टर, पचास रुपए का रिपोर्टर तो न सुनाया करो तुम ! तमाम जिंदगी क्या तुम पचास रुपए के रिपोर्टर ही रहोगे ?

—नहीं रहूँगा ?

—नहीं, नहीं, नहीं।

—तो और क्या हूँगा ?

—होगे और क्या ? आदमी बनोगे, बड़ा बनोगे, सिर ऊँचा करके खड़े होगे।

—हो सकूँगा वैसे खड़ा ?

—हजार बार ! फिर मैं हूँ न।

मेम साहब ने मुझे जरा नजदीक खीच लिया। दुलारा। सर के बालों से जरा खेला। बोली, तुम यह क्यों सोचते हो कि तुम हार गए ?

—क्या करूँ मेम साहब ? अथाह समंदर में जहाज तैरता चलता है। लेकिन लाइट हाउस की उस छोटी-सी रोशनी का इशारा पाए बिना वह किनारे तो नहीं लग सकता।

—मैं तो आ गई। अब कैसा डर ? लेकिन वचन दे सकते हो कि मेरे बंदरगाह को छोड़कर तुम अपना जहाज लिये इस-उस बंदरगाह में भटकते नहीं फिरोगे ?

बताओ तो दोला भाभी, हर औरत के मन में वही एक डर, वही एक संदेह क्यों होता है ? संसार का इतिहास क्या मर्दों की विश्वासघातकता से ही भरा है ? खैर। मेम साहब की बातें मुझे बड़ी अच्छी लगतीं। कम-से-कम यही सोचकर मुझे तसल्ली मिलती कि वह पूरी तरह मुझे चाहती है।

उस दिन बातों ही बातों में साँझ उतर आई। मंदिर के मंगलदीप की जोत की चमक गंगा पर पड़ी। बहती गंगा उस जोत को बहा ले गई, दूर से दूर, शहर में, नगर में, जनपद में और बेशुमार लोगों के मन

ँधेरे गहन वन में !

मेम साहब ने अंत में पूछा, कहाँ, तुमने यह तो नहीं जानना चाह
मैं तुम्हें आज यहाँ क्यों ले आई ? तुमने तो नहीं जानना चाहा
ाणाम करके मैंने तुमसे आशीर्वाद क्यों माँगा ?

—इसका कोई विशेष कारण है क्या ?

—और नहीं तो क्या ?—यह कहकर मेम साहब ने बैग से एक
कागज निकाल कर मुझे पढ़ने को दिया।

मैंने पढ़ा। हावड़ा गर्ल्स कालेज का नियुक्ति-पत्र था। मेम साहब
के दोनों हाथ पकड़ कर कहा, बधाई ! यह तो शुरुआत है। आनंद से.
ऐश्वर्य से भगवान् तुम्हें बेशक भर देंगे।

जरा रुककर मैंने पूछा, हर महीने ढाई सौ रुपये लेकर करोगी क
मेम साहब ?

—क्यों, हम दोनों मिलकर भी फूंक नहीं सकेंगे ?

दोनों के दोनों हँस पड़े।

मेम साहब पढ़ाने लगी, इस गर्व से मेरी छाती फूल उठी। कई दिनों
के बाद दफ्तर से मैंने पचीस रुपए पेशगी लिए। चितरंजन एवेन्यु सेल्स
एम्पोरियम से अट्ठारह रुपए की करघे की एक साड़ी खरीदी। तीसरे पहर
वह पैकेट मेम साहब को देकर मैंने कहा, यही साड़ी पहनकर कल कालेज
जाना।

दूसरे दिन वह वही साड़ी पहनकर कालेज गई थी, लेकिन उसके बा
उसे नहीं पहनती। एक दिन मैंने कहा, वह साड़ी शायद तुम्हें पस
नहीं आई।

—खूब पसन्द आई है।

—इसीलिए शायद पहनने में शर्म आती है।

उसने मेरे कानों में कहा, नहीं जी, नहीं। वह तुम्हारी पहल
है। उसे जब-तब पहनकर बरबाद करूँ भला ?

पहले महीने की तनखा पाने के बाद मेम साहब ने मुझे क्य
था, मालूम है ? खद्दर का एक कुर्ता और करघे की एक बेहतरीन

वह धोती खरीदते वक्त बड़ा मजा हुआ था।

मेम साहब ने पूछा, जरी कोर वाली लोगे कि सादी कोर क
दूकान में दूसरा कोई न सुन सके, इसलिए मैंने कानों में
इसी वक्त मोर भी खरीदना हो तो जरी कोर की खरीदो,

मोर अभी न खरीदना हो तो फिर सादी कोर वाली।

—असभ्य कहीं के!

धोती लेकर दूकान से निकलते हुए मेम साहब ने कहा, बड़े असभ्य हो तुम!

—अजीब आफ़त है। अरे भई, तुमने भी फेंकली न कहूँ?

—फेंकली कहने का यही सलीका है तुम्हारा?

ये बात तुम्हें लिखते हुए आज मैं खुद अवाक् हो रहा हूँ। किस कारण से और कैसे हम दोनों इस तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे, यह मैं नहीं जानता था। युक्ति और तर्क से यह समझ सकना सम्भव नहीं। आदमी का मन लाजिक के प्रोफेसर या विचारकों की सलाह या उपदेश के हिसाब से नहीं चलता। यह तो मुक्त विहग की नाईं अपनी गति से उड़ता फिरता है, घूमता फिरता है। मनुष्य का मन यदि विचार-विवेक मानकर चलना जानता, तो मेरी और मेम साहब की कहानी नहीं, सारी दुनिया का इतिहास भी कुछ और ही तरह का होता।

माँ की कोख से धरती पर आने के बाद से ही आदमी किसी का सहारा लेकर बड़ा होता है, भविष्य की ओर बढ़ता है। किसी मुँह की हँसी और किन्ही दो आँखों के आँसू के लिए आदमी कितना क्या करता है! मैं बड़ा हुआ, भविष्य की ओर बढ़ता गया, सो निहायत कुदरत के नियम से। मेरे जीवन में माँ के होंठों की हँसी या प्रियजनों की आँखों के आँसू की कोई भूमिका नहीं थी। जभी तो मैंने मेम साहब को अपना सारा मन, प्राण, सत्ता देकर चाहा था। इस चाहने में कहीं धोखा-धड़ी नहीं थी। इसीलिए मेम साहब को पाने में भी कोई धोखा-धड़ी नहीं थी। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी के बाईस बसन्त पार करने में मेम साहब के चारों ओर कुछ न कुछ मक्खी या मधुमक्खी जरूर भनभनाई होगी। शायद हो कि किसी की गुनगुनाहट ने मन में जरा रंग चढ़ाया हो, लेकिन ठीक मेरी तरह सारे जीवन का दावा लेकर कोई आगे नहीं आ सका। इसीलिए तो मेम साहब के जीवन का सारा बन्धन खुल गया था, संयम और संस्कार बह गए थे।

मेरी ही भाँति मेम साहब के जीवन में भी बहुत-बहुत हेर-फेर आए! मेरी पसन्द, मेरी ना-पसन्दगी को जाने बिना वह कुछ भी नहीं कर सकती थी। संग चलकर मेरे पसन्द किए बिना साड़ी-ब्लाउज तक नहीं खरीदा जा सकता था। मैं पूछता, आज तक किसकी पसन्द से खरीदा करती थी?

—माँ या दीदी की....

—अब क्या उनकी रुचि बिगड़ गई है ?

—नहीं-नहीं, सो क्यों ? लेकिन क्या हमेशा वही पसन्द करेंगी ?

—हाँ, यह बात तो है ।

मेम साहब रूठ जाती—ठीक तो है, मेरे साथ दूकान जाने में इज्जत पर आँच आती हो, तो मत जाया करो ।

मैं बात का रुख बदल देता—पता नहीं, इसके बाद और कितना क्या खरीद देने को कहोगी !

जरा देर बाद कुछ करीब आकर धीरे से कहती, जरूरत होगी तो जरूर खरीद देना पड़ेगा । तुम्हारे सिवा और कौन खरीद देगा, कहो ?

हमारी हालत सोच सकती हो दोला भाभी ?

रोजमर्रे की रूटीन से जरा भी इधर-उधर होने से मेम साहब दरखास्त लिए मेरे पास हाजिर हो जाती ।

—जानते हो, इतवार के दिन कालेज की बहुत-सी प्राध्यापिकाएँ शान्तिनिकेतन जा रही हैं । मुझसे भी जाने को कह रही हैं । मैं क्या करूँ, कहो तो ?

—करना क्या है, जाओ ।—उसके बाद पूछ लेता—लौटोगी कब ?

—सोमवार की रात में । मंगल को कालेज है ।

कभी-कभी मुलाकात होते ही पूछती, कल भ्रमर का जन्मदिन है । कहो तो, मैं क्या दूँ ?

उसकी बातें सुनकर मैं मन ही मन हँसता । भ्रमर उसका बचपन का साथी है । स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी—सब एक ही साथ पार किया है । हर साल उसके जन्मदिन पर गई है, कुछ न कुछ भेंट भी दी है । आज यह मामूली-सी बात इतनी बड़ी समस्या बन गई कि मेम साहब अपनी अक़ल से इसका कोई कूल-किनारा नहीं कर सकी । इसके लिए मेरी बुलाहट हुई ।

मेम साहब मुझ पर इतना निर्भर करती है, यह बात मेरे आसप के सभी जानते थे । मेम साहब की मझली दीदी ने सिनेमा का टिक कटाया, तो छोटी बहन से मजाक करने के लिए कहती, अरी सु रिपोर्टर से पूछना तो, इतवार को तू सिनेमा जा सकेगी कि नहीं ।

मेम साहब दौड़कर जाती और मझली दीदी का मुँह दबाकर क अच्छा नहीं हो रहा है, कहे देती हूँ !

दबी मुस्कान को छिपाने की नाहक कोशिश करती हुई मझली दीदी कहती, खैर, ठीक है। मैं ही रिपोर्टर को फोन करके पूछ लूंगी।

मेम साहब हुंकार उठती, माँ! जरा मझली-दी को देखो!

कभी मझली-दी कहती, अरे, जरा रिपोर्टर को फोन करेगी?

—क्यों?

—जरा पूछ तो ले, तू आज मछली का झोल खाएगी कि झाल!

मेम साहब मँझली-दी की ओर दौड़ती। वह भाग जाती।

रात काफी हो गई। कितनी, मालूम है? पौने तीन बज रहे हैं। आस-पास के घरों के लोग दिन भर काम-काज करके कितना निश्चिन्त होकर, कितनी शान्ति से सो रहे हैं! और मैं? मख्मूर देहलवी का एक शेर याद आ गया—

मुहब्बत जिसको देते हैं, उसे फिर कुछ नही देते।
उसे सब कुछ दिया है, जिसको इस क़ाबिल नही समझा॥

तुम लोगों के जीवन से नही, लेकिन मेरे जीवन से यह बात अक्षर-अक्षर मिल गई है।

आठ

इतिहास के प्रागैतिहासिक अध्याय में कक्ष से अलग होकर धरती ग्रह के रूप में महाशून्य मे चक्कर काट रही थी। बिना किसी उद्देश्य के वह कितने दिनों तक चक्कर काटती रही, इसका मुझे पता नही। यह भी पता नहीं कि कितने दिनों के बाद उसने सूर्य को केन्द्र करके अपने कक्ष-पथ का आविष्कार किया। हाँ, इतना जानता हूँ कि एक-एक आदमी को इसी तरह बिना उद्देश्य के महाशून्य में चक्कर काटना पड़ता है। समय का कमोवेश हो सकता है, पर काल के इस बेरहम मजाक के हाथ से किसी को छुटकारा नहीं मिलता। मुझे भी नही मिला। तुम लोगों को भी तो नहीं मिला।

मेम साहब के मिल जाने के बाद मेरा वह नाहक ही चक्कर काटना बन्द हो गया। बिना ठिकाने का चलना खत्म हुआ। मुझे अपना कक्ष-पथ मिल गया। लम्बे निःश्वासों का खातमा हुआ; यह दुनिया, यह जिन्दगी

बड़ी भली लगी। तुम्हें तो मालूम ही है, मैं हर कुछ कर सकता हूँ, सिर्फ एक काम मुझसे नहीं होता—कविता लिखना। इसीलिए इसे कविता में ठीक-ठीक समझा नहीं पा रहा हूँ।

बड़ाबाजार या चितपुर के मोड़ पर फूल की जो दूकानें हैं, देखी हैं? देखा है न, उन दूकानों में बेशुमार सुन्दर-सुन्दर फूल किस कदर भरे होते हैं? उस भीड़ में एक-एक फूल की खूबसूरती, खासियत्त गोया ढूंढ़कर नहीं पाई जाती। लेकिन उन्हीं दूकानों से थोड़े-से फूल खरीद कर फूल-दानी में जरा सजा-धजा कर रखने से पूरा का पूरा बैठका मानो चमक उठता है। चमकता है न? हावड़ा पुल के नीचे, जगन्नाथ घाट में मन के हिसाब से टोकरियों में भर-भर कर रजनीगन्धा की बिक्री होती है, पर वह दृश्य देखा नहीं जाता। किसी आर्गन पर एक लम्बे फूलदान में गिनी-गुथी एक-दो स्टिक देखने में कहीं बेहतर लगती है, उससे कहीं ज्यादा जी भरता है।

जगन्नाथ घाट में रजनीगन्धा की थोक विक्री देखकर किसी कवि में काव्य-चेतना जरूर नहीं जगेगी। लेकिन प्रियतमा के अंग में रजनीगन्धा की मामूली सजावट बहुतों के मन को झकझोर देगी।

मैं रजनीगन्धा न सही, कैकटस तो हो सकता हूँ? मेम साहब ने उसी कैकटस से जापानी ढंग से कमरे को बड़ा बेहतरीन सजाया था। मैं, मैं ही रह गया। सिर्फ परिवेश के वदल जाने से मेरे जीवन का सौन्दर्य निखर आया।

इडेन गार्डेन के किनारे से साँझ के अँधेरे में हम दोनों गंगा के किनारे खो गए। कई बड़े-बड़े जहाज दुनिया के विभिन्न प्रान्तों से थके-मांदे आकर गंगा की गोद में आराम कर रहे थे। थका-मांदा मैं भी मेम साहव के कन्धे पर सिर टिका कर जरा आराम कर रहा था।

मेरे सर पर हाथ फेरते हुए मेम साहब ने पूछा, इस तरह कब तक दिन काटोगे?

—तुम्हारा मतलब क्या घर वसाने से है?

—हर घड़ी स्वार्थी जैसी वही एक फिक्र!—मेम साहब ने महीन गले से टिप्पणी की।

—तो क्या और कुछ कह रही हो?—मैंने पूछा।

अब मेम साहब की वारी थी। कहा, आखिर तुम क्या अपने जीवन के बारे में कुछ भी नहीं सोचोगे? सिर्फ मेम साहब को प्यार करने से ही

क्या सब कुछ पूरा हो जायगा ?

—अपनी सोच-सोच कर जब कोई कूल-किनारा नहीं मिला, तभी तो इस डोंगी को तुम्हारे घाट पर लगाया है। अब तो जिम्मेदारी तुम्हारी है।

—यह बात !

—जी हां।

अंधेरा जरा गाढ़ा हुआ। हम कुछ और गहरे हुए। ऐन उसी वक्त जानें कहाँ से एक मूंगफली वाला हम लोगों के पास आ पहुँचा। शर्म से हम दोनों कुछ संकुचित हुए। मूंगफली चबाने का जी नहीं था। फिर भी उसकी मौजूदगी असह्य हो रही थी, इसलिए झटपट हमने दो पुड़िया चिनिया बादाम की खरीद ली।

मैं फिर जरा गहरा-सा हुआ। कहा, मेम साहब, कोई गीत सुनाओगी ?

—यहां नहीं।

—यहां नहीं तो क्या अपने कालेज के कामन-रूम में बैठकर सुनाओगी ?

निर्विकार सी मेम साहब ने कहा, जब हम लोग कलकत्ते से बाहर कहीं जाएँगे तो मैं तुम्हें बहुत सारे गाने सुनाऊंगी।

मैंने मेम साहब की इस बात को उस दिन कोई महत्त्व नहीं दिया। सोचा था, टालने के लिए ऐसा कह रही है।

हफ्ते भर बाद। हम दोनों शाम को बेलवेडियर के पास घूम रहे थे। मेम साहब ने एकाएक पूछा, घूमने चलोगे ?

—कहां ?

—कलकत्ते से बाहर कहीं ?

—किसके साथ ?

—मेरे साथ।

—सच ?

—सच।

मैं फिर धीरज न धर सका। तुरत पूछा, आज ही चलोगी ?

—तुम कभी सीरियस भी होगे ?

—तुम क्या चाहती हो ? मै तुमसे डियरनेस एलाउंस या मकान के किराए की बातें करूँ ?

मेम साहब हँसी। हाथ पकड़कर चलते-चलते हम और आगे बढ़े।

उसी दिन शाम को योजना बन गई। मेम साहब के कालेज से लड़कियों और प्राध्यापिकाओं की तीन-चार टोलियाँ शैक्षणिक यात्रा पर तीन-चार तरफ जाने को थीं। मेम साहब के भी जाने की बात तय थी, पर वह उनके साथ नहीं जाएगी। घर के लोग यह जानेंगे कि वह उन्हीं लोगों के साथ गई है, पर असल में—

मेम साहब केवल इला-दी को जरा चुपके से बता देगी। इला-दी मझली-दी की सहपाठिनी है। सो, आगे के लिए जरा होशियार रहना भी ठीक है।

हम लोग कब, कहाँ गए थे, खोल कर यह बताना ठीक नहीं है। इतना ही जानो कि हम दोनों बाहर गए थे। शहर कलकत्ता को लाखों-लाख आदमियों की खचाखच भीड़ से दूर मेम साहब को पाकर मैं तो लगभग पागल ही हो गया था।

तुम शायद यह सोच रही होगी कि फर्स्ट क्लास के किसी कूपे में हम लोग हनीमून के लिए निकले थे। सो बात नहीं है। उतने पैसे कहाँ थे ? मैं तो सिर्फ पंद्रह रुपए लेकर निकला था। लेकिन मेरी मेम साहब करुणा-सागर विद्यासागर से भी उदार थीं। उसने दूसरे दर्जे का ही टिकट लिया था। गेस्ट हाउस में दो कमरे किराए पर ले रक्खे थे। मैंने कहा था, फिजूल का खर्च क्यों कर रही हो ? एक ही कमरा लेने से तो काम चल जाता।

मेम साहब ने होंठों ही होंठों हँसकर कहा, और तुम क्या लाउंज में रात बिताओगे ?

—लाउंज में ? नहीं। उससे तो बल्कि डाइनिंग रूम की टेबिल पर पड़ा रहूँगा। क्या ख्याल है ?

खैर। वह सब फिर कहूँगा। गाड़ी के डब्बे में मेम साहब को अपने पास पाकर मैं तो मानो धीरज नहीं धर पा रहा था। जी में हो रहा था, उसे जकड़ लूँ, प्यार करूँ। लेकिन वैसा संभव नहीं था। जहाँ तक संभव था, मुसाफिरों की सजग आँखें बचाकर मेम साहब को पास पाने के दुर्लभ अवसर से लाभ उठाने की भरसक कोशिश की। कभी वह हँसी, कभी आँख दबाकर इशारा किया।

जब भी सीमा से बाहर जाने लगा, तभी बोली, आः ! कर क्या रहे हो ?

मैंने अवाक् होकर पूछा, माफ कीजिए, कुछ कह रही हैं?

—जी, आपको? नहीं-नहीं, आपसे क्या कहूँगी?

—थैंक यू।

—नो मेनशन।

अगल-बगल के घर-द्वार, वन-जंगल, नदी-नाले को पीछे छोड़ती हुई गाड़ी आगे निकलती जा रही थी। हम दोनों के मन भी भविष्य की ओर दौड़ते रहे। असंख्य सपने मन में झाँक-झाँक जाने लगे। भविष्य के उन सपनों को घेर कर कितनी आशा, कितनी आकांक्षाएँ रूप लेना चाहने लगीं।

मेरे मन में नया कोई सपना, नई कोई आशा नहीं आई। मनुष्य सदा से जो सपने देखता रहा है, जो आशा करता रहा है, मैंने उससे जरा भी ज्यादा नहीं सोचा। सोच रहा था कि यह अनिश्चयता किसी दिन निश्चय ही दूर होगी। कल्याणी के रूप में मेम साहब मेरे घर आएगी, मेरा अँधेरा घर उजाला हो जायगा।

उसके बाद?

उपभोग?

बेशक!

संभोग?

बेशक!

लेकिन उस संभोग में द्वैत जीवन का परदा नहीं खींचूंगा। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बढ़ते जाएँगे। बहुत—बहुत आगे बढ़ जाएँगे। औरों के कल्याण से अपना कल्याण करेंगे। दस आदमी का आशीर्वाद लेकर हम धन्य होंगे।

मैना जैसी सुर में मेम साहब ने आवाज दी, सुनो।

मैंने वह पुकार सुनी, पर जवाब नहीं दिया। आखिर क्यों? उसकी यह 'सुनो' पुकार मुझे बड़ी अच्छी लगती थी। बड़ी मीठी। मैंने मुँह फेर कर दूसरी तरफ देखा।

फिर वही मैना की बोली, सुनो।

—मुझसे कह रही हो?

—हाँ।

मेम साहब जानें क्या सोचने लगी। उसकी नजर भविष्य के महासागर में तिरने लगी। मैं उसे अपनी ओर लौटा लाया। पुकारा, मेम साहब!

मेम साहब ने सिर्फ कहा, क्या ?

—मुझसे कुछ कहना है ?

मेम साहब ने मुड़कर मेरी तरफ देखा। बड़ी गहरी और मीठी निगाह से देखा।

फिर दो-चार मिनट निकल गए। हम एक दूसरे को देखते रहे।

—सच-सच बताओगे एक बात ? मेम साहब ने पूछा।

—बताऊँगा।

मेम साहब पल भर के लिए फिर चुप हो गई। अपनी नजर को जरा हटाकर जानना चाहा, कभी जब हम दोनों एक होंगे, गिरस्ती बसाएँगे, तब भी तुम मुझसे आज की तरह प्यार करोगे ?

जी में आया, मेम साहब को अपनी छाती से लगा लूं। जी में आया, लाड़-प्यार से उसे बहला कर कहूँ, उस दिन तो तुम्हें इससे हजार गुना ज्यादा प्यार दूँगा। लेकिन कह नहीं सका।

डब्बे में और भी कई मुसाफिर थे। इसीलिए सिर्फ मेम साहब का हाथ खींचकर कहा, मेरी ओर से तुम्हें अब भी आशंका है ?

मेम साहब ने जल्दी से मेरे दोनों हाथों को दबाकर कहा, नहीं-नहीं। मैं जानती हूँ, तुम मुझे बहुत-बहुत प्यार करोगे। मैं जानती हूँ, तुम मुझे सुखी करोगे।

—सच ?

—सच।

दोला भाभी, उन कई दिनों की कहानी मेरे जीवन की कभी नहीं भूलने वाली स्मृति है। वह स्मृति केवल अनुभव के लिए है, लिखने के लिए नहीं। फिर दिन भी बहुत बीत गए उसके बाद, हर दिन की हर घड़ी का इतिहास आज याद नहीं है। याद है—

अचानक नींद टूट गई। जाने कैसी आवाज आई कानों में। पहले तो ठीक समझ नहीं पाया। बाद में समझा, मेम साहब दरवाजा खटखटा कर कह रही है, सुनो। वैसी ही मैना वाली बोली, सुनो।

मैंने सुना। जवाब नहीं दिया। बड़ी अच्छी लगी वह बोली। उस पुकार में स्नेह-प्यार, आवेदन-निवेदन, अधिकार आदि का कैसा तो काकटेल रहता। जभी मैंने सोए रहने का बहाना बनाया। खूब समझ रहा था कि सोते समय तो अकेली सो गई, पर अब रहा नहीं जा रहा है। अब वह भाग कर मेरे पास आना चाहती है। शायद हो कि थोड़ा प्यार करना

चाहती है, थोड़ा प्यार पाना चाहती है। हो सकता है मेरे पास लेटकर मेरे हृदय की थोड़ी-सी गहरी उष्णता का आनंद लेना चाहती है। शायद हो कि—

दरवाजे पर फिर खटखट। उसके साथ ही—सुनो, सुनते हो?

मैंने जोर से आवाज दी, कौन?

—मैं हूं। दरवाजा खोलो।

लड़खड़ाई-सी आवाज में जवाब दिया, खोलता हूँ।

जरा ही देर में चादर को बदन में लपेटकर लगभग मुँदी आँखों ही जाकर दरवाजा खोल दिया। फिर आँखे बन्द किए ही आकर बिस्तर पर लेट गया।

दरवाजे के परदे को ठीक से खींचकर मेरी तरफ आते हुए मेम साहब ने कहा, बाप रे बाप, कितना सोते हो तुम!

मैं नींद का बहाना किए पड़ा रहा। जवाब नहीं दिया। देखा, मेम साहब धीरे-धीरे मेरे करीब आ गई। मेरी आँखें बंद थीं, लेकिन उसकी गर्म उसांस पड़ने से मैं खूब समझ रहा था कि किस निमग्नता से वह मुझको देख रही है। चेहरे पर, माथे पर हाथ रखकर पूछा, सो रहे हो?

फिर भी मैं चुप रहा। जोर से सांस छोड़ते हुए करवट बदल ली। मेम साहब मेरे पास बैठ गई। देर तक मुझे दुलार किया। मैंने फिर लंबी उसांस छोड़ी। करवट बदली। बाँहों में उसे जकड़ लिया। अस्पष्ट आवाज में पुकारा, मेम साहब!

—यह रही।

मैं चुप।

मेम साहब ने कहा, सुनो। कुछ कहोगे?

मैंने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

इसी प्रकार और भी कुछ क्षण बीते। उसके बाद जैसे रूठकर मेम साहब ने कहा, तुम जागोगे नहीं? उठोगे नहीं?

मैंने एकाएक दोनों आँखें खोलकर कहा, जागूंगा, लेकिन उठूंगा नहीं।

मेम साहब ने मेरे गाल पर एक चपत मारकर कहा, असभ्य कहीं के! जागते हुए भी जवाब नहीं देते।

मैंने कहा, अगर तुम जानती होती कि मैं जग रहा हूँ, तो इस तरह तुम प्यार करती भला?

—फिर वही बदतमीजी !

मैंने धीरे-धीरे मेम साहब को खींचकर छाती से लगा लिया। जरा दुलारा, जरा प्यार किया। प्यार-दुलार से उसकी आँखें मानों और भी चमक उठीं, दोनों गाल जरा और फूल उठे, होंठ मानो बात करने लगे।

उसके बाद ?

बता सकती हो दोला भाभी, फिर क्या हुआ ? शैतानी ? हाँ, की थी थोड़ी-सी। ज्यादा नहीं। सिर्फ उसके होंठों की भाषा और इशारे को जाना था। बस। मेम साहब ? वह मुँह से कुछ बोली नहीं। आँखें बंद करके होंठ दबा कर हँस रही थी।

फिर ?

फिर मेम साहब ने मुझसे पूछा, गाना सुनोगे ?

मैंने कहा, नहीं।

ठीक है, मैं गाऊँगी। तुम्हें सुनना नहीं है।

मेम साहब मुँह फेर कर बैठ गई। केहुनी पर भार देकर हथेली पर मुँह रखकर मेरे मुँह पर लगभग हड़बड़ा कर गिर पड़ी। उसके बाद आहिस्ते-आहिस्ते गाया,

मन कैसा तो करता हाय न जानें,
मेरा मन ही जाने।

इसी तरह से शुरू होता हम दोनों का सवेरा। नहा-धोकर नौ बजते-बजते मेम साहब डाइनिंग-रूम में जाकर जलपान कर आती। मगर मैं उस समय तक भी नहीं उठता। डाइनिंग-रूम से वापस आकर मेम साहब मेरी लिहाड़ी लेती, छि-छि, तुम अभी तक नहीं उठे ?

—पहले तुम पास आओ, तब उठूँगा।

मेम साहब जरा दूर ही खड़ी रहकर कहती, नहीं, मैं पास नहीं आऊँगी।

—क्यों ?

—पास आने से ही तुम—

मेम साहब चुप हो गई। मैंने पूछा, तुम कैसी हो ?

—क्या कैसी हूँ ? पास जाने पर तो तुम शैतानी करोगे।

—तो क्या हुआ ?

अपनी उन तनी भौंहों को जरा और चढ़ाकर वह बोली, क्या हुआ ? तुम्हारी दाढ़ी की खरोंच से मेरा सारा मुँह अब भी जल रहा है।

मैं झट बिस्तर से उछल पड़ा। दोनों हाथों मेम साहब को पकड़ कर कहा, जल रहा है।

—और क्या ?

—तो फिर जहर से जहर की दवा करता हूं।

—फिर वही बदतमीजी !

बाथरूम से निकलते-निकलते मेम साहब मेरा जलपान ले आई। मैंने कहा, अजीब है, किसी बैरे से नहीं कहा ?

—जी जनाब, बैरे आपके नौकर नहीं हैं। नौ बजे के बाद ये जलपान सर्व नहीं करते।

—तो तुम खुद लाओगी ! जिन्होंने देखा, वे क्या समझ रहे होंगे भला !

मेम साहब ने ट्रे उतार धरी। टोस्ट में मक्खन लगाते-लगाते बोली, सोच रहे होंगे कि मेरे नसीब में एक आलसी और निकम्मा जुटा है।

तुम्हीं बताओ दोला भाभी, इस बात का क्या जवाब दूं ? मैं कोई जवाब नहीं देता। चुपचाप जलपान कर लेता।

उसके बाद बरामदे के सोफे पर बैठकर हम कुछ देर तक गप-शप करते। जरा देर के लिए घूम-फिर भी आते। दोपहर के भोजन के बाद मेम साहब कहती, अब जरा देर सो रहो।

—क्यों ? आज रात जगना है ?

बस, फिर गाल पर एक चपत। फिर वही कहना—असभ्य कहीं के !

दोपहर को मैं सोता नहीं था। लेटा रहता। गलती से मेरा हाथ कहीं शरारत करता, तो मेम साहब कहती, दया करके अपने हाथ को जरा सम्हालो।

—आखिर क्यों ? मैं बे-पूछे किसी पराए के सामान को हाथ लगा रहा हूं ?

—पराया सामान न सही, मगर अभी तक मैं आपका सामान नहीं हो सकी हूं। इसलिए आप हाथ मत लगाइए।

मैं झट उठ बैठा। बदन पर कुरता डाल कर बाहर जाने लगा। मेम साहब ने पूछा, कहां जा रहे हो ?

—बाजार।

—किसलिए ?

—माला खरीदने के लिए। मोर खरीदने के लिए।

हँसते-हँसते मेम साहब ने मुझे पकड़ लिया, मगर इस दोपहरी में न जाओ।

खींच कर उसने मुझे बिस्तर पर लिटा दिया। मेरे बगल में करवट लेकर लेटती हुई बोली, मेरे लिए अगर अभी से यह पागलपन करोगे तो आगे क्या हाल होगा ?

—देखो मेम साहब, राशन के हिसाब से चावल-गेहूँ बेचे जा सकते हैं, प्यार नहीं किया जा सकता।

मेरी बात सुनकर वह धीरे-धीरे मुस्कुराई।

जानती हो दोला भाभी, समाज और संसार से हम दोनों कई दिनों के लिए दूर चले गए थे। चाहते तो संभोग के महाकाश में हम आजाद पंछी की तरह उड़ते फिर सकते थे। लेकिन वैसा नहीं किया। मेम साहब को अपने उतने करीब पाकर, उतने निविड़ रूप में पाकर, स्वतंत्रता से पाकर बीच-बीच में मेरा मन डाँवाडोल हुआ, शिराओं से उत्तेजना की बाढ़ बह गई, कभी-कभी न्याय-अन्याय की सूक्ष्म विचार-बुद्धि जाती रही, फिर भी अपने शांत, स्निग्ध प्रेम के परस से मेम साहब ने मुझे संयत ही रक्खा। उसे अपने इतने समीप पाने के शुरू के कई दिन उसका यह संयम और संयत आचरण मुझे मुग्ध कर गया था। मैं शायद उसे श्रद्धा भी करने लगा था।

बहुत सारी बातें भविष्य के लिए छोड़ने के बावजूद इन कई दिनों में हम लोगों ने बहुत कुछ ही पाया था। देह की भूख जरूर नहीं मिटाई, लेकिन आँखों की प्यास, मन का हाहाकार, दिल की दरिद्रता दूर हुई थी। और ? और दूर हुई थी चित्त की चंचलता, मन की अस्थिरता। मेरी आँखों के आगे सुंदर, शांत भविष्य की एक तसवीर उभर आई थी।

और मेम साहब ? मेरी बहुत सारी दुर्बलताओं के होते हुए भी उसने मेरे प्रेम की गहराई का अनुभव किया था। अंधे की लकड़ी की नाईं मेरे जीवन में उसने अपनी जरूरत भी समझी थी। पढ़ी-लिखी हो या सुंदरी, गरीब हो या अमीर, औरतों के जीवन में इससे बड़ा पाना और क्या हो सकता है ?

इसी वजह से हँसी, खेल, संगीत और रात जागने में भी हमने अपने भविष्य की राह ठीक रक्खी थी। दोनों ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि सिर्फ कुछ हँसी-खेल में अपनी जिंदगी को चौपट नहीं करेंगे।

कलकत्ता लौटने के पहले दिन रात को मेम साहब ने मेरी दी हुई

वह साड़ी पहनी थी। उसके बाद घूँघट काढ़कर, गले में आँचल लपेटकर उसने मुझे प्रणाम किया। मेरे जीवन के उस परम उत्सव के दिन किसी पुरोहित ने मंत्र नहीं पढा, किसी कुलवधू ने शंख नहीं फूंका, अपने लोगों और मित्रों को साक्षी रख कर हमने आपस में माला नहीं बदली, लेकिन तो भी हम लोगों ने यह मान लिया था कि हमारे दो जीवनों को जोड़ने वाली एक अटूट गाँठ पड़ी।

नौ

तुम्हारी चिट्ठी मिली। एक नहीं, अनेक बार उसे पढ़ गया। मेरे मन का तुम्हें ठीक ही पता चला है। लेकिन मेरे मन में बहुतेरे दुःखों के होते हुए भी, शिकायत नहीं है; पीड़ा होने के बावजूद असफलता की ग्लानि नहीं है। उसका कारण लंबा है। आज नहीं कहूँगा। शायद तुम समझोगी नहीं। मेरी यह कहानी जिस दिन पूरी लिख जाएगी, उस दिन सारा कुछ दिन की रोशनी की तरह साफ हो जाएगा।

हाँ, इतना जान लो, जीवन में मैंने प्यार-दुलार की जो दौलत पाई है, उसकी तुलना नहीं है। हो सकता है, यह दौलत और भी बहुतों ने पाई हो। उनसे अपने इस ऐश्वर्य को मापने का कोई माप-दंड मेरे पास नहीं है। उसकी जरूरत भी नहीं है। मगर इतना मैं निश्चित तौर पर जानता हूँ कि मैं पूर्ण हुआ हूँ परिपूर्ण हुआ हूँ। यह भी जानता हूँ, मेरे इस ऐश्वर्य से संसार के किसी भी दौलतमंद के ऐश्वर्य की तुलना नहीं की जा सकती। धनी कभी सब कुछ गँवाकर गरीब, भिखमंगा बन सकता है। उसका ऐश्वर्य पराए हाथ में चला जा सकता है, उसका अपव्यय और दुरुपयोग हो सकता है, लेकिन मेरे प्राणों का यह अतुल संपद कभी खोने का नहीं, कभी खो नहीं सकता। इस दुनिया में मैं जब तक जिंदा रहूँगा, वे दोनों घनी काली बड़ी-बड़ी गंभीर आँखें मेरे जीवन के आकाश में ध्रुवतारा की नाईं चमकती-दमकती रहेंगी। धरती के पंचभूत में एक दिन मैं मिल जाऊँगा, मेरे जीवन के सारे खेल एक दिन गुम जाएँगे, सब के निकट से मैं दूर, सदा के लिए बहुत दूर चला जाऊँगा, लेकिन मेरी मेम साहब कभी मुझसे नहीं खोएगी। मेरी ये चिट्ठियाँ जब तक साबूत रहेंगी, मेरी मेम साहब भी तब तक रहेगी। उसके बाद वह तुम्हारी, और

तुम्हारी तरह और वहुतों की याद में रहेगी। उसके वाद हिंदुस्तान के वहुत सारे गाँव-नगर में जाने पर भी मेम साहव की यादों का स्पर्श मिलेगा। उत्तरी वंगाल की वनभूमि में, वंवई के समुद्र तट पर और वर्फ से ढँके गुलवर्गा के निभृत अंचल में शांत रातों को कान लगाकर सुनने पर मेम साहव के गाए गीत और भी वहुत दिनों तक सुनाई पड़ेंगे।

अपने मेम साहव का सव कुछ मैं तुम्हें समझा नहीं सकूँगा, लिख नहीं सकूँगा, दोला भाभी ! तुम्हें अपने मन के भाव, भाषा, अनुभूति में जता नहीं सकूँगा। दुनिया के कितने ही देशों की खाक छानी है मैंने, जाने कितने अनगिनती उत्सव-समारोहों में मैंने असंख्य स्त्रियों को देखा है। उनमें से वहुतों को अपने पास भी पाया है, डूवकर देखा भी है। वहुतेरी अच्छी भी लगीं। लेकिन ऐसी एक भी मुझे नहीं मिली जो मेरी मेम साहव की याद को मलिन कर सके।

तुम्हें तो पता है, मैं विना सोचे-विचारे ही लोगों से मिला-जुला करता हूँ। दुनिया और समाज की परवा किए वगैर ही वहुतेरी लड़कियों से मिला हूँ। रक्त करवी की नाईं उनमें से वहुतों ने मेरे ध्यान को खींचा है। वहुतों के रूप, जवानी और लावण्य ने मुझे मोह लिया है, उनकी शिक्षा-दीक्षा-आदर्श मुझे अच्छा लगा है, परंतु पल के लिए भी मैंने अपने मन-मंदिर में नई मूरत विठाने का सपना नहीं देखा। वहुत सारी लड़कियों के साथ हँसा-खेला है, घूमा-फिरा है। मेरे उस हँसी-खेल के वारे में हो सकता है तुम वहुतों से वहुत तरह की किस्सा-कहानी सुन सकती हो। दिल्ली युनिवर्सिटी की वनानी राय को लेकर आज भी डिफेन्स कॉलोनी की वहुत-सी वैठकों में मेरे पीठ पीछे चर्चाएँ होती हैं, मुझे मालूम है। मुझे पता है, हमारे लंदन हाई कमीशन की थर्ड सेक्रेटरी अतसी के साथ मेरी व्राइटन-यात्रा के संवंध में आख्योपन्यास की कहानी विलायत से लेकर कलकत्ते के कॉफी हाउस तक फैली हुई है।

मैं करूँ भी तो क्या ? अपने देश की समाज-व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि पति-पत्नी के जरा स्वतंत्र आचरण को आज भी वहुतेरे लोग वरदाश्त नहीं कर सकते। समाज वहुत आगे वढ़ गया है। सारी दुनिया के वहुत वड़े समाज से हम वहुत-से लोग मिला-जुला करते हैं, किंतु हमारे खून में पुराने संस्कार के वीज आज भी पड़े रह गए हैं। इसीलिए तो भाटपाड़ा के कूपमंडूक समाज से हजार मील दूर वैठी दिल्ली की सोफिस्टिकेटेड वंगाली गृहिणियाँ वनानी को दुर्गापूजा के पंडाल में देखकर आलोचना

किए बिना नहीं रह सकतीं।

जरा कान लगाइए कि सुन पाइएगा, मिसेस दत्त कह रही हैं—अरी चंद्रिमा, देख, वह देख, वनानी आई है।

—कहां, कहां?

—वह रही।

—अकेली?

—वही तो देख रही हूँ।

चंद्रिमा ने जरा इधर-उधर ताक-झाँक कर कहा, वह देखो, सफेद हैराल्ड! रिपोर्टर साहब जरूर आए हैं।

वलाका सरकार भी दौड़ कर आती। चंद्रिमा के कानों में कहती, देखती है न, मिसेस रिपोर्टर आई हैं!

—बड़ी देर पहले देखी है।

वनानी देवी-प्रतिमा की ओर बढ़ गई। हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। इतने में मैं जाकर उसके पास खड़ा हुआ। वनानी अपना पर्स गाड़ी में छोड़ आई थी। मुझसे एक रुपया माँग कर उसने चढ़ाया।

वलाका, चंद्रिमा, मिसेस दत्त, और भी बहुतों ने यह देखा। नई-पुरानी और भी बहुतेरी स्त्रियों ने हम दोनों को देखा।

वलाका ने कहा, और चाहे जो कह लो, जोड़ी खूब मिली है!

मिसेस दत्त ने कहा, अजी जोड़ी मिलने से क्या हुआ! ये दोनों ब्याह थोड़े ही करने वाले हैं, सिर्फ खेल रहे हैं।

चंद्रिमा ने कहा, नहीं-नहीं। ब्याह जरूर करेंगे। न करना होता तो इस तरह सबके सामने घूमते-फिरते भला!

हम दोनों पंडाल से बाहर की ओर चले। वनानी का साइड-व्यू शायद वलाका की निगाहों से बच नहीं सका। उसने फुसफुसाकर चंद्रिमा से कहा, चाहे तू जो कह ले, शी हैज ए वेरी ऐट्रैक्टिव फिगर!

वनानी की इस तारीफ से मिसेस दत्त क्षण भर के लिए अपने फिगर के प्रति सजग हो गईं। साड़ी के आँचल को और जरा ढंग से सँवार लिया। मन ही मन थोड़ी ईर्ष्या भी हुई शायद। इसीलिए वनानी को छोटा दिखाने की गर्ज से उन्होंने मुझे जरा ज्यादा मर्यादा दी, रिपोर्टर भी तो कुछ कम हैंडसम नहीं है।

दूर पर किसी पुराने साथी को देखकर वनानी उधर से नजर बचाकर दायें घूमने लगी कि एक भले आदमी को धक्का लगते-लगते रह

। मैंने झट उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया ।

वनानी बोली, थैंक्स ।

सनग्लास के अंदर से उस कोने की ओर नजर दौड़ाते ही मैंने समझा, ानी का हाथ पकड़ने की वजह से बहुतों को दिल का दौरा पड़ते-पड़ते ह गया ।

मैं यह सब जानता हूँ । मगर करूँ क्या, बताओ । सबसे मैं मिल-जुल नहीं सकता । लेकिन जिनसे भी मिलता हूँ, उनसे ऐसे ही सहज, सरल और स्वाभाविक ढंग से ही मिलता-जुलता हूँ । वनानी, अतसी या और दूसरी बहुत-सी युवतियाँ यह जानती हैं । मेम साहब तो खैर जानती ही हैं ।

और अतसी ! जिन्हें मालूम नहीं है, वह सब जाने हम दोनों के लिए कितना क्या सोच जाते हैं ।

तुमने अतसी के बारे में सुना है ? इतना तो जरूर जानती होगी कि वह जस्टिस राय की इकलौती बेटी है । और उसकी माँ विदेशी हैं, आइरिश । लिहाजा न तो संस्कार की बला है, न ही रुपये-पैसे की कमी । पढ़ाई-लिखाई पब्लिक स्कूल में की है । बी० ए० ऑक्सफोर्ड से पास किया है । अभी वह फॉरेन सर्विस में है ।

अतसी जब ऑक्सफोर्ड में पढ़ती थी, तभी उससे मेरी जान-पहचान हुई थी । उसके दूसरे साल जब वह स्वदेश लौट रही थी तो मैं भी यूरो का चक्कर लगाकर घर वापस आ रहा था । हम दोनों लन्दन से एक हवाई जहाज से रवाना हुए । रास्ते में दो दिन बेरूत में रुके थे ।

वह दो दिन हम लोगों ने जी खोलकर अड्डेबाजी की । दिन समुद्र किनारे बैठकर, शाम के बाद सेण्ट जॉर्ज होटल के बार या ला में बैठकर थोड़ी-बहुत फ्रेंच शराब पीते हुए हमने गप्पें कीं । दिल्ली र होने से पहले दिन की रात में अचानक अतसी के माथे पर भूत सव गया । बोली, चलिए, जरा नाइट क्लब घूम आएँ ।

—इतनी रात गए ?

—ह्वाट्स रांग इन दैट ?

—कल सवेरे ही तो रवाना होना है । और क्या !

—ये नाइट क्लब आखिर भारत सरकार के दफ्तर तो न दिन के दस से पाँच बजे तक खुले रहेंगे । नाइट क्लब तो रात रहते हैं ।

अतसी लेकिन और एक सेकण्ड भी नष्ट होने देने को तैयार न थी। बोली, कम ऑन। फिनिश योर ग्लास।

पलक मारते भर में बचे शैंपेन को उसने गले से भीतर के अजाने गह्वर में डाल दिया। ख्वाहिश तो नहीं थी, पर लाचारी मैंने भी खत्म कर दी। 'ब्लैक एलिफेंट' गया।

पालम में मेम साहब हमारी अगवानी को आई थी। अतसी ने उससे क्या कहा मालूम है? कहा, बीसवीं सदी का एक जर्नलिस्ट जो इतना कंजरवेटिव होता है, इसका मुझे कयास तक न था।

मेम साहब ने जरा मुस्कराते हुए पूछा, क्यों, क्या बात हो गई?

—माइ गॉड! अजी, क्या नहीं हुआ, सो पूछो। अतसी राय के इन-विटेशन पर नाइट क्लब में जाने को तैयार नहीं!

मेम साहब ने हँसते-हँसते एक बार मुझे देख लिया। अतसी ने कहा, तुम हँसो तो नहीं! जिस अतसी राय के साथ लन्दन के छोकरे बैरिस्टर एक कप कॉफी पीने का मौका पाने से धन्य हो जाते हैं, उसी के साथ बेरुत के 'ब्लैक एलिफेंट' में बैठकर शैंपेन पीने में झिझकता है, तुम्हारा यह निकम्मा प्रॉसपेक्टिव गार्जियन!

मेम साहब ने आड़ी निगाह से एक बार मुझे देखकर कहा, आइ ऐम सॉरी अतसी। आइ प्लीड गिल्टी....

मेम साहब के गाल को दबाकर अतसी ने कहा, इतना प्यार मत करो। छोकरे का दिमाग चाट गई तुम!

खैर, जो हो। उस बार ढाका से लन्दन जाते हुए वह पहले कलकत्ता, फिर दिल्ली आई। वह जो कलकत्ते से मेम साहब को साथ लिवा आई है, यह मुझे मालूम न था। दिल्ली आने की खबर पहले नहीं मिली थी। एक दिन सबेरे अचानक अतसी का टेलिफोन आया। मैं तो चौंक उठा।

—ताज्जुब है, आने के पहले खबर भी नहीं भेजी।

अतसी ने भूल मानकर माफी माँग ली। उसने तुरन्त मुझे अपने होटल में बुलाया। जरूरी काम है।

कुछ ही मिनटों में मैं क्लारिज में हाजिर हो गया। दुतल्ले पर चढ़ा। कॉरीडर से सीधे कोने की तरफ चला गया। दरवाजा खटखटाया।

कोई जवाब नहीं। फिर खटखटाया।

अबकी जवाब मिला—जस्ट ए मिनिट।

जरा ही देर में दरवाजा खोलकर अतसी ने स्वागत किया। आदर से

अन्दर ले गई।

—माजरा क्या है ? अब की तो खबर तक न दी ?

विलीव मी, इट ऑल हैप्न्ड सडेनली। फिर कलकत्ते से वुकिंग में बड़ा झमेला हुआ।

—कलकत्ते में कितने दिन थी ?

—तीन दिन।

—डिड यू मीट मेम साहब ?

—माइ गॉड, तुम्हारे दिमाग में मेम साहब के सिवा क्या और कोई बात ही नहीं ?

—बेशक है, मगर आफ्टर मेम साहब।

हाथ से मेरे मुखड़े को अपनी ओर घुमाकर अतसी ने पूछा—मैं भी ?

—तुम तो दूसरी कैटेगरी की हो।

अतसी ने कैसी तो एक अजीब नजर से मेरी तरफ ताका। बोली, क्यों, मैं क्या तुम्हारी मेम साहब की जगह—

मैं सोफा छोड़कर उठ खड़ा हुआ। कहा मैं चलता हूँ अतसी, मुझे बहुत काम है। अभी चलता हूँ, फिर भेंट होगी।

अतसी तुरन्त उठ खड़ी हुई। दोनों हाथों से उसने मेरी दोनों हथेलियों को कसकर दबाया। बोली, नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप अभी मेरे पास रहेंगे।

मैं तो अवाक्। अतसी के इस विचित्र परिवर्तन का कारण ही समझ में नहीं आया। लमहे में मैं नारी-चरित्र की विचित्रता की बहुतेरी बातें सोच गया। सोचा, यह मन का खिंचाव है कि देह की माँग। धनी की बेटी के मन का मौज तो नहीं....

अतसी के लिए इतना आकाश-पाताल सोचने की जरूरत मैंने नहीं समझी। चाहे जो भी हो। मैं फिजूल के झमेले में न पड़ूँ, बस।

यह भी सोचा, डिप्लोमैट होने के नाते डिप्लोमैसी तो नहीं कर रही है ?

मैंने कहा, घोड़ा-गाड़ी के कोचवान के हाथों इम्पाला देकर खेलने में तुम्हें खतरा नहीं लगता है अतसी ?

—यह सब बुझौवल रहने दीजिए आप। आइ ऐम फीलिंग लोनली। उड यू गिव मी कम्पनी ऑर नॉट ?

—ह्वाइ नाट ? हैव बेटर कम्पनी।

—मेरी खुशी।

—लेकिन मेरी खुशी तो नहीं भी हो सकती है ?

एक नजर मैंने अतसी को देख लिया। दोनों हाथों से उसका दायाँ हाथ खींचकर हैंड शेक किया। कहा, गुड बाइ!

मैं आँधी की चाल से कमरे से निकला। झटपट कॉरीडर से बढ़ चला जीने की ओर कि पीछे से सुनाई पड़ा, सुनो!

ठिठक गया, लेकिन सपना टूट जाने के डर से पीछे नहीं पलटा। मेरे मन की भूल ?

—सुनो!

मेरी जीवन-रागिनी के सुरकार का वह स्वर दुबारा सुनने के बाद अपने को और रोक न सका। पीछे मुड़ा!

अरे! मेम साहब!

अतसी के दरवाजे पर खड़ी धीरे से मुस्कराती हुई मेम साहब ने आवाज दी, सुनो!....

मैं लगभग दौड़कर गया। मेरी अगवानी के लिए मेम साहब स्थिर ही खड़ी रहीं। मैंने हैरान होकर कहा, तुम!

वैसे ही शान्त, कोमल, मीठे गले से मेम साहब ने कहा, करती क्या, अतसी जबर्दस्ती पकड़ लाई।

अब तुम खूब समझ सकती हो कि इसके बाद क्लारिज होटल के उस कोने वाले कमरे में क्या हुआ। पहले तो खुशी और एहसान से मैंने अतसी को जकड़ लिया—टेल मी अतसी, ह्वाट कैन आइ डू फॉर यू?

अतसी ने कहा, खास कुछ नहीं माँगूंगी। इतनी ही अर्ज करूँगी कि आज से एक हफ्ता आप इधर आकर हम दो तरुणियों को तंग न करें।

—मैं वायदा करता हूँ कि तंग नहीं करूँगा, लेकिन तुम लोगों को आनन्द देने के लिए, सुख देने के लिए आऊँगा जरूर।

मेम साहब ने टिप्पणी की, अरी ओ अतसी, ऐसी कल्पना भी मत कर। पुरुषों में इतना भी संयम होता तो यह दुनिया ही बदल जाती।

मैंने मेम साहब से कहा, मैं तो अपने काम-काज में विश्वामित्र की तरह ध्यान-मग्न था, लेकिन मैं तुमसे पूछता हूँ मेनका देवी, तुम एक हजार मील के फासले पर यहाँ नाचने क्यों आई?

उसी कमरे में इसके बाद हम तीनों जलपान करने लगे। मेम साहब ने कहा, अतसी से हमारी क्या बाजी लगी थी, पता है ?

—क्या ?

अतसी ने कहा, नहीं-नहीं, कुछ नहीं।

मैंने कहा, रहने दो मेम साहब अभी मत बोलो। अतसी घबड़ा गई है।

कॉफी का प्याला उतार कर रखते हुए अतसी ने कहा, तो फिर मैं ही कहती हूँ, सुनिए। बाजी यह लगी थी कि अगर मैं आपको फुसला सकूँ, तो काजल-दी मुझे एक साड़ी प्रेजेन्ट करेगी। और कहीं मैं हार गई, तो मैं काजल-दी को एक साड़ी दूँगी।

मैंने अब समझा कि अतसी मेरे साथ वह नाटक क्यों कर रही थी।

मैंने कहा, अतसी, अब तुम्हें खरीद कर काजल-दी को साड़ी नहीं देनी पड़ेगी। तुम जो इसे खींचकर यहाँ ले आई हो, इसके लिए साड़ी तो पहले तुम्हीं को मिलेगी।

मैंने दोनों को साड़ी खरीद दी थी। दोनों ही खुश हुई थीं। मुझे भी खुशी हुई। एक हफ्ता मानों सपनों में गुजर गया।

अतसी हम दोनों को सचमुच चाहती है। मेम साहब को काजल-दी क्यों कहती है, जानती हो ? वह कहा करती थी, मेम साहब की दोनों आँखों में स्वयं भगवान् ने बड़े जतन से काजल लगा दिया है। इसीलिए वह मेम साहब को काजल-दी कहती थी। बड़ा खूबसूरत नाम है, क्यों ?

जो भी हो, मैं इन्हें प्यार करता हूँ, मैं इनका मंगल मनाता हूँ। ये भी मेरा भला चाहती हैं। इनके प्रति मैं एहसानमन्द हूँ। लेकिन मेम साहब की याद को कोई भी मलिन नहीं कर सकी। करे भी कैसे, कहो ? मेरे भविष्य के लिए मेम साहब ने जो पूँजी लगाई थी, उसकी कोई तुलना भी क्या हो सकती है ? नहीं हो सकती।

एक बात और है। मेरे जीवन की उस काली अमावस की रात में महज मेम साहब मेरे पास आई थी। उसने मुझे प्रेम दिया था, दुलार दिया था, अभय दिया था। अपने प्राणों के मंगल-दीप के प्रकाश में वह मुझे अँधेरी रात से सुनहले सवेरे के दरवाजे पर ले आई। इसीलिए तो उसकी उस स्मृति को म्लान करने की जुर्रत सौ, हजार बनानी या अतसी में नहीं है।

उस बार मैं बाहर से घूम-घामकर आया, तो मेम साहब ने कहा, अपने नए काम-काज के बारे में कुछ नहीं सोचा ?

—जरूर सोचा है।

—क्या सोचा है ?

—सोचा है कि कलकत्ते की माया छोड़कर अब कहीं और कोशिश करूँगा।

—तो फिर कर क्यों नहीं रहे हो ?

—कुछ असुविधा है, इसलिए।

मेम साहब छोड़नेवाली जीव न थी। और फिर मेरे जीवन के प्रति उदासीन रहना अब उसके लिए मुमकिन नहीं। इसलिए एक दिन मेरे हाथ में दो सौ रुपये थमाकर मेम साहब ने कहा, एक बार दिल्ली या बम्बई घूम आओ। हो सकता है, कुछ मिल-मिला जाय।

पहले रुपये लेने में बड़ी झिझक हुई, लेकिन अंत तक लिये वे रुपये। क्योंकि मैं यह जानता था कि मेरा कल्याण ही उसका कल्याण है। लिहाजा मेरे लिए सिर्फ ये दो सौ रुपये ही क्यों, वह और भी बहुत कुछ हँसकर दे सकती है। और फिर अपने कल्याण-यज्ञ में उसकी आहुति को मैं ना नहीं कर सकता था। हिम्मत नहीं थी। तो भी रुपयों को हाथ में लेकर खासी देर तक बैठा रहा।

मेम साहब ने पूछा, क्या सोच रहे हो ?

—नहीं, कुछ नहीं।

—तो फिर यों चुप हो रहे ?

—यों ही।

मेरे हाथ को खींचकर उससे खेलती हुई मेम साहब ने कहा, मैं बताऊँ तुम क्या सोच रहे हो ?

—बताओ।

—सच-सच बताऊँ ?

—जरूर।

—मेरे रुपये लेने में तुम्हें शर्म आ रही है, अपमान-सा लग रहा है। है न ?

—नहीं-नहीं, सो क्यों होने लगा। मैंने उसकी बात को टालना चाहा।

स्त्रियों का मन हम लोगों के बजाय कहीं सतर्क होता है, कहीं होशियार। मेम साहब ने कहा, कबूल करने में लाज लग रही है ?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। चुप बैठा रहा। मेम साहब भी बड़ी देर तक चुप रही।

—क्या ?

अतसी ने कहा, नहीं-नहीं, कुछ नहीं।

मैंने कहा, रहने दो मेम साहब अभी मत बोलो। अतसी घबड़ा गई है।

कॉफी का प्याला उतार कर रखते हुए अतसी ने कहा, तो फिर मैं ही कहती हूँ, सुनिए। बाजी यह लगी थी कि अगर मैं आपको फुसला सकूँ, तो काजल-दी मुझे एक साड़ी प्रेजेन्ट करेगी। और कहीं मैं हार गई, तो मैं काजल-दी को एक साड़ी दूँगी।

मैंने अब समझा कि अतसी मेरे साथ वह नाटक क्यों कर रही थी।

मैंने कहा, अतसी, अब तुम्हें खरीद कर काजल-दी को साड़ी नहीं देनी पड़ेगी। तुम जो इसे खींचकर यहाँ ले आई हो, इसके लिए साड़ी तो पहले तुम्हीं को मिलेगी।

मैंने दोनों को साड़ी खरीद दी थी। दोनों ही खुश हुई थीं। मुझे भी खुशी हुई। एक हफ्ता मानों सपनों में गुजर गया।

अतसी हम दोनों को सचमुच चाहती है। मेम साहब को काजल-दी क्यों कहती है, जानते हो ? वह कहा करती थी, मेम साहब की दोनों आँखों में स्वयं भगवान् ने बड़े जतन से काजल लगा दिया है। इसीलिए वह मेम साहब को काजल-दी कहती थी। बड़ा खूबसूरत नाम है, क्यों ?

जो भी हो, मैं इन्हें प्यार करता हूँ, मैं इनका मंगल मनाता हूँ। ये भी मेरा भला चाहती हैं। इनके प्रति मैं एहसानमन्द हूँ। लेकिन मेम साहब की याद को कोई भी मलिन नहीं कर सकी। करे भी कैसे, कहो ? मेरे भविष्य के लिए मेम साहब ने जो पूंजी लगाई थी, उसकी कोई तुलना भी क्या हो सकती है ? नहीं हो सकती।

एक बात और है। मेरे जीवन की उस काली अमावस की रात में महज मेम साहब मेरे पास आई थी। उसने मुझे प्रेम दिया था, दुलार दिया था, अभय दिया था। अपने प्राणों के मंगल-दीप के प्रकाश में वह मुझे अँधेरी रात से सुनहले सवेरे के दरवाजे पर ले आई। इसीलिए तो उसकी उस स्मृति को म्लान करने की जुर्रत सौ, हजार बनानी या अतसी में नहीं है।

उस बार मैं बाहर से घूम-घामकर आया, तो मेम साहब ने कहा, अपने नए काम-काज के बारे में कुछ नहीं सोचा ?

—जरूर सोचा है।

—क्या सोचा है ?

—सोचा है कि कलकत्ते की माया छोड़कर अब कहीं और कोशिश करूँगा।

—तो फिर कर क्यों नहीं रहे हो ?

—कुछ असुविधा है, इसलिए।

मेम साहब छोड़नेवाली जीव न थी। और फिर मेरे जीवन के प्रति उदासीन रहना अब उसके लिए मुमकिन नहीं। इसलिए एक दिन मेरे हाथ में दो सौ रुपये थमाकर मेम साहब ने कहा, एक वार दिल्ली या वम्बई घूम आओ। हो सकता है, कुछ मिल-मिला जाय।

पहले रुपये लेने में बड़ी झिझक हुई, लेकिन अंत तक लिये वे रुपये। क्योंकि मैं यह जानता था कि मेरा कल्याण ही उसका कल्याण है। लिहाजा मेरे लिए सिर्फ ये दो सौ रुपये ही क्यों, वह और भी बहुत कुछ हँसकर दे सकती है। और फिर अपने कल्याण-यज्ञ में उसकी आहुति को मैं ना नहीं कर सकता था। हिम्मत नहीं थी। तो भी रुपयों को हाथ में लेकर खासी देर तक बैठा रहा।

मेम साहब ने पूछा, क्या सोच रहे हो ?

—नहीं, कुछ नहीं।

—तो फिर यों चुप हो रहे ?

—यों ही।

मेरे हाथ को खींचकर उससे खेलती हुई मेम साहब ने कहा, मैं बताऊँ तुम क्या सोच रहे हो ?

—बताओ।

—सच-सच बताऊँ ?

—जरूर।

—मेरे रुपये लेने में तुम्हें शर्म आ रही है, अपमान-सा लग रहा है। है न ?

—नहीं-नहीं, सो क्यों होने लगा। मैंने उसकी बात को टालना चाहा।

स्त्रियों का मन हम लोगों के वजाय कहीं सतर्क होता है, कहीं होशियार। मेम साहब ने कहा, कबूल करने में लाज लग रही है ?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। चुप बैठा रहा। मेम साहब भी वड़ी देर तक चुप रही।

कुछ वक्त इसी तरह निकल गया।

मेम साहब ने फिर कहना शुरू किया, तुम अब तक भी मुझे ठीक-ठीक अपना नहीं समझ रहे हो, क्यों ?

मैं झट मेम साहब की तरफ बढ़ गया। उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा, छि-छि मेम साहब, ऐसा क्यों कह रही हो ?

जरा रुका।

फिर कहा, तुमसे ज्यादा अपना तो मैंने और किसी को नहीं पाया।

—अपनी समझते तो आज तुम्हें यह झिझक नहीं होती।

मैंने उसे और भी दिलासा दिया। लेकिन जरा देर में देखा, मेम साहब की आँखों में आँसू हैं !

मैंने झट से मेम साहब को छाती से लगा लिया। उसके आँसू पोंछ दिए। दुलारा भी। और उसके फूले-फूले से गालों को दबाकर कहा, पगली कहीं की !

मेम साहब मेरी गोद में पड़ी रही, लेकिन तो भी सहज नहीं हो सकी। कुछ देर के बाद एक लंबा निःश्वास छोड़कर बोली, तुम्हारे इतने निकट आकर भी तुम्हें पा नहीं सकूँगी यह मैं सोच भी नहीं सकी थी।

—तुम दुःख न करो मेम साहब !

मेम साहब उठ बैठी। जरा थिर आँखों मेरी तरफ ताका। और फिर पल में चिंता के समुद्र में गोता लगाकर जाने कहाँ खो गई। जरा देर बाद बोली, हम लोगों के जीवन में संस्कार की एक बहुत बड़ी भूमिका है न ?

—अचानक ऐसा कह रही हो ?

होंठों के कोने में व्यंग की हँसी लाकर मेम साहब ने कहा, एक दूसरे से बिलकुल अपरिचित दो लड़की-लड़के को कदली-मंडप में बिठाकर मंत्र पढ़ाते ही वे कितने अपने हो जाते हैं। उस संस्कार के बिना कितने ही नजदीक क्यों न आएँ, दो लड़की-लड़के वास्तव में अपने नहीं हो सकते।

मेरी ओर इशारा करके बोली, यही बात है न ?

—मुझ पर संदेह कर रही हो ? मेरा अपमान कर रही हो ?

—छि-छि, तुम्हारा अपमान मैं करूँगी ? मैं सिर्फ यह कह रही थी, अगर मैं तुम्हारी व्याहता स्त्री होती, तो मेरे गहने-पाते वेचकर शराब पीने, जहाँ-तहाँ जाने का हक तुम्हें होता, पर....

मैंने झट उसके मुँह को दबाकर कहा, बस करो। मन्त्र पढ़े बिना भी तुम मेरी पत्नी हो, मैं तुम्हारा पति हूँ।

मेम साहब मेरी छाती से लग गई। जरा देर बाद उसने गले में आँचल डाला और मेरे पैरों पर सिर टेक कर प्रणाम किया।

सहसा चाँद जरा बादलों में छिप गया। और उसी अँधेरे का लाभ उठाकर मैंने....

मेम साहब तुरन्त बोल पड़ी, फिर वही असभ्यता!

हेस्टिंग्स से आगे बढ़कर आउट्रम घाट से धीरे-धीरे फिर हम शहर कलकत्ते के जन-समुद्र में मिल गए।

लेकिन एक बात बताऊँ दोला भाभी, आनन्द और आत्म-तृप्ति से उस रात मैं सो नहीं सका। तुम्हारी भी जिन्दगी में तो ऐसा दिन आया था। अब की कलकत्ता गया तो तुम्हारी वह कहानी सुने बिना तुम्हें छोड़ने का नहीं।

दस

तुम्हें तो मालूम है, जीवन की एक-एक खास परिस्थिति में मनुष्य का भी एक-एक विशेष रूप और चरित्र दिखाई पड़ता है। जो लड़के-लड़कियाँ रात के नौ बजते ही नींद से ऊँघने लगते हैं, इम्तहान के दिनों वही बेखटके रात के डेढ़-दो बजे तक पढ़ा करते हैं। ब्याह के पहले जो लड़कियाँ रात में जग नहीं सकतीं, मैंने सुना है, ब्याह के बाद रात में वह सोना ही नहीं चाहतीं। और बाल-बच्चा होने के बाद? सोए-सोए भी माताएँ जगती ही रहती हैं। शरीर तो नींद की गोद में लुढ़क पड़ता है, पर मन? उनींदे पहरेदार की नाईं रात भर बच्चे पर पहरा देता रहता है। गिने-चुने कुछ महीने के अन्दर जवानी से उमगती एक कुमारी किस तरह से शान्त, स्निग्ध और मंगलमयी माँ बन जाती है, यह सोचकर भी दंग रह जाना पड़ता है।

मनुष्य के चरित्र में और भी कैसे अजीब-अजीब परिवर्तन होते हैं। उन परिवर्तनों को सूची देनी हो तो मानव-सभ्यता का छोटा-मोटा इतिहास ही लिखना पड़े। मानव-चरित्र की वे मामूली बातें तुमको लिखना भी जरूरी नहीं। उस दिन गंगा के किनारे मेम साहब की बातें सुनकर,

उसकी आँखों में आँसू देखकर मुझमें भी एक अनोखा परिवर्तन आया। घर-घुस मध्यवित्त बंगाली बनकर कलकत्ते के उस बँधे-बँधाए दायरे में अच्छा ही था। मेम साहब के प्रेम के नशे में अपने कर्म-जीवन के प्रति काफी उदासीन हो पड़ा था।

उस दिन मेम साहब के प्यार के चाबुक की चोट से मैं चिन्तित हो पड़ा। कुरता-धोती और कोल्हापुरी चप्पल पहने दुलहा बाबू बनकर मेम साहब से प्रेम करके ही जीवन की सारी जरूरतें पूरी नहीं होंगी, पूरी नहीं हो सकतीं, इसे मैंने शायद उस दिन पहली बार अनुभव किया। इसके अलावा एक अनुभव और हुआ। मेम साहब मुझसे प्यार करती है, जी-जान से मुझे चाहती है। वह खूब जानती है कि एक दिन मेरे ही हाथों उसकी माँग सिन्दूर से भरी जायगी, मेरी लम्बी आयु की कामना से ही वह कलाई में शंख की चूड़ियाँ पहनेगी। वह और भी बहुत कुछ जानती है। वह जानती है कि मेरे बच्चे की माँ बनकर वह गर्व के साथ संसार के सामने खड़ी होगी।

दुनिया की सभी स्त्रियों की नाईं अपने पति को केन्द्र मानकर उसने भी भविष्य के सपने देखे थे! लेकिन जवानी की धूल भरी आँधी से उसकी साफ नजर छिप नहीं गई थी, भविष्य का उसका सपना वास्तव की माटी को छोड़कर तिलस्मी कहानी की झूठी कल्पना के वन में भाग नहीं गई थी। उसने इसीलिए तो चाहा था कि उसके प्रेम से मेरा जीवन भर उठे। उसने दुनिया के असंख्य, अनगिनती, करोड़ों-करोड़ पति-पत्नी की सूची में महज दो और नामों को जोड़ना नहीं चाहा था।

इसीलिए उस दिन लौटते समय मुझे अनमना देखकर मेम साहब ने कहा, सुनो।

मैं चुप रहा। मेम साहब करीब आ गई। मेरा हाथ पकड़ कर कहा, सुनो।

—बोलो।

—नाराज हो गए?

—नाराज क्यों होने लगूं?

—मुझे छोड़ कर तुम्हें बाहर जाने के लिए कहा, इसलिए?

—नहीं-नहीं।

अगल-बगल कदम रखते हुए हम दोनों आगे बढ़ चले।

मेम साहब ने फिर कहना शुरू किया, अपना सब कुछ देकर भी

अगर तुम्हारा सचमुच भला न कर सकी, तो आखिर किया क्या मैंने ? कहो तो ?

वह जरा रुकी। फिर बोली, तुम मात्र मेरा पति बनो, मात्र मैं तुम्हारा मान-सम्मान करूँ, प्यार करूँ, यह मैं नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ कि तुम हम दोनों के सँकरे दायरे से बाहर निकलकर असंख्य लोगों का प्यार पाओ, उनका आशीर्वाद पाओ।

वह फिर जरा रुकी। हँसी। उसके बाद फुसफुसा कर बोली, कितनी ही लड़कियाँ तुम्हें चाहेंगी, मगर मेरे सिवा तुम्हें कोई पाएगी नहीं।

हाथ से मेरे मुँह को उठाकर बोली, सोच सकते हो कि तब मेरा गर्व कितना बड़ा होगा, कितनी खुशी, कितना सन्तोष होगा !

क्या जवाब दूँ उसे ! सिर्फ हँसा।

डेरे लौटा। काफी रात तक बहुत कुछ सोचता रहा। बाद के कई दिनों तक जगह-जगह घूमकर मैंने भी कुछ रुपये जुटाए। बाहर के अखबारों के बारे में भी कुछ जानकारी हासिल की।

उसके बाद एक दिन सच ही मद्रास मेल पर सवार हो गया। मेम साहब मुझे विदा करने के लिए स्टेशन आई थी। मुझसे वह बोली, मुझे लगता है, कुछ न कुछ तुम्हारा जरूर ही होगा। लेकिन न भी हो तो घबड़ा मत जाना। देश भर में अखबार तो कुछ कम नहीं हैं। और भी दो-चार जगह आने-जाने से कहीं न कहीं चान्स मिलेगा।

मैं चुप रहा। सामने की लाल रोशनी हरी हो गई। गार्ड साहब की सीटी बज गई।

मेम साहब ने कहा, होशियारी से रहना। जहाँ-तहाँ जो-सो मत खाना।....चिट्ठी लिखना।

मैंने कुछ नहीं कहा। सिर्फ उसके माथे पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया।

मद्रास मेल के डब्बे में बैठे-बैठे सहसा पुराने दिनों की बात याद आ गई।....

इतवार का सवेरा। आठ या साढ़े आठ बजे होंगे। नींद टूट चुकी थी, तो भी चादर ओढ़े अलसाया-सा पड़ा था कि हमारे सीनियर सब-एडीटर शिवू-दा आ पहुँचे। अन्दर आकर बेसाख्ता चादर को खींच कर बोले, छि-छि, अभी तक सो रहा है !

मैंने कहा, न-न, सोया कहाँ हूँ, यों ही लेटा हूँ।

शिबू-दा ने उपदेश दिया, इतनी देर तक सोने से जीवन में कुछ किया जा सकता है भला ?

तो ! मैं उछलकर उठ बैठा। कहा, अच्छा यह तो कहिए शिबू-दा, कारपोरेशन के जो कर्मचारी लड़के मुँह अँधेरे उठकर गैस की वत्तियाँ बुताते चलते हैं और रास्ते पर पानी छिड़कते हैं, उनका भविष्य क्या बड़ा उज्ज्वल है ?

शिबू-दा ने डाँट बताई, तू बड़ा फिजूल बकता है। इसीलिए तेरा कुछ हो नहीं रहा है।

—अभी-अभी कहा, देर तक सोने की वजह से, अभी कह रहे हैं, ज्यादा बोलने की वजह से मेरा कुछ....

—आः, रुकेगा भी कि तर्क करता जायगा ?

उठ पड़ा। जरा ही देर में तैयार होकर खोका की दूकान से दो प्याला चाय लाकर शिबू-दा के सामने रक्खा। पूछा, तो ? बात क्या है ? शिबू-दा ? अचानक इतने सवेरे ?

शिबू-दा ने नीले धागे वाली लम्बी बीड़ी में एक कश लगाकर पूरे कमरे को दुर्गन्ध से भर दिया। कहा, चल, एक इण्टरेस्टिंग आदमी के पास चलेंगे।

—किसके पास ?

—चल तो सही, फिर देखना।

शिबू-दा से तर्क करना बेकार है। लिहाजा बेकार समय बरबाद न करके उनके पीछे हो लिया। ट्राम-बस में चढ़ा, उतरा। कितनी बार, सो याद नहीं, मगर दो-तीन बार तो जरूर। उसके बाद भी गली-गली होकर पैदल, काफी दूर। और कुछ दूर जाने पर जरूर ही महाप्रस्थान का पथ मिलता लेकिन शिबू-दा ने कहा, रुक जा, रुक जा। और आगे नहीं।

एक टुटहे मकान के अन्दर जाकर शिबू-दा ने आवाज दी—मधु-दा !

ऊपर के बरामदे से एक छोटी-सी लड़की बोल उठी, शिबू चाचा ! बाबूजी ऊपर हैं।

हम लोग सीधे तिमञ्जिले के छोटे-से कमरे घर तक पहुँच गए। मधु-दा को देखते ही मैं समझ गया कि वह ज्योतिषी हैं, परन्तु पेशे में कारगर नहीं हो सके हैं।

शिबू-दा ने उनसे मेरा परिचय करा दिया।

कागज-पत्तर हटाते हुए मधु-दा ने कहा, किसी तरह से कष्ट करके

यहीं बैठ जाओ भाई।

हम बैठे। शिबू-दा और मधु-दा, दोनों ने घण्टे भर तक शनि-मंगल, राहु-केतु के बारे में ऐसी बातचीत की कि मैं तो खाक भी नहीं समझ सका।

घण्टे भर बाद शिबू-दा के कहने पर उन्होंने मेरे जन्म की सन्-तारीख पूछी और झटपट एक कुण्डली बनाई। गौर से उसे देखकर बोले, अच्छा है।

शिबू-दा ने पूछा, अच्छा है का मतलब ?

नाक में थोड़ी-सी सुंघनी डालकर उँगली गिनते-गिनते बोले, हाँ, उन्नति का योग जरा देर से है।

शिबू-दा ने कुण्डली को ध्यान से देखकर कहा, लेकिन इसके तो तीनों कोने पर मंगल है।

—लेकिन नवम में नहीं, पंचम मे। फिर भी फल अच्छा होगा।

मधु-दा ने उस दिन बहुत बातें बताई थी। आज अब वह सब याद नहीं है। लेकिन उनकी एक बात मुझे याद है। उन्होंने कहा था, शुक्र स्थान बहुत उत्तम है। किसी स्त्री की सहायता से जीवन में उन्नति होगी।

उस दिन उनकी बात पर विश्वास नहीं कर सका था, पर आज मद्रास मेल के डब्बे में बैठ कर उस बात को याद करना ही पड़ा। पहले मैं कभी यह कल्पना भी नही कर सका था कि मेरे जीवन की मरुभूमि मेम साहब की शीतल धारा से धन्य होगी। नाटक-उपन्यास में यह सब हो सकता है, लेकिन मेरे जीवन में ? नैव नैव च।

गाड़ी के डब्बे में बैठे-बैठे मुझे लगा, मेम साहब का स्वप्न, साधना, प्यार हरगिज बेकार नही जायगा। मेरा मद्रास जाना सच ही बेकार नहीं गया। 'सदर्न एक्सप्रेस' के सम्पादक ने कहा, अखबार मे जगह की कमी है। कलकत्ते की स्पेशल स्टोरी के सिवाय और कुछ छापने का स्पेस ही मिलना मुश्किल है। लिहाजा कलकत्ते में फुलटाइम आदमी की जरुरत नहीं है।

मैंने मन-ही-मन दस हाथ उठाकर भगवान् को कोटिशः प्रणाम किया। डेढ़ सौ रुपये महीना ! मारे खुशी के उछल पड़ा। दौड़ा-दौड़ा माउंट रोड पोस्ट आफिस से मेम साहब को अर्जेंट तार भेजा—मिशन सकसेसफुल रिमेंबरिंग यू। स्टार्टिंग टुमॉरो मद्रास मेल।

हवड़ा स्टेशन में मेम साहब ने हँसते हुए मेरा स्वागत किया। कहा, अब ज्यादा अड्डाबाजी न किया करो। मन लगाकर अपना काम करो।

—जरूर करूँगा। लेकिन....

आड़ी निगाहों ताककर मेम साहब ने पूछा, लेकिन ?

—सात दिन बाद लौटा। आते ही काम शुरू कर दूँ ?

—और क्या करोगे ?

—कम से कम एक दिन तुमसे....

मेम साहब ने हँसते-हँसते कहा, वैताल फिर डाल पर जा लटका—

मेरा ही नहीं, मेम साहब को भी मेरे पास आने का जी हो रहा था, जी भर कर लाड़-प्यार करने की इच्छा हो रही थी। मेरी इन कई दिनों की गैरहाजिरी में उसके मन में बहुत से भाव, भाषा जमा हो गई थी। कलकत्ते के इस कैदखाने से बाहर कहीं खुले आसमान के नीचे मुझे और भी गाढ़े रूप में पाने के लिए उसका जी छटपटा रहा था। मेरे जीवन के नये प्रवेश-द्वार पर मेरी सादर अगवानी के लिए वह अकुला उठी थी। इसीलिए मैंने प्रस्ताव किया तो बिना ना-नुकुर के वह तुरन्त मान गई।

वह बोली, तुम्हारे सिर पर जब भूत सवार हो गया है तो तुम हरगिज छोड़ने वाले नहीं।

मैंने कहा, खूब ! और तुम्हें जैसे कामना-वासना, इच्छा-अनिच्छा जैसी कोई चीज ही नहीं।

एक दिन के लिए हम दोनों फिर खो गये। कलकत्ते के लाखों लोगों में से किसी ने भी यह नहीं जाना कि गंगा जहाँ सागर की ओर बेतहाशा दौड़ रही है, सारी सीमाएँ जहाँ असीम हो गई हैं; बंधन को जहाँ मुक्ति मिल गई है, उसी काकद्वीप के ओर-छोरहीन महाशून्य में हम दोनों के प्राण-बिंदु खो गए।

मेम साहब मेरे कलेजे से लगकर बोली, मुझे मालूम है, तुम इसी तरह सीढ़ी-सीढ़ी ऊँचे चढ़ जाओगे।

—तुम्हें मालूम है ?

—हाँ।

—कैसे मालूम है ?

—अखबार के नाम से ही तुम पागल हो, यह क्या मुझे मालूम नहीं है ? अखबार को प्यार किए बिना कोई ऐसा पागल हो भी सकता है ?

—इससे क्या हुआ ?

—हुआ कुछ नहीं। मेम साहब ने शायद मेरी और बड़ाई करना समीचीन नहीं समझा।

हवा का एक झोंका आया। सामने की समुद्रगामी भागीरथी की अपार जलराशि फूल-फूल कर नाचने लगी। वह मानो और भी वेग से, और भी उमगकर समुद्र की ओर दौड़ने लगी।

मेम साहब उठ बैठी। बोली, हिमालय की गोद से निकल कर डेढ़ेक हजार मील चलने के बाद समंदर के करीब आकर यह गंगा कितनी विशाल, कितनी ज्यादा प्राण-चंचल हो उठी है। आदमी भी ठीक ऐसा ही है। सँकरे दायरे से निकल कर वृहत् जीवन के समीप पहुँचने पर आदमी कहीं ज्यादा उदार, कहीं ज्यादा संजीदा होता है। होता है न?

मैं चुप हो रहा। सिर्फ मेम साहब की उदार और गंभीर आँखों को देखता रहा।

अपने जूड़े को खोलकर मेम साहब ने अपना सिर मेरे कंधे पर रख दिया। छाती पर से होकर उसकी लंबी अस्तव्यस्त चोटी नीचे लुढक गई।

मैंने कहा, अच्छा मेम साहब, तुम तो मेरी उन्नति के लिए इतना सोचती हो, इतना कुछ करती हो, मगर मैं तो तुम्हारे लिए कुछ भी नही करता।

—मेरे लिए अब क्या करोगे? अपने को तो तुम मेरे ही लिए तैयार कर रहे हो।

—लेकिन तो भी....

—इसमें लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। लाख हो, मैं मध्यवित्त बंगाली घर की लड़की हूँ। हजार लिख-पढ़ लूँ, आखिर पति-पुत्र पर ही अपना भविष्य है।

मेम साहब रुक गई। उसकी नजर क्षितिज की अंतिम सीमा पर चली गई। शायद उसका मन भी भविष्य के अनजान रास्ते पर खो गया। मैं खूब समझता हूँ, वर्तमान के लिए मेम साहब रत्ती भर भी नहीं सोचती। उसको जो भी सोच-फिक्र है, ध्यान-धारणा है, सब भविष्य के लिए। वह आगामी दिनों का स्वप्न देखती है। स्वप्न? नहीं-नही, स्वप्न क्यों होने लगा? उसने निश्चित तौर पर यह सोच लिया है कि नौकरी-चाकरी छोड़-छाड़कर वह गिरस्ती करके, मुझको सुखी करेगी, मेरे कामों में हाथ बँटाएगी। फिर? फिर वह माँ बनेगी।

इधर मेम साहव ने एक वार नहीं, वहुत वार पति-पुत्र के साथ घर-गिरस्ती वसाने की चर्चा की है। उसका लड़का क्या करेगा, उसकी लड़की कैसी होगी, यह सव भी कई वार वोलती रही है। सुनने में अच्छा ही लगता। पहले तो मन खुशी और तृप्ति से भर जाता, फिर जानें कैसा तो खटका-सा लगता। आखिर आदमी की ही तो जिंदगी ठहरी! कहाँ से क्या हो जायगा, कौन कह सकता है! मैं वास्तविकता के आमने-सामने खड़ा हुआ हूँ, मैंने देखा है, आदमी तरह-तरह के सपने देखता है, लेकिन जीवन में कितनों का सपना रूपायित होता है? इसलिए मेम साहव को गले लगाकर खुशी होती है, लेकिन भविष्य के लिए उसकी आशा-आकांक्षा की वातें सुनकर जी में कैसा तो होने लगता है।

उस दिन समुद्र की ओर भागती हुई वेगवती विभोर भागीरथी के किनारे वैठकर मेम साहव से पति-पुत्र के साथ गिरस्ती वसाने की जो चर्चा सुनी उससे कुछ देर तक मैं चुप रह गया। उसके वाद उसके चेहरे पर, माथे पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर दुलारते हुए कहा, तुम क्या यह जानती हो कि पति-पुत्र के साथ तुम सुखी ही होगी?

अपनी उन लंबी भौंहों को खींचकर आँखों की पुतलियों को घुमाकर वोली, जरूर।

—जरूर?

मेम साहव के होंठों पर व्यंग की हँसी झाँक गई। वोली, तो क्या तुम और किसी को लेकर सुखी होने की सोच रहे हो?

—कभी-कभी जी में आता है, मगर तुम कंधे से उतरोगी क्या?

—मैं तुम्हारे कंधे पर सवार हूँ कि तुम मेरे कंधे पर सवार हो?—जरा दम लेकर वोली—और कोई आकर देखे तो जरा, मजा चखा दूँगी।

—अच्छा!

—और नहीं तो क्या? तुम्हारी पूजा करूँगी?

—जानती हो, पहले की पतिव्रता स्त्रियाँ पति को सुखी करने के लिए वहुविवाह में आपत्ति नहीं करती थीं!

—सिर्फ पहले की क्यों कह रहे हो? थोड़ा और आगे जाओ, प्रागैतिहासिक युग में, जव जंगलों में रहते थे, तव तो तुम पुरुष लोग वहुत तरह की हरकतें करते थे! आज भी वही करो न!

जरा ठंडी-मीठी वयार वह गई। लमहे में मेम साहव वदल गई।

दोनों हाथों से मेरे गले को लपेट कर बोली, मैं जानती हूँ, तुम और किसी को कभी प्यार नहीं कर सकोगे।

—जानती हो?

—सौ बार। हजार बार।

—कैसे जाना?

—वह तुम नहीं समझोगे।

—नहीं समझूंगा?

—तुम स्त्री होते, तो समझते।

—मतलब?

—हम लोग जिस तरह से बच्चों के मन की बात समझ लेती हैं, उसी तरह से पति के मन की बात भी समझ सकती हैं।

तुम तो स्त्री हो दोला भाभी! इसलिए तुम समझ सकती हो कि किस गहराई से मन-प्राण से प्यार करने पर ये बातें कही जा सकती हैं।

खूब मन लगाकर 'सदर्न एक्सप्रेस' का काम करना शुरू कर दिया। कभी-कभी कोताही करने का मन करता कि मेम साहब के साथ अड्डा मारूँ, मजे करूँ। लेकिन नहीं कर पाता। उसे ठगने में बड़ा कष्ट होता जिसके सारे जीवन की साधना मेरे लिए है, जो मेरे कल्याण में ही अपना कल्याण मानती है, उसे क्षण को भी धोखा देने का मुझमें साहस या सामर्थ्य नहीं थी।

अंधड़ की गति से न सही लेकिन मैं बड़े निश्चित ढंग से ही आगे बढ़ रहा था। मेम साहब को अपने कलेजे में पाकर मैं अपनी जीवन-नदी के मुहाने का कल-कल सुन पाता था।

कई महीने बाद मैं फिर बाहर निकला। इस बार लखनऊ। कुछ दिन पहले 'क्रानिकल' के संपादक से परिचय हुआ था। उसी परिचय के सहारे उनके पास जा पहुँचा। उन्होंने कहा, कलकत्ते में हमें करेसपोंडेंट की तो जरूरत नहीं है, पर हर हफ्ते वेस्ट बंगाल का एक न्यूजलेटर हम छाप सकते हैं।

संपादक श्री श्रीवास्तव ने साफ कहा, वट आइ कांट पे यू मोर देन वन् हन्ड्रेड।

मैंने कहा, दैट्स ऑलराइट। लेट अस मेक ए बिगिनिंग।

अपने जीवन के ऐसे दिनों में मेम साहब को याद किए बिना मैं नहीं रह सकता था। उसके प्रति कृतज्ञता से मेरा हृदय भर जाता। आसमान

काले वादल दिखने से ही वारिश नहीं होती। उन काले वादलों में
जलीय भाप का होना जरूरी है। एक लड़के के जीवन में किसी लड़की
का आना कोई नई वात नहीं। मेरे जीवन में भी शायद और कोई आती,
पर मैं खूब जानता हूँ कि और किसी स्त्री के जरिये मेरे कर्म-जीवन के
अचलायतन को वदलना मुमकिन नहीं होता।

स्त्रियाँ थोड़ा दुलार पाना चाहती हैं, प्यार पाना चाहती हैं। थोड़ा-
सा सुख, थोड़ी-सी स्वच्छंदता, थोड़ी-सी खासियत—इसकी चाह प्राय:
सभी स्त्रियों को होती है। वही सुख, वही स्वच्छंदता न चाहिये तो कौन
स्त्री आत्मत्याग कर सकती है? वहुत ही सहज, सरल, चिराचरित रीति
से मेम साहव के जीवन में ये सारी ही चीजें आ सकती थीं, लेकिन उस...
चाहा कहाँ? उसने तो अपने प्रेम, अपनी आंतरिकता, अपनी प्रेरणा से
मामूली वंगाली परिवार के एक हारे हुए सैनिक को फिर से जोश दिला-
कर उद्‌वुद्ध करना चाहा था।

मैं खूब जानता था कि मेरे कर्म-जीवन में इस तात्कालिक सफलता
की कोई स्थायी कीमत नहीं है, इसका कोई भविष्य नहीं है। सो हो।
इन छोटी-छोटी अस्थायी सफलताओं से मैंने अपने खोए हुए आत्मविश्वास
को वापस पाया। अपनी क्षमता पर कुछ आस्था हुई।

सवसे वड़ी वात का जो अनुभव हुआ, वह यह कि सिर्फ कलकत्ते तक
ही सीमित न रहकर मैं पत्रकारिता के लिए और आगे बढ़ सकता हूँ।
वल्कि माँ का नाम लेकर एक वार भारतवर्ष के विशाल रंगमंच प...
निकल पड़ूँ तो और अच्छा हो।

तुम मजे में समझ सकती हो कि मैं क्यों और किसके लिए अचान...
एक दिन कलकत्ता छोड़कर दिल्ली चला आया। आज मेरा जीवन कित...
व्यस्त है, कितना विस्तृत है! पत्रकार होते हुए भी आज मैं उत्त...
दार्जिलिंग, पूरव में गौहाटी, दक्षिण में गंगासागर और पश्चिम में ...
रंजन-सिंद्री—इस चौहद्दी में ही कैद नहीं हूँ। वंगाल को मैं प्यार ...
हूँ। वंगाल के एक-एक आदमी को अपना समझता हूँ, लेकिन समस्...
से घिरे और हर रोज नई चिंता से जेरवार होकर जीने की सोचता...
डर लगता है। खुशी-खुशी ही यदि जी न सका, यदि इस धरती ...
रस-गंध-माधुर्य का मजा ही न ले सका तो पुरखों के स्मृति-सने ...
घर में जीवन विताने में मानसिक शांति शायद मिले, चैन लेकिन
नहीं मिल सकती।

ग्राज जिस ग्रासानी से ये वातें लिख रहा हूँ, वात उतनी ग्रासान नहीं है। जिस परिवार में पैदा हुग्रा, जिस वातावरण में पला, काम-धंधा शुरू किया, वहाँ का हर कुछ सीमित था। रोजी-रोटी के लिए ग्राज बहुतेरों को बहुत-बहुत तरफ छिटक जाना पड़ा है; लेकिन उन दिनों ग्राजीविका के लिए, गुजर-वसर के लिए मेरे लिए सोने के वंगाल को छोड़ना सहज ग्रौर स्वाभाविक नहीं था। मगर मैं उस दिन हवड़ा स्टेशन में हँसते हुए ही दिल्ली मेल पर सवार हुग्रा था।

ग्यारह

यह बात तुम भी जानती हो, मैं भी जानता हूँ ग्रौर हर कोई जानता है कि ग्रादमी के जीवन की गति का रुख ग्रौर वेग बीच-बीच में बदलता है। मेरे साथ भी ऐसा हुग्रा है, हो सकता है, ग्रागे भी हो। मेम साहब से मिलने के पहले मेरा जीवन इस कदर धीमी चाल से चल रहा था कि उसका जिक्र करना ही बेकार है। ग्रौर मेम साहब को पाने के बाद कुछ दिनों तक एक ऐसे ग्रजीब नशे में चूर रहा कि भूत-भविष्य के लिए दिमाग खपाने का न तो समय था, न ही जरूरत महसूस हुई।

उसके बाद मन के ग्रासमान से ग्रनिश्चयता की घटा फट गई तो जिंदगी में एक ग्रनोखा ही ज्वार ग्राया। शुरू-शुरू में जरा देर को भी नजर की ग्रोट होने से ग्रसह्य लगता था; बर्दाश्त से बाहर। ऐसा लगता, खो गई शायद, शायद कुछ हो-हवा गया। मेरी ही तरह मेम साहब के मन में भी तरह-तरह की ग्राशंकाएँ होतीं। ग्रागे चलकर जब दोनों ने दोनों को जी भर कर पाया, उसे पाने की खुशी से सारा मन मतवाला हो उठा, तब धीरे-धीरे वैसी चिंताएँ मन से काफूर हो गईं।

मेम साहब का हाथ ग्रपने हाथों में न पाने से, मेम साहब के कलेजे में कान लगाकर उस पहचानी धड़कन को न सुन पाने से पहले-पहल बड़ी बेचैनी-सी होती। परिचय के घेरे को पार करके प्रेम के उस पहले ग्रध्याय में मन बड़ा सँकरा हो गया था। मेम साहब के सिवाय ग्रौर कोई दूसरी बात मानों मन में ग्राती ही न थी। दुनिया के इस ग्रानंद मेले में हम दोनों के सिवाय मैं ग्रौर किसी को सोच ही नहीं सकता। दुनिया के ग्रौर लोग जैसे फिजूल ग्रौर किसी काम के नहीं लगते। जीवन की महज

एक ही दिशा, एक ही अंग को समग्र जीवन मान बैठा था। अपनत्व की गहराई के साथ-साथ ये भूल धारणाएँ भी जाती रहीं। मेम साहब के प्रेम ने मेरे सारे जीवन को, सारी जीवन-सत्ता को घेर लिया। वह मेरे निजी जीवन की निरी प्यारी साथिन ही नहीं, जवानी के आनंद मेले के बीच बगल में चलने वाली ही नहीं, मेम साहब मेरे संपूर्ण जीवन की भागीदार बन गई।

हमारे पुरखे इतना ही जानते थे, पुत्रार्थे क्रीयते भार्या। अपने यहाँ के देवी-देवताओं का इतिहास पढ़ने से किन्हीं-किन्हीं के सौ-सौ, हजार-हजार संतान की माता होने की कहानी पढ़ने को मिलती है। समाज-विवर्तन के साथ-साथ सौ या हजार बेटों की माँ होने वाली कहानी तो पुराने इतिहास के पन्नों में कैद हो गई। लेकिन जो भी हो, फिर भी हमारी नब्बे फीसदी औरतों की जिंदगी पति की सेज और रसोई घर तक ही महदूद है।

फिलहाल कितनी लड़कियों को तो प्यार करते देखा, सपने देखते देखा। प्यार पाकर बहुतों की जिंदगी बदल जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन मेरी मेम साहब ने मुझे बदल ही नहीं दिया, उसने मुझे नई जिंदगी दी। मुझे प्यार करके वह अंधी नहीं बनी। उसने रात के अँधेरे में मेरी गर्म सेज पर भगोड़ी की नाईं जगह नहीं माँगी, उसने मेरे समूचे जीवन के हर अध्याय में कोई न कोई भूमिका लेनी चाही।

मर्दों के जीवन में कर्म-तत्परता से बड़ी और कोई चीज नहीं होती। काम-काज में असफलता, काम-काज की दुनिया में हार—यह मर्दों के लिए मौत के बराबर है। वैसे नाकामयाब, हारे हुए, जगह से गिरे हुए मर्द के जीवन में स्त्री के प्रेम का मूल्य क्या है? स्वीकृति कहाँ है? मेम साहब ने इस चरम सत्य को समझा था। लेकिन मैं प्रेम के नशे में चूर था। इतने सोच-विचार से मुझे कोई वास्ता नहीं था। मद्रास से लौट कर मन लगा कर नया काम कर रहा था, थोड़ी-बहुत आमदनी भी हो रही थी। मन मेरा खुशी से फूला हुआ था। चाहे कलकत्ते में गुंजाइश न हुई हो लेकिन मद्रास जैसे दूर के एक अंगरेजी अखबार में काम मिल जाने से सरकार तथा पत्रकारों में मेरा रुतबा थोड़ा बढ़ गया। मन ही मन मैं थोड़ा घमंडी भी हुआ। एक दिन फिर मेम साहब ने मेरी चेतना पर चोट की—अब और कुछ सोच रहे हो?

—तुम्हारी बात कि अपनी?

मेम साहब गरज पड़ी—आह ! बकवास मत करो।

मैं अचंभे में आ गया—नाराज क्यों हो रही हो ? दोनों घुटनों पर मुँह रखकर मेम साहब कुछ सोच रही थी। मेरा सवाल सुनते ही उसने गुस्से से मुँह फेर लिया।

मैंने पुकारा, मेम साहब !

जवाब नहीं मिला।

फिर आवाज दी, मेम साहब, सुनो तो !

अब भी कुछ न बोली। मैं जरा सोच में पड़ गया। उसके कुछ नजदीक खिसक गया। सर पर हाथ फेरते हुए कहा, गुस्सा क्यों हो रही हो ?

जवाब मिला, हट कर बैठो। यह तुम्हारे अपने फ्लैट का बैठका नहीं है, यह कलकत्ते का मैदान है !

मैं समझ गया, आबहवा अनुकूल नहीं है। फोर्स-लैंडिंग से अपना हवाई जहाज ही बरबाद होगा, कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए, आबहवा अनुकूल होने तक मैं ऊपर ही चक्कर काटने लगा।

काफी देर बाद मेम साहब बोली, अपने भविष्य के बारे में कोई इतना लापरवाह हो सकता है, यह तुम्हें देखने से पहले मैं सोच भी नहीं सकी थी।

—अचानक यह बात क्यों कह रही हो ।

—और क्या ? यह समझने से मेरे नसीब में क्यों कोई दुख होता !

—आज तुम्हारा मूड खराब है।

—हाँ।—मेरी ओर गरदन झुका कर बोली, बताऊँ, क्यों ?

—बताओ न !

—अप्रिय सत्य कहूँ ?

—जरूर।

—बरदाश्त कर सकोगे ?

मैंने वीर की नाईं कहा, उस डर से कलेजा नहीं काँपता !

मेम साहब जरा व्यंग की हँसी हँसी। बोली, फिजूल की बक-बक में शर्म नहीं आती ? अपने को और भी प्रगति की ओर ले चलो, सो नहीं, सिर्फ....

—अभी-अभी तो एक नया काम शुरू किया। फिर नया क्या करूँ ?

—तुम क्या करोगे, तुम नहीं जानते ?

मैं वास्तव में सोच में पड़ गया। सोच नहीं पाया कि वह कहना क्या चाह रही है। मैंने उसके हाथ को दबाकर कहा, मेरी मेम साहब, खुल कर बताओ न कि तुम कहना क्या चाहती हो। रंजिश से क्या फायदा? मेम साहब बोली, तुम्हें यह जो नया काम मिला, लगता है, उसके बाद तुम और कुछ नहीं चाहते। क्यों?

—चाहता जरूर हूँ, पर चाहने से ही तो मिल नहीं जाता। यह तो तुम्हें मालूम है।

—अगर सिर्फ मेम साहब की ही सोचते रह जाओगे, तो जिंदगी में कभी कुछ नहीं मिलने का। नया कुछ पाने के लिए घूमना-फिरना चाहिए, लोगों से मिलते-जुलते रहना चाहिए, मिहनत करनी चाहिए।

बात उसने सच ही कही थी। रोजमर्रे के काम-काज के बाद का मेरा समय मेम साहब के लिए गिरवी था।

मेम साहब ने कहा, मुझे तो तुमने बहुत पाया, जी भर कर पाया। मेरे लिए तो अब किसी और भाड़ में जाने की गुंजाइश ही न रही। मैं चाहूँ भी तो मुझे कोई अपनाने को तैयार नहीं होगा। तुम तो बिलकुल निश्चित हो। इसीलिए कह रही थी कि अब तुम बेखिक्र होकर अपना काम करो।

नया काम पाकर मैं एक डग आगे बढ़ा था। साथ ही थोड़ा ठिठक भी गया था। कम से कम कुछ दिन निश्चित रहने की इच्छा थी। लेकिन मेम साहब को यह बरदाश्त न हुआ। मेम साहब ने सोचा, काम में जब तक स्थायित्व न आए, मर्यादा न आए, तब तक आराम हराम है।

—अखबारों में कितने ही लोग तो लेख लिखते हैं, फीचर लिखते हैं, कहानी लिखते हैं, तुम भी तो लिख सकते हो।

—कभी लिखा तो नहीं है। रिपोर्ट के सिवा और कुछ लिखने का कभी मौका ही नहीं आया।

—मौका आता नहीं है, मौका निकाल लेना पड़ता है।

मैंने तुम्हें पहले ही बताया है भाभी, वह मेरी तरह ज्यादा बक-बक नहीं करती। थोड़ी ही थोड़ी बातों में मेम साहब के मन की बात निकल आती थी।

दोला भाभी, आजकल के बहुत से डाक्टर जिस तरह पेटेंट दवा, कैपसुल, टिकिया, सुई से ही सारा इलाज करते हैं, उसी तरह से अखबार के लगभग सभी रिपोर्टर बँधी-बँधाई लीक पर रिपोर्ट लिखते हैं। मरीज

के लिए किसी मिक्श्चर का नुस्खा लिखने में डाक्टर साहब को दिमाग की कसरत करनी पड़ती है। मामूली अखबार की रिपोर्ट के अलावा कुछ लिखने के लिए रिपोर्टरों में कुछ अकल होनी चाहिए। वह अकल न तो मुझमें कभी थी, न आज ही है। लेकिन लाचारी की कोई दवा नहीं। मेम साहब के आंसू और उसाँस से हार कर मैंने कलम उठाई।

तुम सोच भी नहीं सकती कि वह कैसा दुर्दिन था मेरा। कागज-कलम लेकर बैठता कि छाती के अंदर से रुलाई उमड़ आती। फिर भी रुकने का उपाय नहीं। लेकिन कोशिश करने से ही क्या हर कुछ हो सकता है। मुझसे भी न हो सका।

आखिरकार क्या किया मैंने, पता है? लेख लिखना शुरू कर दिया। कुछ किताब, कुछ पत्र-पत्रिकाएँ पढ़-पढ़ाकर लेख लिखने लगा। इस काम में अपनी विद्या की नहीं, कुछ बुद्धि की जरूरत थी। धीरे-धीरे वे लेख छपने लगे। थोड़ी-बहुत दक्षिणा भी मिलने लगी।

एक दिन मैंने मेम साहब से कहा, देखा, किस तरह की ठगी से कमाई कर रहा हूँ!

—अपनी विद्या-बुद्धि की कमाई को ठगी नहीं कहते।

—अच्छा!

मेम साहब ने कहा, राम का नाम जपते चलो। इतना आकाश-पाताल सोचना नहीं होगा। नाम लेते-लेते ही शायद किसी दिन भगवान् के दर्शन मिल जाएंगे।

मेम साहब के पल्ले पड़कर वही जो मैंने राम नाम का जाप शुरू किया, सो करता ही चला जा रहा हूँ। विधना के अजीब ख्याल से मेम साहब जानें कहाँ खो गई। जानता हूँ, वह शायद मेरे लेख देख नहीं पाती है, या पढ़ नहीं पाती है। बीच-बीच में ख्याल हो आता है, किसके लिए, किस लिए लिखूं? भगवान् की कृपा हो तो पंगु चढ़े गिरिवर गहन। मुझे भगवान् की दया नहीं नसीब हुई, भविष्य में भी जरूर नहीं होगी। जीवन में जो कुछ भी पाया है, जो कुछ भी किया है, सब उसी फूटे नसीब वाली के लिए। प्रेम देकर उस दईमारी ने मुझे पागल बना दिया और उसी पागलपन में मैं अपने जीवन में जुआ खेलता रहा। स्वाभाविक अवस्था में, सही दिमाग से कोई भी आदमी मेरे जैसे जीवन को लेकर ऐसा खेल नहीं खेल सकता। मैं खेल पाया, आज भी कुछ-कुछ खेल पा रहा हूँ, पर आइन्दा अब मुझसे भी न होगा। होगा भी कैसे कहो। उस दईमारी ने मुझे पेड़

चढ़ा दिया और सीढ़ी लेकर चंपत हो गई। मैं डालों पर, पत्तों पर
ता फिर रहा हूँ। मगर कब तक ? सब कुछ की तो एक सीमा
ती है।....

क्या लिखते क्या लिख गया। मेम साहब के बारे में लिखने जाता हूँ
। मेरा दिमाग घूम जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उचित-अनुचित
का विचार नहीं कर पाता। कभी सोचा भी नहीं था कि मेम साहब की
बात लिखूंगा। लेकिन नसीब के फेर से मजबूर होकर ही तुम्हें लिख रहा
हूँ। दूसरे किसी को यह सब हरगिज लिख भी नहीं सकता था। और
चाहे जो हो, ये चिट्ठियाँ लिखकर जी कुछ हलका होता है। डर भी लगता
है। डाक्टर लोग जैसे अपने प्यारे पुत्र या स्त्री का खुद से इलाज करने में
हिचकते हैं, मुझे भी अपनी मेम साहब के बारे में लिखने में डर लगता
है। भाव से, भाषा से मेम साहब के प्रति न्याय कर सकना मेरे लिए
निश्चय ही संभव नहीं है। रंजिश, रूठन, प्रेम—इन सब के जरिए वह
किस गजब ढंग से मेरे जीवन की नाव का पाल खोलकर मुझे आगे बढ़ा
ले गई थी, यह ठीक-ठीक कहने या लिखने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

अखबार की रिपोर्टरी का एक नशा होता है। वह नशा रोज-रोज
का है। एक दिन का जोश और नशा उतरते न उतरते रिपोर्टरों के
जीवन में फिर नए जोश का ज्वार आता है। उस जोश में जो एक वैचित्र्य
होता है, वह तो उन्हें और भी मतवाला बना देता है। उसी जोश के
नशे में ज्यादातर रिपोर्टरों की जिन्दगी कट जाती है। इच्छा भी होती
है, क्षमता भी होती है, तो भी कुछ कर पाना किसी के लिए संभव नहीं
होता। मेम साहब ने यह नहीं चाहा था कि मेरी जिंदगी वैसे ही नाहक
के जोश में डूबी रहे। उसने मेरे कार्यक्षेत्र को और भी व्यापक और
विस्तृत करना चाहा था।

बोटैनिकल गार्डन में घूमते हुए मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए
साहब ने कहा, अरे, इतनी दूर हटकर क्यों चल रहे हो ?

—यह तुम्हारा ड्राइंग रूम तो नहीं है न !

बिजली की तेजी से लपक कर मेम साहब ने मुझे पकड़ लिया।
पेड़ की आड़ में ले गई। दोनों हाथों मुझे जकड़ कर बोली, तुम न
हो गए हो ?

—पागल ! नाराज क्यों होने लगा ?

—बहुत जोर से नाराज हो गए हो, क्यों ?

—रत्ती भर भी नाराज नहीं हुआ हूँ। अच्छी नौकरी के लिए युनियन पब्लिक सर्विस कमीशन का इम्तहान पास करना पड़ता है; वैसे ही तुम्हें भी पाने के लिए कोई इम्तहान तो देना पड़ेगा न, पास करना होगा न....

हाथ से मेरा मुँह दबाकर बोली, बेकार मत बको।

—बेकार की बात नहीं है मेम साहब। बात यह है, अगर तुम चाहती, तो मुझसे कहीं अच्छे किसी ओहदे वाले को पा सकती थी, लेकिन निहायत ही जब मेरे घाट पर फिसल कर गिर पड़ी हो, तो तुम मुझी को तैयार कर लेने की कोशिश कर रही हो।

मेम साहब ने एक लंबा निःश्वास छोड़ा। बोली, तुम्हारा मन आज बिगड़ा हुआ है। इसलिए आज नहीं, दो-चार दिन बाद कहूँगी।

—दो-चार दिन बाद क्यों, आज ही कहो।

—आज कहने से तुम विश्वास नहीं करोगे।

—मैं तुम पर नाराज हो सकता हूँ, मगर अविश्वास कभी नहीं कर सकता।

—सच ?

—बिलकुल।

मेम साहब ने मेरा हाथ खींचकर अपने माथे पर रक्खा, कहा, मेरे माथे पर हाथ रखकर कहो, अविश्वास नहीं करोगे।

उतना गुस्सा, उतना दुःख, उतने अभिमान के बावजूद मेरे होंठों पर हँसी की रेखा दौड़ गई। मैंने उसके माथे पर हाथ रख कर कहा, सच कहता हूँ, तुम पर कभी अविश्वास नहीं करूँगा।

दोनों जाकर एक जगह छाँह में बैठ गए। वह बोली, किसी अच्छे ओहदे वाले लड़के से मेरा व्याह हो सकता था, शायद हो कि वह तुम से कहीं ज्यादा कमाता होता, लेकिन मुझे लगता है, वैसे ओहदे वाले पुरुष के हृदय में स्त्री की वह मर्यादा दुर्लभ है।

वह जरा रुकी। फिर बोली, देखो, रुपए-पैसे के प्रति मुझे खास लोभ नहीं है। जरा आराम से, सुख से रहने की इच्छा जरूर होती है, पर रुपया-पैसा ज्यादा होने से मन नष्ट हो जाता है। और मैं वह नहीं चाहती।

मैंने कहा, तुमने तो लगभग 'उदय के पथ पर' का डायलाग बोलना शुरू कर दिया।

मेरे हाथ को दबाकर मेम साहब ने कहा, तुम मेरा इस तरह से अपमान न करो। जी जाहे मुझे डाँटो, मुझ पर सख्ती करो, मगर मेरे प्रेम का मजाक मत उड़ाओ।

मेम साहब का गला भारी हो आया। मैंने समझ लिया, अब सावन की धारा ही उतर आएगी। उसकी आँखों में आँसू मुझसे नहीं देखा जायगा। इसलिए झट से उसका गाल दबाकर कहा, पागल हो गई हो तुम? तुम्हारे प्रेम का मैं मजाक उड़ाऊँगा?

मेम साहब को जरा चैन आई, राहत मिली। मेरे कंधे पर उसने अपना सर रक्खा। मैंने सर पर हाथ फेर कर दुलार जताया। वह मेरे और करीब आ गई। बोली, नहीं जानती, मैंने तुम्हें प्यार क्यों किया। हो सकता है, तुमने उस तरह से मुझे चाहा था, इसीलिए मैं तुम्हें निराश नहीं कर सकी। जाने कितनी रातों को अकेली बैठी तुम्हारे बारे में सोचा करता रही हूँ।

—अच्छा!

—और नहीं तो क्या? फिक्र के मारे तो तुमने मुझे खत्म ही कर डाला।

—सो तो समझा, मगर मेरे काम-काज के लिए तुम सदा खिट-खिट क्यों करती रहती हो?

सिर हिला कर वह बोली, खिटखिट न करूँ? तुम्हारे जैसे अड्डा मारने वाले, काम से जी चुराने वाले, स्त्रैण आदमी से खिट-खिट के बिना कोई काम कराया जा सकता है भला?

—जिसके स्त्री नहीं है, वह स्त्रैण कैसे हुआ?

—बक-बक मत करो। ब्याह किए बगैर ही जो कर रहे हो, वह कहने लायक नहीं। ब्याह करने के बाद क्या करोगे, पता नहीं।

मैं तुम से बताऊँ दोला भाभी, मेम साहब बेहद शरारत करती थी। जरा-से लाड़ से पिघल पड़ती, प्यार से मुग्ध हो जाती, शैतानी करने से मजा लेती। लेकिन बाद में कुछ ऐसा भाव दिखाती गोया इन बातों से उसे कोई मतलब नहीं, कोई गरज नहीं, जो कुछ गरज है सब मेरी।

खैर! उस दिन बोटैनिकल गार्डेन में बैठकर जो कहा, सो सुनो। कहा, मैं चाहती हूँ कि तुम बहुत बड़े आदमी बनो, जिसमें कोई यह नहीं कह सके कि मैंने आकर, तुम्हारे जीवन को चौपट कर दिया। अपने को बनाने का यही तो समय है। इसके बाद जब घर-गिरस्ती के झमेले में पड़

जाओगे, तो इतना अवसर थोड़े ही मिलेगा ? नहीं मिलेगा। अभी तुम एक पल भी बरवाद न करो, मैं बरवाद नही करने दूंगी। मैं अपनी सारी शक्ति, सारी साधना, सारे सपने लगाकर तुम्हें बड़ा बना कर ही रहूँगी।

मैंने कहा, तुम खुद भी तो तरक्की की राह में आगे बढ़ सकती हो.... विदेश जा सकती हो, शोध-कार्य कर सकती हो।

मेम साहब ने अवाक् होकर कहा, मैं ? मैं ब्याह के बाद कुछ भी नहीं करूँगी। नौकरी-चाकरी सब छोड़ दूँगी।

—तो फिर करोगी क्या ?

—क्या करूँगी ? घर-गिरस्ती।

—उसकी खातिर नौकरी क्यों छोड़ोगी ?

—नौकरी करने से बाल-बच्चों को आदमी नहीं बनाया जा सकता। और फिर तुम्हारा काम भी जैसा अजीब है, कोई ठीक-ठिकाना नहीं। ऐसे में हम दोनों ही बाहर रहेंगे तो कैसे चलेगा ?

फिर बोली, घर-गिरस्ती के काम-धंधे के बाद कुछ-कुछ तुम्हारा हाथ बँटाने की कोशिश करूँगी। तुम्हारी तरह पत्रकार भले न हो पाऊँ, कम से कम तुम्हारी सेक्रेटरी तो बन सकूँगी।

इसी तरह से अचानक एक दिन जब मैंने पीछे पलट कर देखा तो पाया कि मेरे काम-काज के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। रोज-रोज की रिपोर्ट के अलावा लेखन-कार्य में मैं जुट पड़ा। क्लिपिंग करना, फाइल करना, लाइब्रेरी जाकर नोट लेना, किताबें पढ़ना, फिर लिखना और लिखी रचना को छपाने की चेष्टा में सारा दिन व्यस्तता में ही बीतता। रोज-रोज मेम साहब से मिलने का भी वक्त नही मिलता।

इसी बीच उत्तर बंगाल में कयामत की बाढ़ आई। घर-द्वार, रेल की पटरियाँ बह गईं, खेत-खलिहान डुब गए, हजारों-हजार, लाखों-लाख लोगों के हाहाकार से आसमान गूंज उठा। न्यूज-एडिटर के निर्देश से मुझे उस सर्वनाशी बाढ़ की रिपोर्ट के लिए भागना पड़ा। टेलिफोन करके मैंने मेम साहब को कालेज में सूचना दी। वह स्टेशन आई। मेरे हाथ में निर्माल्य देकर बोली, कालीघाट की मैया का निर्माल्य है। इसे अपने पास रखना। खतरा नहीं रहेगा।

सिर्फ उतना ही नही, विस्कुट-जेम-जेली का एक बड़ा-सा पैकेट भी दिया। कहा, बाढ़ के इलाके में खाने-पीने का कष्ट होगा, इसे साथ

रख लो।

लगभग पंद्रह दिन बाद मैं लौटा। मुझे देखकर मेम साहब तो चौंक उठीं—हाय राम, यह कैसी दशा हो गई है तुम्हारी!

—दशा क्या!

—तुम्हारी तन्दुरुस्ती कैसी हो गई?

—असुविधा से, अनियम से सेहत खराब ही होगी, इसमें ताज्जुब की कौन-सी बात है? दो-चार दिन में सब ठीक हो जायगा।

उस दिन तो वह और कुछ नहीं बोली। दूसरे दिन एक बोतल टानिक लेकर हाजिर हो गई। मेरे लिए हुक्म हुआ, दोनों वक्त दो-दो चम्मच पिया करना। भूल मत जाना। और हाँ, यह जो घंटे-घंटे चाय पीते हो, इसे बन्द करो तो।

—चाय पीना बन्द कर दूँ?

—लगता है, यह सुनकर तुम आसमान से गिर पड़े!

—लगभग। असल में सफल रिपोर्टर ह्विस्की और असफल रिपोर्टर चाय पर ही जिंदा रहते हैं। तो चाय छोड़ कर अब ह्विस्की पर उतरूँ?

—और क्या? नहीं तो मेरे नसीब में आग कैसे लगाओगे?

मैं कायदा-कानून से परे, बाधा-बंधनहीन पद्मा नदी की तरह मजे में जीवन बिता रहा था। लापरवाही का जीवन बड़ा अच्छा लगता था। लेकिन इस औरत ने आकर सब बंटाढार कर दिया। मुझे लगभग भला आदमी बना डाला। सबसे बड़ी बात कि इसने मेरी आँखों में, मेरे प्राणों में एक सुंदर और शांत घर-गिरस्ती का आकर्षक सपना आँक दिया।

बारह

बहुत-बहुत दिनों तक बहुतों को मक्खन लगाने के बाद भी जब कलकत्ते की किसी पत्र-पत्रिका में कोई नौकरी नहीं जुटा पाया, तो एक्सप्रेस और क्रानिकल की वह मामूली और अस्थायी नौकरी ही बड़ी अच्छी लगी। मगर कब तक? मेम साहब के प्रति अपने भावी जीवन के बारे में कोई दुविधा नहीं थी। लेकिन अपने काम-काज की यह डांवाडोल स्थिति मुझे बेचैन करने लगी।

रोज के रिपोर्टिंग के अलावा लेख, फीचर आदि का लिखना ठीक ही चल रहा था। वे रचनाएँ कभी इस, कभी उस पत्र-पत्रिका में छप भी रही थीं। कोई-कोई रचना वापस भी आ जाती। कभी-कभी दस-पन्द्रह-बीस रुपए का मनीआर्डर या चेक भी मिल जाता था। बेजा नहीं लग रहा था। मगर फेरीवाला संवाददाता होकर तमाम जिंदगी तो नहीं काटी जा सकती! ऐसी डांवाडोल हालत में मेम साहब को तो घसीट कर नहीं ला सकता! इधर मेरे बगल से निकल कर बहुतेरे छोरे-छोकरों ने गली-कूचे की राह से होकर जीवन के रेड-रोड को पकड़ लिया। खुद को बड़ा निकम्मा, बड़ा निठल्लू लगने लगा।

मेम साहब से मैं कुछ भी नहीं कहता था। अपने ही मन में बहुत-बहुत सोचा करता। एक बार जी में आया, भाड़ में जाय यह जर्नलिज्म! खाना-कपड़ा ही मयस्सर न हुआ तो यह जर्नलिज्म किस काम का! मन के ऐसे कमजोर क्षण में कोई दूसरी ही नौकरी करने की भी सोची। लेकिन तुरंत मन को डाँटा, समझाया। इतनी बड़ी हार मैं मान नहीं सकता। जवानी में ही यदि शिकस्त खा जाऊँ तो आगे क्या होगा। किस बूते पर मुकाबला करूँगा!

कलकत्ता छोड़कर चल देने की सोची। दिल्ली, बंबई, लंदन। लेकिन भागने की सोचते ही तो भागा नहीं जाया जा सकता। विलायत जाने के लिए काफी रुपए चाहिए। वह पूंजी अपनी टेंट में थी नहीं। और फिर विलायत जाकर करता भी क्या? वहाँ किरानीगिरी या बस कंडक्टरी करके एंटोनी साहब बनने का शौक मुझे कभी नहीं था। अपने देश के कुछ अखबारों का कामधाम लेकर विलायत जाने की सूझ मन में झाँक गई थी। उसके लिए भी तो देश में काफी चक्कर काटने की जरूरत थी। मेरे लिए यह भी मुमकिन न हुआ। रासबिहारी एवेन्यु डाकघर में मेम साहब के कुछ रुपए थे। मेरी खातिर इसी बीच उसमें दो-एक बार हाथ लग चुका था। लाचारी उधर फिर हाथ बढ़ाने की बात कैसी तो लगी।

दो-एक बार निहायत वाहियात जैसे ख्याल भी दिमाग में आए। सोचा, मेम साहब को बताए बिना ही एक दिन जहाँ कहीं भी चल दूँ। जवानी में हर संजीदा जवान और युवतियाँ प्रेम में पड़ जाते हैं। उस प्रेम को ही जकड़े कै जने रह सकते हैं?

माना, मुझसे भी न बना तो क्या हुआ? मेम साहब दो-चार दिन

रख लो।

लगभग पंद्रह दिन बाद मैं लौटा। मुझे देखकर मेम साहब तो चौंक उठी—हाय राम, यह कैसी दशा हो गई है तुम्हारी !

—दशा क्या !

—तुम्हारी तन्दुरुस्ती कैसी हो गई ?

—असुविधा से, अनियम से सेहत खराब ही होगी, इसमें ताज्जुब की कौन-सी बात है ? दो-चार दिन में सब ठीक हो जायगा।

उस दिन तो वह और कुछ नहीं बोली। दूसरे दिन एक बोतल टानिक लेकर हाजिर हो गई। मेरे लिए हुक्म हुआ, दोनों वक्त दो-दो चम्मच पिया करना। भूल मत जाना। और हाँ, यह जो घंटे-घंटे चाय पीते हो, इसे बन्द करो तो।

—चाय पीना बन्द कर दूँ ?

—लगता है, यह सुनकर तुम आसमान से गिर पड़े !

—लगभग। असल में सफल रिपोर्टर ह्विस्की और असफल रिपोर्टर चाय पर ही जिंदा रहते हैं। तो चाय छोड़ कर अब ह्विस्की पर उतरूँ ?

—और क्या ? नहीं तो मेरे नसीब में आग कैसे लगाओगे ?

मैं कायदा-कानून से परे, बाधा-बंधनहीन पद्मा नदी की तरह मजे में जीवन बिता रहा था। लापरवाही का जीवन बड़ा अच्छा लगता था। लेकिन इस औरत ने आकर सब बंटाढार कर दिया। मुझे लगभग भला आदमी बना डाला। सबसे बड़ी बात कि इसने मेरी आँखों में, मेरे प्राणों में एक सुंदर और शांत घर-गिरस्ती का आकर्षक सपना आँक दिया।

बारह

बहुत-बहुत दिनों तक बहुतों को मक्खन लगाने के बाद भी जब कलकत्ते की किसी पत्र-पत्रिका में कोई नौकरी नहीं जुटा पाया, तो एक्सप्रेस और क्रानिकल की वह मामूली और अस्थायी नौकरी ही बड़ी अच्छी लगी। मगर कब तक ? मेम साहब के प्रति अपने भावी जीवन के बारे में कोई दुविधा नहीं थी। लेकिन अपने काम-काज की यह डांवाडोल स्थिति मुझे बेचैन करने लगी।

रोज के रिपोर्टिंग के अलावा लेख, फीचर आदि का लिखना ठीक ही चल रहा था। वे रचनाएँ कभी इस, कभी उस पत्र-पत्रिका में छप भी रही थीं। कोई-कोई रचना वापस भी आ जाती। कभी-कभी दस-पन्द्रह-बीस रुपए का मनीआर्डर या चेक भी मिल जाता था। बेजा नहीं लग रहा था। मगर फेरीवाला संवाददाता होकर तमाम जिंदगी तो नहीं काटी जा सकती! ऐसी डांवाडोल हालत में मेम साहब को तो घसीट कर नहीं ला सकता! इधर मेरे बगल से निकल कर बहुतेरे छोरे-छोकरों ने गली-कूचे की राह से होकर जीवन के रेड-रोड को पकड़ लिया। खुद को बड़ा निकम्मा, बड़ा निठल्लू लगने लगा।

मेम साहब से मैं कुछ भी नहीं कहता था। अपने ही मन में बहुत-बहुत सोचा करता। एक बार जी में आया, भाड़ में जाय यह जर्नलिज्म! खाना-कपड़ा ही मयस्सर न हुआ तो यह जर्नलिज्म किस काम का! मन के ऐसे कमजोर क्षण में कोई दूसरी ही नौकरी करने को भी सोची। लेकिन तुरंत मन को डाँटा, समझाया। इतनी बड़ी हार मैं मान नहीं सकता। जवानी में ही यदि शिकस्त खा जाऊँ तो आगे क्या होगा। किस बूते पर मुकाबला करूँगा!

कलकत्ता छोड़कर चल देने को सोची। दिल्ली, बंबई, लंदन। लेकिन भागने की सोचते ही तो भागा नहीं जाया जा सकता। विलायत जाने के लिए काफी रुपए चाहिए। वह पूंजी अपनी टेंट में थी नहीं। और फिर विलायत जाकर करता भी क्या? वहाँ किरानीगिरी या बस कंडक्टरी करके एंटोनी साहब बनने का शौक मुझे कभी नहीं था। अपने देश के कुछ अखबारों का कामधाम लेकर विलायत जाने की सूझ मन में झाँक गई थी। उसके लिए भी तो देश में काफी चक्कर काटने की जरूरत थी। मेरे लिए यह भी मुमकिन न हुआ। रासबिहारी एवेन्यु डाकघर में मेम साहब के कुछ रुपए थे। मेरी खातिर इसी बीच उसमें दो-एक बार हाथ लग चुका था। लाचारी उधर फिर हाथ बढ़ाने की बात कैसी तो लगी।

दो-एक बार निहायत वाहियात जैसे ख्याल भी दिमाग में आए। सोचा, मेम साहब को बताए बिना ही एक दिन जहाँ कहीं भी चल दूँ। जवानी में हर संजीदा जवान और युवतियाँ प्रेम में पड़ जाते हैं। उस प्रेम को ही जकड़े कै जने रह सकते हैं?

माना, मुझसे भी न बना तो क्या हुआ? मेम साहब दो-चार दिन

रोएगी-पीटेगी, दो-एक शाम खाएगी-पिएगी नहीं। कुछ लोग कुछ दिन तक मखौल उड़ायेंगे, कुछ लोग भला-बुरा कहेंगे। फिर? फिर आपसे आप सब ठीक हो जायगा। अमरीका से लौटे हुए विकास विभाग के फिशरी एक्सपर्ट सुबोध बाबू मेम साहब को जरूर ही नापसंद नहीं करेंगे। एक दिन किसी शुभ घड़ी, मंगल-मुहूर्त में बूढ़े सज्जाद हुसैन की शहनाई बज उठेगी और सुबोध बाबू दुलहा बनकर पहुँच ही जाएँगे। जरा देर में मेम साहब वधू बनकर केले के पेड़ के नीचे जाकर उनके गले में माला डाल देगी। पुरोहित मंत्र पढ़कर संपत्ति ट्रांसफर पर पक्की मुहर मार देंगे। उसके बाद कोहबर। जरा-सी हँसी, थोड़ा-सा मजाक। लोगों की आँख बचाकर थोड़ा-सा परस, हलकी-सी अनुभूति! तन-मन में बिजली की हलकी-सी लहर दौड़ पड़ेगी शायद।

सर मेरा दुखने लगा। सम्हाल लिया। दूसरे दिन के लिए खास वैसी फिक्र नहीं हुई। लेकिन उसके बाद वाले दिन। फूल-शय्या! सोचते ही दिमाग चकरा गया। रजनीगंधा से सजाए फोम्ड रबर की गद्दी पर मेम साहब के एकछत्र अधिपति के रूप में सुबोध। तिल-तिल करके, धीरे-धीरे जो कली चौबीस-पचीस वसंतों में खिलकर मेरी मानस-प्रतिमा मेम साहब हुई—जिसके मन की बात, देह की उष्णता, कलेजे की धड़कन को सिर्फ मैंने जाना, मैंने पाया, मैंने ही अनुभव किया, उस मेम साहब के बदन में सुबोध का स्पर्श! गैर मुमकिन। जिस मेम साहब ने अपने जीवन के सर्वस्व का नैवेद्य सजाकर मुझे सुखी और सार्थक बनाना चाहा है, उसे यों छोड़कर चुपचाप चल दूँगा? नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता।

तो?

तो क्या करूँ? सोचकर कोई कूल-किनारा नहीं पा रहा था। इतना तो मन ही मन तै कर ही लिया था कि अब कलकत्ते में ज्यादा दिन नहीं रहना। अखबार का रिपोर्टर होने के नाते बंगाल के बहुतेरे मशहूर लब्ध-प्रतिष्ठ लोगों से परिचय होने का दुर्भाग्य मुझे हुआ था।

दुर्भाग्य!

हाँ, दुर्भाग्य। दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहूँ? कलकत्ते के मैदान में मानूमेंट के नीचे लाखों लाख लोग उनका भाषण सुनते हैं, तालियाँ बजाते हैं, गले में माला डालते हैं। शुरू-शुरू उनके पास जाकर अपने को धन्य मानता था। शिक्षा और संस्कृति की पताका फहराकर जो लोग सोनेट

हॉल, युनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट, महाबोधि सोसाइटी के हॉल को घुमड़ा डालते थे, उनके प्रति वास्तव में श्रद्धा नहीं कर सका। साढ़े तीन करोड़ बंगाली स्त्री-पुरुष-बच्चे जिनका मुँह ताक रहे हैं, जिनके भाषण हम रोज अखबारों में छापा करते हैं, उनका असली स्वरूप प्रकट होने से मुझे कितना दुःख हुआ, कैसी चोट पहुँची, इसे जाहिर करने की भाषा मेरे पास नहीं है। किन-किन कारणों से मैं इन्हें श्रद्धा नहीं कर सका, वह लिखने लायक नहीं है। विद्यासागर की बंगला भाषा में इन लोगों की कहानी लिखने से विद्यासागर की स्मृति का अपमान होगा, बंगला भाषा का दुरुपयोग करना होगा। लेकिन यदि इन महापुरुषों के बारे में लिख पाता, वह क्षमता मुझमें होती, तो बंगाल के कुछ लोग अवश्य ही बच जाते।

तुम सोच रही हो, मैं बकवास कर रहा हूँ। यकीन मानो दौला भाभी, बकवास मैं कतई नहीं कर रहा हूँ। अंगरेजी में जिसे ट्रैडिशन कहते हैं, बंगालियों में वह तो है। शिक्षा, दीक्षा, आदर्श और देशप्रेम की कमी बंगाल में नहीं है। गांव-घर की गरीब औरतें आज भी तो अपना पेट काट कर अतिथियों की सेवा करने में कंजूसी नहीं करतीं। इस उदार बंगाल ने अपनी छाती फैला कर देश भर के लोगों के लिए आसन बिछा दिया है। भारतवर्ष के कोने-कोने से लोग इस बंगाल में आए हैं। लेकिन कहां, और किसी भी प्रदेश के लोगों ने तो इस तरह से तमाम देश के लोगों को लेकर बसने-बसाने की उदारता नहीं दिखाई है। राजनीति की बात छोड़ ही देता हूँ। शिक्षा-दीक्षा, शिल्प-संगीत में बंगालियों की उदारता की तुलना नहीं। पुराने इतिहास को उलटने की जरूरत नहीं। आज के ही इतिहास से बानगी लें। प्रमथेश बरुआ, कुंदनलाल सहगल, लीला देसाई—बंगाली नहीं हैं। लेकिन बंगाल के एक-एक आदमी के हृदय में इन लोगों का आसन सदा के लिए रहेगा। बड़े गुलाम अली का गाना सुनने के लिए बंगाल के ही लोग सारी रात रास्ते के फुटपाथ पर बैठे रहते हैं। टी० आब, अप्पा राव, मेवालाल, लाला अमरनाथ या मुश्ताक अली को बंगालियों ने जो स्नेह-आदर दिया है, क्या उसकी तुलना हो सकती है? नहीं हो सकती। होगी भी नहीं।

इन सारी खूबियों के होते हुए भी आज बंगाली मरने पर क्यों हैं? बंगालियों के घर-घर में हाहाकार क्यों है? रुलाई? आज, जब सारे देश के लोग नए प्राण के स्पंदन से मतवाले हो रहे हैं, वैसे में बंगालियों की ऐसी दुर्गत क्यों? साढ़े तीन करोड़ बंगालियों के होंठों की हँसी किसने

? यह सारी जाति सर्वहारा क्यों हो गई ?
ले इन सब बातों के लिए मुकद्दर को दोष देता था। किशोरावस्था
वानी की संधिवेला में यह उम्मीद करता था कि मानूमेंट के नीचे
ों को माला पहनाने से, उनके भाषण पर तालियाँ पीटने से बंगा-
के सारे रोगों की दवा मिलेगी। अखबार की रिपोर्टरी करते समय
आशा लिए इनके पास गया था। लेकिन हे राम, मन ही मन वह
लगी कि कहने की नहीं।

निजी जीवन की सफलता-विफलता बेशक बड़ी चीज है। लेकिन पत्र
रिता करते हुए समाज-जीवन से अपने आपको अलग रखना असंभ
। जभी तो समाज की सबसे ऊँचे स्तर में क्षयरोग देखकर मैं चिहुंक
ठा था। इसीलिए कलकत्ते का जीवन मुझे और भी कड़वा लगने लगा।

इन्हीं सब बातों से मन में उथल-पुथल थी। जबान से कुछ जाहिर
नहीं कर रहा था। मेरे दोस्त-अहबाब, सहयोगी कुछ जान नहीं पा रहे
थे। मेरे मन के अंदर चिंताओं का कैसा महाभारत छिड़ा है, यह कोई
नहीं जान सका। लेकिन मैं मेम साहब को धोखा नहीं दे सका।

उस दिन हम दोनों नेशनल लाइब्रेरी गए थे। कुछ नोट लिए, फिर
एक पेड़ तले आकर बैठे। मैं नजर घुमाकर जाने क्या देख रहा था। मेम
साहब ने कहा, अजी सुनो, थोड़ी-सी मूंगफली खरीद कर लाओगे ?

मैं गेट से बाहर गया। दो आने की मूंगफली और दो मैगनोलिया
आइसक्रीम खरीद लाया। खाना खत्म हो गया। मेम साहब तब भी
नमक-मिर्च खाकर जीभ से मजे की आवाज निकाल रही थी। यह नमक-
मिर्च खाना उसका कब खत्म हुआ, कब उसने मुझसे रूमाल माँगा, मैंने
ख्याल नहीं किया।

मेम साहब ने मुझे एक झटका देकर कहा, अजी ओ, जरा रूमाल
दो न !

मैंने रूमाल दिया। मुँह-हाथ पोंछकर उसने रूमाल मुझे वापस किया
यह लो !

रूमाल को जेब में रखते-रखते मैंने पूछा, और तुम्हारा रूमाल क
हो गया ?

—सर्वमंगला का प्रसाद बाँध कर तुमको दिया नहीं
—ओ ! हाँ।

मेम साहब ने पूछा, एक बात बताओगे ?

—क्यों नहीं बताऊँगा ?

—ग्राजकल इतना सोच क्या रहे हो ?

—कहाँ, कुछ तो नही ।

वह जरा हँसी । बोली, मेरा बदन छूकर कह सकते हो, तुम कुछ सोच नहीं रहे हो ?

बात पूरी होते न होते ही उसने मेरे हाथ को खींच कर अपनी छाती पर रखते हुए कहा, कहो ?

मैंने हाथ हटा लिया ।—क्या बचपना कर रही हो !

मेम साहब जरा हँसी । कुछ सोचा । शायद मेरी बात से उसे तक-लीफ हुई । उसकी घनी काली ग्राँखें मानो सावन की घटा-सी भारी हो गईं । एक नजर देख कर मैंने ग्राँखें फेर ली ।

मेम साहब ने लंबा निःश्वास छोड़ा । मैंने फिर उधर नजर घुमाकर पूछा, इतना सोच क्या रही हो ?

—जानने से तुम्हें फायदा ?

मैंने सोचा था, ग्रासानी से मैं मेम साहब को टाल जाऊँगा । कुछ कहूँगा नही । लेकिन गहरे प्यार से उसकी निगाहे इतनी निर्मल हो गई थीं कि मेरे लिए भी मन की गहराई में कुछ छिपा रखना मुमकिन न था। वह खूब समझ गई थी कि मेरा मन जरा चंचल है । लेकिन चंचल क्यों है, यह जाने बिना उसे दुःख था । स्वाभाविक भी था । मैंने यह समझा, फिर भी उसे सच-सच बताने में मुझे झिझक हुई ।

दो-चार मिनट हम दोनों चुप रहे ।

मेम साहब ने ग्रावाज दी, सुनो !

—बोलो।

—ग्राजकल क्या तुम ऐसा कुछ सोच रहे हो, जो मुझको नहीं बताया जा सकता है ?

—पागल हो गई हो तुम !

—तो फिर कहते क्यों नही ?

नहीं चाहते हुए भी एक लंबा निःश्वास निकल पड़ा; कहा, बताऊँ भी क्या ? नया कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ । ग्रपने काम-काज की सोचता हूँ । सोचता हूँ, ग्राखिर कितने दिनों तक यों डाँवाडोल रहूँगा ।

मेम साहब ने मेरी बात ही उड़ा दी । बोली, इसमें इस कदर सोचने का क्या है ? जीवन में कोई कुछ पहले, कोई कुछ देर से खड़ा होता है ।

दो साल वाद स्थिर होगे, तो क्या बिगड़ जायगा।

—सोचने की वात नहीं है ? फेरीवाले की तरह हाँक लगाकर कमा...
व अच्छा नहीं लगता। आखिर, उम्र भी तो हो रही है !

मेम साहव ने झट मुझे नजदीक खींच लिया। दोनों हाथों से मेरे
मुखड़े को उठा कर वोली, राम-राम, अपने को इतना छोटा क्यों समझते
हो ?

—भले आदमी की तरह कमाई करता होता तो छोटा नहीं सम-
झता।

—तुम्हें क्या रुपए की जरूरत है ?

—नहीं-नहीं। रुपए की क्या जरूरत होगी ?

—कहो भी। मैं तो मर नहीं गई ?

मेम साहव मेरी वात से बड़ी अकुला गई। जानना चाहा, और क्या
सोच रहे हो ?

—कहूँ ?

—जरूर कहो।

—सोच रहा हूँ, अपने ऐसे डाँवाडोल जीवन में तुम्हें क्यों खींच
लाया ? आधा बेकार एक जर्नलिस्ट की दुनिया में लाकर तुम्हारी जिन्दगी
को क्यों बरवाद करूँ, यही सोच रहा हूँ।

मेम साहब नाराज हो गई, वल्लाह ! ताली बजाऊँ ?

—मजाक क्यों कर रही हो ?

—तुम्हारी वात सुनकर अवाक् हुए विना नहीं रहा जाता। तुम्हा...
पास रुपए नहीं हैं, इसलिए तुम्हारे पास मुझे ठाँव नहीं मिलेगी ? मु...
तुम ऐसी छोटी, इतनी नीच समझते हो ?

—पगली कहीं की ! अपने घर लाकर तुम्हें अगर मैं सुख, शा...
मर्यादा ही न दे पाया तो...

उसने और आगे नहीं बढ़ने दिया। कहा, तुम दो-चार सौ ...
कमाओगे, जभी मुझे शान्ति मिलेगी ? रुपया रहने से ही सब सुखी...
हैं ?

—नहीं-नहीं ! वैसा क्यों होगा। लेकिन भली तरह से जीने के...
कुछ तो चाहिए ?

—मेरी या मेरी गिरस्ती की तुम्हें फिक्र नहीं करनी। तुम
अपना काम करते जाओ तो।

बातें करते-करते वेला ढलने लगी। सूरज धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा, छाँह लम्बी होने लगी। बलवेडियर का खुला प्रांगण विदा होती हुई किरणों की मीठी आभा से भर गया।

मेम साहब ने मेरे कन्धे पर सर रक्खा। कहा, अजी ओ, तुम मुझसे यह कहो कि यों फिजूल की बातें न बोलोगे! आज भले ही ईश्वर ने नहीं दिया है, लेकिन एक दिन वे तुम्हें निश्चय ही भरा-पूरा कर देंगे।

—तुम्हें सब कुछ मालूम है, क्यों?

—हजार बार! वेलिंगडन स्क्वायर और मानूमेंट की सभाएँ कवर करके ही तुम्हें अपनी जिन्दगी नहीं बितानी पड़ेगी!

—तो क्या करूँगा?

—क्या नहीं करोगे, यह पूछो। तुम देश-विदेश घूमोगे, कितने बड़े-बड़े लोगों से तुम्हारी जान-पहचान होगी, तुम कितना कुछ लिखोगे....

—फिर?

मेरा गाल दबाकर मेम साहब ने कहा, फिर क्या, सो नहीं कहूँगी। तुमको घमण्ड हो जायगा।

मेम साहब की बकवास से मुझे हँसी आई।—तुम क्या बम्बई जा रही हो?

वह अवाक् होकर बोली, मैं क्यों बम्बई जाने लगी?

—हिन्दी फिल्म की कहानी लिखने के लिए?

—असभ्य कहीं के!

उस समय मैं सिर्फ मोटा-मोटी एक अच्छी-सी नौकरी का सपना देखता था। और? और सोचता था कि दफ्तर से मुझे एक टेलिफोन मिलेगा। मैं दफ्तर की गाड़ी से राइटर्स बिल्डिंग, लाल बाजार जाऊँगा, राजनीतिक दलों के कार्यालयों में घूमा करूँगा। चीफ मिनिस्टर के साथ दार्जिलिंग जाऊँगा। राइटर्स बिल्डिंग के सेक्रेटरी, डिप्टी सेक्रेटरी मुझे चाहेंगे, पुलिस कमिश्नर भरी भीड़ में मुझको पहचानेंगे, श्यामपुकुर थाना के ओ० सी० मुझे कटलेट खिलाएँगे।

सपना देखने की भी एक हद है। तभी तो मैं इससे आगे नहीं बढ़ सकता था। आज उन सब दिनों की सोचकर हँसी आती है। मैंने कभी यह सोचा था क्या कि नेहरू-शास्त्री-इन्दिरा के साथ मैं पृथ्वी के पांच महादेशों का चक्कर काटूँगा? कभी कल्पना कर सका था कि मैं हर साल विलायत जाऊँगा? कभी दिमाग में आया भी था कि प्रधान मन्त्री के साथ

विशेष फौजी विमान से दमदम में उतरूँगा ? राजभवन में ठहरूँगा ? ऐसी और भी बहुत-सी बातें नहीं सोचीं। यह नहीं सोचा कि भारत के सर्वोच्च लीडर लोग मेरे साथ राजनीति पर गुप्त रूप से मशविरा करेंगे, ह्विस्की पीते-पीते ऐम्बेसेडरों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विमर्श करूँगा।

मेम साहब शायद यह सब सोचा करती थी। उसे इन चिन्ताओं का साहस कैसे और कहाँ से मिलता था, मुझे पता नहीं। लेकिन मेरे अँधरिया पाख के दिनों में भी उसने वह उम्मीद नहीं खोई। मैं जब-जब निराशा से टूट पड़ा, जब-जब हार मानकर मैंने लीक बदलनी चाही, उसने तब-तब मुझे उठाया। आशा दी, भरोसा दिया, स्नेह दिया। कभी-कभी शासन भी किया।

—मैं सब कुछ समझता हूँ मेम साहब, लेकिन कलकत्ते के इन चीन्हे-जाने लोगों के दरवाज़े-दरवाजे दया का भिखमँगा होकर अब भटक नहीं सकता।

मेम साहब ने साफ कहा, ऐसी कोई बात है कि तुम्हें कलकत्ते में ही रहना पड़ेगा ! जहाँ काम करके तुम्हारा जी भरे, तुम वहीं जाओ।

एक पल चुप रहकर वह फिर बोली, मैं तो तुम्हें अपने दामन में रहने को नहीं कहती हूँ।

मेम साहब ने एक लक्ष्य बना रक्खा था। वह था, मेरी भलाई करना, मुझे प्रतिष्ठित करना। और उसने प्यार करना चाहा था, प्यार पाना चाहा था।

मध्यवित्त परिवार में किसी कुमारी युवती के लिए ऐसा अजूबा लक्ष्य ठीक करना और उस हिसाब से आगे बढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं। मेम साहब के लिए भी यह आसान नहीं हुआ। बाधा आई, आफतें आईं, प्रलोभन आए। सुबोध बाबू को ही लीजिए, अमरीका से लौटने के बाद जब उन्होंने हाव-भाव से यह जताया कि मेम साहब उन्हें खूब पसंद है, तो घर के लोग काफी दूर तक बढ़ गए थे।

मेम साहब ने क्या कहा, मालूम है ? कहा, मझली दीदी, माँ को जरा समझा देना, रेडीमेड कपड़े देखने में बड़े चटकदार होते हैं, लेकिन ज्यादा दिन टिकते नहीं; उससे तो छींट खरीद कर नाप के मुताबिक अपने हाथों बनाई हुई चीज कहीं अच्छी होती है, कहीं सुन्दर होती है।

मझली-दी इशारे को समझ गई थी। लेकिन मेरे साथ घूमती-फिरती

है, इसकी दबी चर्चा मेम साहब के सगे-संबंधियों में उठी थी। अप्रिय और भद्दी आलोचना भी कभी-कभी होती थी। वह उन सब की परवाह नहीं करती थी।—देखो खोकन-दा, मैं दूध पीती बच्ची नहीं हूँ। थोड़ी बहुत अकल मुझमें भी है। कुछ-कुछ भला-बुरा समझना भी सीखा है।

कुल मिलाकर कलकत्ते का आसमान मेघों से खासा ढँक गया। धीरे-धीरे मेम साहब ने भी समझा, अब और ज्यादा दिन कलकत्ते में रहने से दोनों का दिमाग खराब हो जायगा।

—अजी सुनो, अब सच ही तुम और कहीं जाने का इंतजाम करो। आसपास के कुछ निठल्लू लोगों के प्रेम के मारे जान जाने की नौबत आ रही है।

—मुझे छोड़कर तुम रह सकोगी?

—रह लूंगी। हां, जब हम दोनों मिलेंगे, तब तो कोई हमें आजिज नहीं कर सकेगा।

अपने-सगे किन्हीं को भी कोई खबर नहीं हुई। मैंने धीरे-धीरे दिल्ली जाने की तैयारी शुरू कर दी। चुपके-चुपके कुछ अखबारों के कार्यालयों में जाकर बात-चीत की। आखिर अकस्मात् एक दिन निरे अनजाने इलाके के एक निहायत मामूली-से साप्ताहिक के संपादक ने कहा, दिल्ली में हमें एक संवाददाता की जरूरत है। लेकिन अभी सौ रुपए से ज्यादा नहीं दे पाऊँगा।

कोई परवा नहीं। सौ रुपए ही काफी है।

मैंने कहा, ठीक है। मैं जाऊँगा।

—कब से काम शुरू कीजिएगा?

—आप जब से कहें।

—ऐज अरली ऐज यू कैन गो।

अगले शनिवार की सुबह मेम साहब मुझे कालीघाट ले गईं। पूजा चढ़ाई। प्रसाद और निर्माल्य दिया। कहा, इस निर्माल्य को सदा साथ रखना।

शाम को हम दोनों डायमंड हारबर की ओर गए। दोनों में से कोई भी ज्यादा बोल नहीं सके।

मेम साहब ने कहा, मेरा मन कह रहा है, तुम्हारा भला ही होगा। मेरे प्रेम में अगर बल होगा, तो तुम्हारा हरगिज बुरा नहीं होगा।

मैंने इतना ही कहा, तुम्हारा दिया हुआ निर्माल्य और तुम्हारा प्रेम

लेकर ही तो जा रहा हूँ। मेरा और है क्या, कहो ?

साँझ का धुंधलका उतरने लगा। मैं उठ खड़ा हुआ। कहा, चलो, चलें।

वह उठी नहीं। बैठी ही रही। पुकारा, सुनो।

—बोलो।

—पास आओ। कानों में कहूँगी।

उसने कानों में क्या कहा, जानती हो ? कहा, मुझे जरा गले लगकर दुलार लोगे ?

धुंधला अँधेरा जरा और गाढ़ा हुआ। मैंने दोनों हाथों मेम साहब को छाती से लगा लिया। जी से उसे दुलारा।

उसके बाद उसने माथे पर आँचल रखकर मुझे प्रणाम किया—आशीर्वाद दो, कि मैं तुम्हें सुखी कर सकूँ।

युधिष्ठिर ने राज्य और द्रौपदी को दाँव पर रख कर पासा खेला था। मेरे पास राज्य तो नहीं था। इसलिए अपनी जिंदगी और मेम साहब की मुहब्बत का दाँव रखकर कर्म-जीवन का पासा खेलने के लिए मैं युधिष्ठिर की याद से लिपटे हुए पुराने इंद्रप्रस्थ, आज की दिल्ली को चल दिया।

तेरह

कुछ पेशेवर अंधे राजनीतिज्ञों की शिकायत है, बंगाली घर छोड़कर बाहर निकलना नहीं चाहते। यह शिकायत सरासर झूठी है। मोहेन-जोदड़ो या हरप्पा के जमाने की मैं नहीं जानता। लेकिन हाँ, अंग्रेजी हुकूमत के प्रथम और मध्य युग में लाखों लाख बंगाली सारे उत्तर भारत में फैल गए थे। रोजी-रोजगार के लिए कहीं भी जाने में बंगाली नहीं झिझके। सुदूर रावलपिंडी, पेशावर, शिमला तक ये गए, जाकर वहाँ बसे, नाटक खेले, कालीबाड़ी बनाई।

इस जाने के पीछे एक कारण था। अंग्रेजी सीखकर सरकारी दफ्तरों में 'बाबू' बनने की योग्यता सबसे पहले बंगालियों ने ही हासिल की। हर कोई रानी विक्टोरिया का नियुक्ति-पत्र लेकर हवड़ा स्टेशन में पंजाब मेल पर सवार होते थे, ऐसी बात नहीं थी। हाँ, रावलपिंडी मिलिटरी एकाउंट्स के किसी मौसा या फूफा के बुलावे पर बहुतों ने बंगाल से

बोरिया-बधना बाँधा था !

आगे चलकर जब बंगाली छोरे-छोकरों ने बम-पटाखे फेंक कर अंग्रेजों की दुम में आग लगाने का काम शुरू किया, तो नौकरी के बाजार में बंगालियों की कीमत घटने लगी। इस बीच भारतवर्ष में तमाम अंग्रेजी शिक्षा फैली। सरकारी ऑफिसों के लिए बाबू जुटाने के लिए अंग्रेजों को सिर्फ बंगाल का मुँह ताकने की जरूरत नहीं रही। बंगालियों के बंगाल से बाहर जाने के प्रवाह में भाटा पड़ गया।

जिंदगी की लड़ाई में धीरे-धीरे बंगालियों की हार जितनी ही जाहिर होने लगी, झूठे आत्मसम्मान का बोध उन पर उतना ही हावी होता गया। राजनीतिक और आर्थिक साजिश के साथ-साथ इस आत्मसम्मान-बोध ने बंगालियों को प्रायः बंगाल में ही बंदी बना लिया। बंगाल का नया युवा-समाज साजिश के इस व्यूह को तोड़ सकता था, अपने भविष्य को बना सकता था और अदृष्ट के अभिशाप को अस्वीकार कर सकता था। लेकिन दुःख की बात है कि ऐसा न हो सका। मोहन बगान-ईस्ट बंगाल, सुचित्रा-उत्तम, संध्या मुखर्जी-श्यामल मित्र, विष्णु दे-सुधीन दत्त, सत्यजित-तपन सिंह से लेकर बहुत कुछ की बदौलत बेकार बंगाली भी जोश और हलचल में जीवन बिताने लगे। इस जोश, इस हलचल का मोह बेशक है, लेकिन इसकी सार्थकता कितनी है, यह नहीं जानता।

कलकत्ते में अखबार की रिपोर्टरी करने के सिलसिले बहुतेरे बड़े लोगों का उपदेश, परामर्श मुझे मिला, प्रेरणा नहीं मिली। अपनी गद्दी को, अपने स्वार्थ को बरकरार रखते हुए वे लोग सिर्फ खाली हाथ, खाली पेट गरीब बंगालियों की तालियाँ ही चाहते हैं। साढे तीन करोड़ बंगालियों को पंगु बनाकर साढ़े तीन दर्जन नेता खुशी में मशगूल हैं।

बंगाल में उदार और महान् व्यक्तियों की कमी नहीं है। हर टोले-मुहल्ले में, गाँव-शहर में बहुतेरे उदार चेता बंगाली आज भी हैं। लेकिन ऐसे सारे के सारे लोग अन्याय, अविचार और बुराई के वन में खो गए हैं।

कलकत्ते के ऐसे अजीब परिवेश में रहते-रहते मेरा जी कड़वा हो गया था। आसपास के असंख्य लोगों के प्रति लापरवाही और अपमान बरदाश्त से बाहर हो गया। सबके अनजाने अनदेखे मेरा मन बगावत करना चाहता, पर मैं खोज कर भी कोई रास्ता नहीं पाता था। एक कदम आगे बढ़ता तो तीन कदम पीछे हट जाता था। समाज, संस्कार और परिवेश से मुक्त होकर निकल पड़ने में डर लगता था। घबराता था।

मेरे मन में इस तरह का द्वंद्व चल रहा है, यह बात मैं मेम साहब को भी नहीं बताता। लेकिन मैं अंदर ही अंदर चंचल हो उठा था। इसीलिए तो नियति के घरौंदे में मेम साहब के साथ खेलते हुए जिस दिन मैं सचमुच ही भविष्य के अँधेरे में कूद पड़ा, उस दिन एक पल के लिए भी पलट कर पीछे की ओर नहीं ताका। मन में धू-धू करके आग जल उठी थी। शायद हो कि प्रतिहिंसा ने मुझे और भी कठिन-कठोर बना दिया था।

और ?

और मेम साहब को अब नजरों से दूर नहीं रख पा रहा था। जीवन-संग्राम में पल-पल, तिल-तिल जलते रहने के कारण साँझ के बाद रात के अँधेरे में मेम साहब के कोमल स्पर्श के लिए सचमुच ही मन बड़ा अकुलाया करता था। जीवन-संग्राम कठोर से और कठोर हो सकता है, उसमें कभी जीत होगी, कभी हार। सो हो। लेकिन सूरज डूबने के बाद जीवन की सारी हलचलों से बहुत दूर मेरा मन मानसलोक के सूने सैकत में मेम साहब के हृदय में मुक्ति माँगा करता था।

सपना देखता कि मैं घर लौट आया हूँ। अन्दर जाते न जाते बिजली की बत्ती बुताकर एकाएक मेम साहब को जरा दुलार कर उसके अंग-अंग में प्यार की लहर जगा दी है। दोनों बाँहों में उसे बाँधकर अपने मन की सारी दीनता दूर कर दी है, दिन भर की सारी ग्लानि पोंछ डाली है।

मेम साहब मेरी बाँहों की कैद से छुटकारे की कोई कोशिश नहीं करती है, मगर कहती है, हुँह, छोड़ो न।

उन्हीं दो-एक क्षणों के अंधकार में मैं मेम साहब के प्रेम के जेनरेटर से अपने मन के सारे बल्ब जला लेता हूँ।

उसके बाद, खींचकर उसे दीवान पर गिराता। खुद भी हड़बड़ा कर उस पर गिर पड़ता। अवाक् विस्मय से मैंने उसकी आँखों की तरफ ताकता रहता। मेम साहब भी अपलक मेरी ओर ताकती रहती। इतनी निकटता से एक दूसरे को पाने के नाते हम दोनों ही की आँखों में सरूर छा जाता। उस नशे में हम दोनों ने शायद कुछ पागलपन भी करते।

शायद हो कि कहता, जानती हो मेम साहब, तुम्हारी उन आँखों को देखकर जब मुझ पर नशा-सा सवार हो जाता है, संयम-सब्र खोकर मैं नशाखोरी-सा, पागलपन-सा करने लगता हूँ तो मुझे जिगर मुरादाबादी का एक शेर याद आ जाता है।

मेम साहब अब करवट लेकर नहीं लेटती। चित्त लेटी रहती और

दोनों हाथों मेरा गला पकड़ कर कहती, कहो न, कौन-सा शेर याद आता है।

मैं कहता, तेरी आंखों का कुछ कुसूर नहीं
मुझको खराब होना था !

आँखो की पुतलियों को नचाकर निगाहों को ढरकाती सी वह कहती, यह बात हजार बार सही है ! लेकिन मैं तुम्हें क्यों खराब करने लगी ?

मैं कानों में फुसफुसाकर कहता, मेरा फिर खराब होने को जी चाह रहा है।

वह उछल कर झट उठ बैठती। मेरे गालों पर मीठी-सी एक चपत लगाकर कहती, बदतमीज कहीं के !

न जानें और कितना क्या सोचा करता। सोचते-सोचते पागल हो जाने की नौबत आती। हजारों काम-काज, सोच-फिकर के बावजूद मन के परदे पर हर समय मेम साहब की तसवीर उभर आती। दिल्ली पहुंचते ही सोच लिया, करें या मरें—मुझे अपनी तकदीर के खिलाफ लड़कर जिंदगी में कुछ करके ही रहना है। और तब ? कर्म-जीवन में अपनी प्रतिष्ठा के बाद अपने जीवन में मेम साहब को प्रतिष्ठित करना है।

दोला भाभी, मैं न तो शिवनाथ शास्त्री हूं, न ही विद्यासागर कि आत्मकथा लिखूं। लेकिन मेरी इस बात का यकीन मानो कि दिल्ली में कदम रखते ही मैं बिलकुल बदल गया था। पहली बार जब दिल्ली के स्टेशन पर उतरा तो मामूली से मामूली भी कोई आदमी मेरे स्वागत के लिए वहां नहीं था। राजधानी जैसे इतने बड़े शहर में मैंने ढूंढ़कर भी किसी मित्र या परिचित को नहीं पाया। कहीं थोड़ी-सी जगह, थोड़ी-सी किसी की मदद की भी उम्मीद नहीं कर सका। दिल्ली की उस सिद्दत की गर्मी और कड़ाके के जाड़े में मैं किस कदर दर-दर भटकता फिरा, यह लिखने में आज भी मेरा बदन सिहर उठता है। लेकिन इतने पर भी मैंने सिर नीचा नहीं किया।

एक ही साल के अन्दर मैंने रात को दिन कर लिया। सिर्फ मन की दृढ़ता और निष्ठा से मैंने अदृष्ट का रुख पलट दिया। पार्लियामेंट हाउस या साउथ ब्लाक के एक्सटर्नल अफेयर्स मिनिस्ट्री से निकलते हुए भेंट हो जाने पर खुद प्रधान मंत्री मुझसे पूछते, हाउ आर यू ?

मैं कहता, फाइन, थैंक यू सर।

तुम सोच रही होगी, मैं डींग हांक रहा हूं। लेकिन नहीं, सच कह

रहा हूँ, ऐसा ही होता था। एक दिन अपने उस अख्यात साप्ताहिक की एक रचना दिखाने के लिए मैं तीन मूर्ति गया था। रचना देखने के बाद प्रधान मंत्री बोले, आर यू न्यू टू देल्ही ?

—येस सर!

—कब आए हो ?

—चारेक महीने हुए।

उसके बाद जब उन्होंने यह सुना कि मैं उस मामूली-से साप्ताहिक की सौ रुपये की नौकरी लेकर दिल्ली आया हूँ तो बोले, आर यू टेलिंग ए लाई ? झूठ बोल रहे हो ?

—जी नहीं।

—इस तनखा पर दिल्ली में टिक सकोगे ?

—सर्टेनली सर!

अंत में प्रधान मंत्री ने कहा, गुड लक टु यू। सी मी फ्रॉम टाइम टु टाइम।

देखते ही देखते जानें कितने लोगों से परिचय हुआ, घनिष्ठता हुई। कितनों का स्नेह पाया। कितने ही ऑफिसर, संसद सदस्य, मिनिस्टर से जान-पहचान हुई। नित नया समाचार पाने लगा। और, आखिर साप्ताहिक से दैनिक में नौकरी पा गया।

मेरे दिल्ली आने के कुछ ही महीने बाद मेम साहब ने एक बार दिल्ली आना चाहा था। मैंने मना किया था, अभी नहीं। अभी एक क्षण भी नष्ट करना मुनासिब नहीं। मुझे जरा खड़ा हो लेने दो, जरा साँस लेने का वक्त दो। उसके बाद आना।

सोच सकती हो तुम, जिस मेम साहब का परस पाने की आशा में मैं प्रायः कंगाल-सा घूमता रहा, उसी मेम साहब को मैंने दिल्ली आने से मना कर दिया। मेम साहब नाराज नहीं हुई। उसने मेरी बात समझी। उसका खत मिला—

अजी ओ, किस अनोखे ढंग से तुम मेरी जिंदगी में आए, यह सोचने पर भी अचंभा होता है। कालेज युनिवर्सिटी में पढ़ते समय, सोशल रीयुनियन या रवींद्र जयंती, वसंतोत्सव पर बहुतेरे लड़कों से परिचय हुआ। कोई अच्छा लगा, कोई अच्छा नहीं लगा। दो-एक ने शायद मेरे लिए सपना भी देखा। आशुतोष भवन के उस कोने वाले कमरे से गाने का रिहर्सल करके घर लौटते वक्त मेरा दायाँ हाथ दबाकर मदन चौधरी ने

अचानक प्यार जताया था। ब्याह भी करना चाहा था। तालतल्ला मोड़ के वह जो भाव-भोले देशप्रेमी हैं न, एक दिन उन हजरत ने भी अपने को सौंपना चाहा था।

मैं पल भर के लिए चौंकी, लेकिन ठिठकी नहीं। फिर जिस दिन मेरी दुनिया में तुम्हारा प्रवेश हुआ, उस दिन जानें किसने तो मेरी सारी शक्ति छीन ली। जानें किसने तो चुपके से मेरे कानों में कहा, यही है वह!

तुम्हें तो पता है, मैंने और किसी भी तरफ उलट कर नहीं देखा है। केवल तुम्हारी ही ओर निहार रही हूँ। तुम्हें अपने जीवन-देवता के आसन पर बिठाकर मैंने पूजा है, अपने सर्वस्व की अंजलि चढ़ाई है। मंत्र-पाठ करके, सब लोगों के सामने हम लोगों का ब्याह जरूर नहीं हुआ है, मगर मैं तो यही जानती हूँ, तुम्हीं मेरे स्वामी हो, तुम्हीं मेरी भावी संतान के पिता हो।

मेम साहब बोलती ज्यादा नहीं थी, लेकिन बहुत ही अच्छी और बड़ी-बड़ी चिट्ठियां लिख सकती थी। यह चिट्ठी भी बहुत बड़ी थी। पूरी चिट्ठी तुम्हें लिखने की जरूरत नहीं। हाँ, अंत में क्या लिखा था, मालूम है? लिखा था...."तुम इस तरह से मुझे चौंका दोगे, यह मैं नहीं जानती थी। सोचा था, किसी कदर किसी अखबार में कोई नौकरी जुटा लोगे। लेकिन इन्हीं कुछ महीनों में दिल्ली जैसी नई और अनजान जगह में तुम इस तरह से बड़े-बड़े रथी-महारथियों के बीच अपने को जमा लोगे, यकीन मानो, यह कल्पना में नहीं कर सकी थी। तुम्हारे अंदर ऐसी चिनगारी छुपी हुई थी, यह पता न था।....

"जो भी हो, तुम्हारे गर्व से मेरा सारा कलेजा भर गया है। लगता है, मुझसे सुखी दूसरी कोई स्त्री नहीं हो सकेगी। कसम, मैं बहुत ही खुश हूँ, बहुत। तुम्हारी इस कामयाबी के लिए मैं तुम्हें एक बहुत बड़ा इनाम दूँगी। पता है, क्या दूँगी? जो माँगोगे, वही दूँगी। समझ गए? अब कोई एतराज नहीं करूँगी। और आपत्ति करूँ भी तो तुम क्यों मानोगे?"

"तुम सोच सकती हो दोला भाभी, मेम साहब की वह चिट्ठी पढ़कर मेरी क्या प्रतिक्रिया हुई। पहले तो सोचा, दो-एक दिन के लिए कलकत्ता हो आऊँ। मेम साहब का इनाम ले आऊँ। लेकिन काम-काज और पैसा-कौड़ी का लेखा-जोखा लगाने से जाना न हो सका। लेकिन मन ही मन

सोच कर मुझे शांति मिली कि मुझे वंचित करके कंजूस की नाई
वष्य के लिए बहुत सारा ऐश्वर्य बचाए रखने का मेम साहब को अफ-
स हुआ है। मैं कोई हजार मील दूर भाग आया था। मेम साहब वह
नेह, वह दुलार, वह हँसी-मजाक, कुछ का भी आनंद नहीं ले पा रही
ो। मुझे चाहे कितनी ही तरह वह रोकती क्यों न रही हो लेकिन मैं खूब
जानता था कि रोज मेरा थोड़ा-सा दुलार पाए बिना उसे कल नहीं पड़ती
थी। मैं समझ रहा था कि उसे क्या तकलीफ हो रही है, महसूस कर रह
था कि मुझे अपने निकट न पाने की अतृप्ति उसे किस कदर पीड़ा
रही है।

मन में तो बड़ी तकलीफ हुई, पर उसका आना रोककर अच्छा ही किया। समझा कि वह दिल्ली आने के लिए बड़ी व्याकुल है। इसीलिए अपने को और भी जल्दी से तैयार करने के लिए मैंने सारी शक्ति लगा दी। सोच लिया, उसे यहाँ लाकर एकबारगी चौंका दूँगा।

बहुत दिनों तक वंचित रखकर भगवान् ने मुझे बड़ा कष्ट दिया है। दु:ख और अपमान से बरसों जलता रहा हूँ। कलकत्ते में मेरे ऐसे भी दिन बीते जब एक पैसे की कमी से मैं सेकण्ड क्लास ट्राम पर नहीं चढ़ पाया। मगर गजब! दिल्ली आने के बाद पहले का सब कुछ उलट-पुलट हो गया। उस परिवर्तन का लम्बा इतिहास इस पत्र में नहीं, तुम्हें फिर कभी बताऊँगा। हाँ, इतना कह दूँ, मुझमें ऐसा परिवर्तन आया कि विश्वा नहीं होता। अपने को सफलता की आकस्मिक बाढ़ में पाकर मैं ख
अवाक् रह गया।

कोई छै महीने बाद मेम साहब मुझसे मिलने के लिए दिल्ली आ
उस समय मैं बोर्डिंग हाउस से नाता तोड़ कर वेस्टर्न कोर्ट में आ
था। मैं निश्चित रूप से समझ रहा था, मुझे देखकर, वेस्टर्न को
मेरा कमरा, मेरा काम-काज, मेरी जीवन-धारा देखकर मेम साहब
जाएगी। लेकिन मैं उसे चौंकाऊँ, उसके पहले ही उसने मुझे
दिया।

न्यू दिल्ली स्टेशन पर डी-लक्स एयर कण्डीशन्ड एक्सप्रेस अटेण
गया। मेम साहब आ रही है। जिन्दगी का एक अध्याय ख
दूसरा शुरू करने के बाद उससे मेरी यही पहली मुलाकात थी।

लाउडस्पीकर से ऐलान हुआ, ए० सी० सी० एक्सप्रेस
प्लेटफार्म पर आने ही वाली है। सनग्लास खोल कर मैंने रूमा

एक बार मुँह पोंछ लिया। सिगरेट सुलगाई। दो-एक कश खींचते न खींचते गाड़ी आ पहुँची। इधर-उधर देखा। इतने में मेम साहब दो नम्बर चेयर कार से बाहर निकल आई।

अरे? मेम साहब की शादी हो गई क्या? इतना बन-ठनकर! इतने गहने? सर पर आँचल। कपाल पर सिन्दूर की उतनी बड़ी बिन्दी।

मेम साहब को इतना सजते-सँवरते कभी नहीं देखा था। गहना? सिर्फ दाईं कलाई में एक कँगना। बस, और कुछ नहीं। गले में हार? नहीं, वह भी नहीं। मुसीबत में फँसे किसी मित्र के लिए उसने गले का हार दिया था। और इसके सिवा माथे पर आँचल तथा माथे पर सिन्दूर की बिन्दी देखकर हैरान होने से ज्यादा घबड़ा गया। पल भर के लिए पाँव के नीचे से धरती मानो खिसक गई। गला सूख आया। माथे पर बूँद-बूँद पसीना चमकने लगा। दुनिया उलट-पुलट हो गई।

पहले तो जी में आया, प्लेटफार्म पर उन कई हजार लोगों के सामने ही उसके गाल पर तड़ से एक तमाचा लगा दूँ। कहूँ, मेरा अपमान करने के लिए इतनी दूर आने के बजाय सिर्फ निमन्त्रण-पत्र भेज देने से ही तो होता!

फिर सोचा, नहीं, यह सब कुछ नहीं करना, कुछ नहीं बोलना। खास कुछ बातचीत नहीं की। सीधे जाकर टैक्सी पर बैठ गया।

टैक्सी पर सवार होते ही मेम साहब ने मुझे प्रणाम किया। मेरे बाएँ हाथ को अपने दाएँ हाथ में खींच लिया। पूछा, कैसे हो?

—मेरी छोड़ो। अब अपनी कहो कि कैसी हो? तुम्हारा ब्याह कैसा हुआ? दुलहा कैसा है? और सबसे पहली बात कि तुम दिल्ली क्यों आई?

मेम साहब बिलकुल पिघल गई। सच कह रही हूँ, तुम मुझे माफ करो। ऐसे अचानक सब कुछ हो गया कि किसी को खबर नहीं दी जा सकी।

—दुलहा कैसा है?

बड़े गर्व से जवाब दिया, ब्रिलिएण्ट!

—रहते कहाँ हैं?

—तुम्हारी इस दिल्ली में ही।

मैं चौंक उठा, दिल्ली में?

मेरे गाल को जरा दबाकर उसने कहा, येस सर! और नहीं तो क्या, मेरा दुलहा आदि सप्तग्राम या मछलन्दपुर में रहेगा?

कनाट प्लेस से होते हुए टैक्सी जनपद में घुस पड़ी। मिनट भर में वेस्टर्न कोर्ट आ जायगा। मैंने पूछा, तो अब कहाँ जाओगी ?

—और कहाँ ? तुम्हारे यहाँ।

टैक्सी वेस्टर्न कोर्ट में दाखिल हो गई। हम लोग उतरे। किराया चुकाया। छोटा-सा सूटकेस हाथ में लेकर अन्दर गया। रिसेप्शन से कुंजी ली। लिफ्ट से तिमञ्जिले पर पहुँचा। अपने कमरे में गया।

सर पर का कपड़ा हटाकर दोनों हाथों से मुझे जकड़ते हुए मेम साहब ने कहा, आह ! कैसी शान्ति !

मेरा कलेजा दहक उठा था। लेकिन दूसरे ही क्षण थम गया। उसकी माँग में सिन्दूर न देखकर समझा....

अब मुझसे भी न रहा गया। दोनों हाथों से उसे अपनी छाती पर खींच लिया। लाड़-प्यार से उसकी नाक में दम कर दिया। अपनी उन्मत्त जवानी से मेम साहब भी मुझे बहुत दूर बहा ले गई। उसका प्रेम मेरे तन-मन में आवेग और उमंग की एक परत चिकनी माटी चढ़ा गया। मेरा मन और भी उर्वर हो उठा।

इतने दिनों के बाद एक दूसरे को इतना पास पाकर हम दोनों पागल-से हो उठे। उस ज्वार के जल में कब तक डूबा रहा, पता नहीं। होश में तब आया, जब दरवाजा खटखटाने की आवाज हुई।

झटपट हम दोनों अलग हो गए। मैंने पूछा, कौन ?

—मैं हूँ, छोटा साब।

मेम साहब ने पूछा, कौन है ?

मैंने कहा, गजानन।

उठकर दरवाजा खोल दिया। कहा, अन्दर आओ।

मेम साहब पर नजर पड़ते ही गजानन ने दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। नमस्ते बीबी जी !

वह जरा हँसी। बोली, नमस्ते।

मैंने पूछा, गजानन, बीबी जी कैसी लगीं ?

—बहुत अच्छी छोटा साब।—एक सेकण्ड के बाद फिर कहा, मेरे छोटे साब की बीबी कभी बुरी हो सकती हैं भला !

हम दोनों हँस पड़े। मेम साहब ने कहा, बाबूजी हर चिट्ठी में तुम्हारे बारे में लिखा करते हैं गजानन।

दोनों हथेली मलते हुए गजानन ने कहा, छोटे साब की मिहरबानी !

मैंने उठकर गजानन की पीठ पर एक थप्पड़ लगाकर कहा, मेम साहब, गजानन मेरा लोकल बॉस है। गार्जियन।

—क्या करूँ बीवी जी, बताइए। बाबूजी तो ऐसा बुरा काम करते हैं कि वक्त का कोई ठीक-ठिकाना नहीं रहता फिर दुनियादारी की तो जरा भी अकल नहीं। मैं न देखूँ, तो इन्हें कौन देखेगा?—खूनी मुजरिम की तरह गजानन ने डरते-डरते जिरह का जवाब दिया।

गजानन ने पूछा, गाड़ी में कोई तकलीफ नहीं हुई बीवी जी?

मेम साहब बोली, नहीं, तकलीफ क्यों होगी?

गजानन कमरे से निकल गया। कुछ ही मिनट में हम दोनों के लिए नाश्ता ले आया। ट्रे उतार कर चला गया। कह गया, अभी जाता हूँ, थोड़ी देर बाद आऊँगा।

गजानन गया कि मैं मेम साहब की गोद में लेट गया। वह मुझे खिला देने लगी।

दोला भाभी, हम दोनों ने खूब हरकत की। बंगाली होते हुए भी प्रायः हालीवुड की फिल्म का अभिनय किया। आखिर तक शरत् बाबू के 'हिट्' नावेल की तरह हो गया। धीरे-धीरे सब पता चलेगा। ज्यादा अधीर मत होओ।

चौदह

मेम साहब जो दिल्ली रही, उस अरसे के एक-एक पल की कहानी सुनने के लिए तुम जरूर छटपटा रही होगी। मेम साहब ने क्या कहा, क्या किया, कैसे स्नेह-जतन किया, कहाँ-कहाँ घूमी आदि-इत्यादि। हजारों तरह की जिज्ञासा जाग रही होगी तुम्हारे मन में। है न? स्वाभाविक ही है। तुम्हारे ही क्यों, सबके मन में जाग रही होगी।

मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगा, पर हर क्षण की कहानी लिखना सम्भव नहीं है। अलावा इसके, हमारा सम्पर्क इस स्तर पर पहुँच गया था कि चाहते हुए भी सब कुछ नहीं लिखा जा सकता। कुछ तो तुम्हें अन्दाज से काम चला लेना पड़ेगा। और, मनुष्य के जीवन के वैसे अनोखे अध्याय के सब कुछ को भाषा में लिखा भी जा सकता है क्या?

ग्यारह बजे नाश्ता किया। दो घण्टे तक बिस्तर पर लुढ़कते हुए

हमने कितना क्या किया ! कभी मैंने उसके होंठों जहर उड़ेला, कभी उसने मेरे होंठों प्यार की बौछार कर दी। कभी दोनों एक दूसरे को जी भरकर देखते रहे। वह देखना शुभदृष्टि* से भी मानों कहीं ज्यादा मीठा, कहीं ज्यादा स्मरणीय था।

मैंने कहा, ओफ, कितने दिनों के बाद तुम्हें देखा ! सारी जिन्दगी देखते रहने के बाद भी वह कमी पूरी नहीं होगी।

मेरी छाती पर सिर रक्खे लेटे-लेटे ही उसने कहा, ऐसा !

—और क्या ?

वनमृगी-सी मेम साहब की आँखों की निगाह एक ही क्षण में घूमकर आसमान की गोद में जरा देर तैरती रही। जरा देर में वह बोली, लेकिन मैं तुम्हें रोज ही देखा करती थी।

अकचका कर मैंने कहा, मतलब ?

वह जरा हँसी। दोनों हाथों से मेरे गले को लपेट लिया और प्रायः मुँह पर मुँह रखकर बोली, सच। रोज ही देखती रही।

अब की मैं चौंका नहीं। हँसा। बोला, फिजूल की बकवास क्यों कर रही हो ?

—फिजूल की बकवास नहीं जी, फिजूल की बकवास नहीं। रोज सबेरे कालेज जाते समय रासविहारी के मोड़ पर पहुँचते ही लगता, तुम खड़े हो। हाथ के इशारे से मुझे बुला रहे हो। उसके बाद हम चल दिए—एसप्लेनेड, डलहौजी, हवड़ा।

इस बार मेम साहब मेरे मुँह पर लुढ़क पड़ी मानो। तीसरे पहर लौटते समय मानो और भी साफ देखा करती थी तुम्हें। लगता, राइटर्स बिल्डिंग की ड्यूटी पूरी करके कभी तुम डलहौजी स्क्वायर के उस कोने में, कभी लाट साहब के घर के उधर खड़े हो। और अब मेम साहब जैसे रो पड़ी—अजी ओ, यकीन करो, कालेज से लौटने के बाद साँझ-विहान बीता ही नहीं चाहता।

मैं झट पूछ बैठा, और रात शायद बड़ी शांति से बिताती थी ?

लाज मानो अचानक उसे बहा ले गई। उसने मेरे मुँह के पास अपना मुँह छिपा लिया। मैंने पूछा, क्या हो गया ?

उसने मुँह नहीं उठाया। मुँह छिपाए ही बोली, नहीं बताऊँगी।

---

*शुभदृष्टि—ब्याह के समय वर-वधू के परस्पर देखने की एक रीत।

—क्यों ?

—तुम्हारी डाट बढ़ जाएगी।

—बहुत अच्छा। मैं भी सब कुछ बताने से रहा। तुम्हारी जिगरी दोस्त जया ने क्या किया था, क्या कहा था, कुछ भी नहीं बताऊँगा।

मेम साहब चैन से नहीं रह सकी। उठ बैठी। मेरा हाथ पकड़ कर गिड़गिड़ाई, अजी, कहो न, क्या हुआ था ?

मैंने सिर हिलाकर कहा,

कुछ कहने को आया था, यूँ ही रहा, अनबोले !

पहले तो बड़ी धीरता दिखाकर फिर मेम साहब ने गाया,

साथ तुम्हारे बाँध दिया है प्राण, सुर के बंधन में।
तुम क्या जानो, पाया तुमको, अनजाने साधन से।

मैंने हँसते-हँसते कहा, ठीक है, इतना सब्र ही है तो जया की बात सुनकर क्या होगा ?

मेरी सोल प्रोप्राइटर कम मैनेजिंग डाइरेक्टर घबड़ा गई। शायद यह सोचा हो, इस उठते बाजार में कुछ शेयर खरीद कर जया आगे कुछ अच्छा मुनाफा लूटना चाहती है। शायद हो कि कुछ और ज्यादा शेयर खरीद कर आखिरकार हिस्सेदार से....

वह मेरी छाती पर लेट-सी गई—अजी ओ जी, कहो न, जया ने क्या किया ?—एक पल चुप रह कर फिर बोली, जया मेरी मित्र है तो क्या हुआ ? मैं जानती हूँ, वह अच्छी लड़की नहीं है, वह सब कुछ कर सकती है।

तुम्हें बताऊँ दोला भाभी, जया ने कुछ भी नहीं किया। हाँ, वह जरा ज्यादा चुस्त-दुरुस्त, जरा ज्यादा आधुनिका है। और चूँकि बड़े आदमी की बेटी है, इसलिए नाज-नखरा उसमें जरा ज्यादा है। मुझ जैसे छोकरों के साथ अड्डा मारने बैठ जाती है, तो उसे अच्छा-बेजा की सुध-बुध नहीं रहती। हँसते-हँसते हुआ तो दोनों हाथ ही थाम लिए, हुआ तो कंधे पर सर रख कर ही-ही-ही करने लगी। मेम साहब को सब मालूम है।

एक बार मैं, मेम साहब और जया बैरकपुर गांधी घाट घूमने गए। फिर क्या-क्या हुआ, कुछ मत पूछो। ही-ही, हा-हा हँसते-हँसते जया की छाती का अँचरा खिसक कर गिर पड़ा था। मेम साहब ने दो-एक बार इशारा भी किया, मगर उसे खाक परवा ! मेम साहब गुस्से से गुर्रा रही थी, पर कुछ बोल नहीं सकी। मैंने स्थिति भाँप ली और झट चहलकदमी

करते हुए जरा पीछे की ओर चला गया। देखा, मेम साहब ने जया का आँचल सम्हाल दिया।

कलकत्ते आए तो मेम साहब ने मुझसे कहा, ऐसी बेशर्म लड़की मैंने नहीं देखी!

दिल्ली में जया के छोटे चाचा होम मिनिस्ट्री में डिप्टी सेक्रेटरी थे। इसीलिए जया बीच-बीच में दिल्ली घूमने के लिए आया करती थी। मेम साहब ने सोचा, मेरी अनुपस्थिति में जया ने न जानें और क्या किया है।

जया इस बीच दिल्ली आई तो दो बार, परंतु मुझसे एक ही बार भेंट हुई थी। वह भी ज्यादा देर के लिए नहीं। और, उतने थोड़े समय में जया ने मेरी पवित्रता बिगाड़ने की कोई कोशिश नहीं की।

मैंने सिर्फ मेम साहब को परेशान करने के लिए जया का जिक्र किया।

रिपोर्टर होते हुए भी अचानक पॉलिटिसियन होकर मैंने मेम साहब से जरा पॉलिटिक्स खेला। काम बन गया।

शर्त रही, पहले मेम साहब अपनी सब बात बताएगी, फिर मैं जया की बात बताऊँगा।

घंटी बजाई। गजानन को तलब करके हुक्म दिया, आधा सेट चाय ले आओ।

गजानन ने मेम साहब के पास अर्जी पेश की, बीबी जी, छोटा साब की चाय थोड़ी कम करानी चाहिए।

मेम साहब ने एक बार मेरी ओर ताक कर गजानन से कहा, तुम्हारा छोटा साब मेरी कोई भी बात नहीं सुनते।

उसकी बात सुनकर स्नेह-विकल बूढ़ा गजानन भी हँस पड़ा। बोला, यह बात गलत है बीबी जी, छोटा साब चौबीसों घंटा तो आपका ही नाम लेते रहते हैं।

—अपने छोटे साब के पल्ले पड़कर तुम भी झूठ बोलने लगे, गजानन!

गजानन ने कान पकड़ लिया कहा, भगवान् कसम बीबी जी, झूठ मैं हरगिज नहीं बोलता।

मेम साहब हँसी। मैं भी हँसा।

गजानन बोला, आप नाराज न हों तो एक बात कहूँ?

मेम साहब बोली, तुम्हारी बात पर नाराज क्यों होने लगी?

—छोटा साब आपको बहुत प्यार करते हैं।

—यह तुमने कैसे समझा?—मेम साहब ने जिरह किया।

गजानन हँसा। बोला, बीबो जो, मैंने आप लोगों वाली अंग्रेजी नहीं पढ़ी। आप जैसा दिमाग भी नहीं है। इस दिल्ली में मेरे पैंतीस साल गुजरे। मैंने बहुतेरे बड़े-बड़े लोग देखे, मेरे छोटा साब जैसे ज्यादा आदमी नहीं मिलते।

मैंने गजानन पर डपट बताई। कहा, भागो। चाय ले आओ।

गजानन चाय ले आया। जाने लगा तो मैंने कहा, गजानन, कुछ रुपए रख जाना।

गजानन ने मेम साहब को आँखों का इशारा करके कहा, हाँ, बीबो जी, रुपए दूँ?

मैं उठकर गजानन को एक थप्पड़ जमाने गया कि वह भागा। चाय पीते-पीते मेम साहब ने बहुत कुछ बताया। एक दिन सवेरे उठकर मझली-दी ने उससे कहा, मुझसे अब नहीं बनता।

मेम साहब ने जानना चाहा, क्या नहीं बनता है री?

—प्रॉक्सी देना।

—काहे की प्रॉक्सी। किसकी प्रॉक्सी?

—और किसकी? रिपोर्टर की।

मेम साहब ने कहा, बदतमीजी मत करो मझली-दी। परंतु मन ही मन कुछ चिंतित हुई।

जरा देर के बाद मेम साहब ने मझली दी को पकड़ा—हाँ, दीदी, क्या हुआ है?

मझली-दी ने जरा दर-दस्तूर कर लिया, पहले यह बता कि मैं जो माँगूंगी, वही देगी?

मेम साहब ने जीभ से होंठों को जरा तर कर लिया। दाँतों से होंठ को जरा काट कर भँवें टेढ़ी करके एक क्षण के लिए सोच लिया। बोली, ठीक है, जो माँगेगी, वही दूँगी।

मझली-दी उस्ताद ठहरी। कच्चा काम करने वाली जीव ही नहीं है वह। उसने गारंटी माँगी। माँ काली की तसवीर छूकर शपथ खा कि जो मैं माँगूंगी, वही देगी।

वह घबड़ा गई। सोचा, मझली-दी धोखे में कुछ ठग लेगी। फिर सोचा, न, कुछ देकर भी पता करना ही है। और, इस तरह मेम साहब

का दुविधा में पड़ा मन मझली-दी के फंदे में फँस गया। उसने माँ काली की तसवीर को छूकर ही शपथ खाई, मुझे खोल कर सब बताएगी तो जो माँगेगी, दूँगी।

मझली-दी खींच कर उसे कोने वाले छोटे कमरे में ले गई। दरवाजे के पल्ले भिड़का दिए। मेम साहब की छाती धड़कने लगी। गोल टेबिल के पास से दो कुर्सियाँ खींचकर दोनों अगल-बगल बैठीं।

मझली-दी ने शुरू किया, रात को तू क्या करती है, क्या बड़बड़ाती है, पता है?

—क्या करती हूँ मझली-दी?

—मुझको रिपोर्टर समझ कर कितना दुलारती है, मालूम है?

शर्म के मारे मेरी काली मेम साहब का मुँह भी लाल हो उठा। बोली, रहने भी दे, झूठी बकवास मत कर।

मझली-दी तुरंत कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। कहा, अच्छा तो ठीक है। नहीं सुनना चाहती है तो छोड़।

वह झट से मझली-दी का हाथ पकड़ कर उसे कुर्सी पर बैठाती हुई बोली, खैर, कहना है सो कह।

—तेरे दुलार के मारे मेरे तो प्राण निकलने की नौबत है!

—क्यों खामखा झूठ बोल रही है!

मझली-दी ने होंठ दबाकर हँसते हुए कहा, काली माँ की तसवीर छूकर कहूँ?

—न-न, माँ काली की तसवीर छूकर कहने की जरूरत नहीं है।

—और, सिर्फ दुलार ही क्या? कितना कुछ बोलती है।

—सोए-सोए?

मझली-दी ने मुस्कुराकर कहा, जी हाँ। यकीन न आए, तो माँ से पूछ।

—माँ ने सुना है?—मेम साहब घबराई।

—एक दिन तो डेफिनिट सुना है, शायद रोज ही सुनती हैं।

उसने झट मझली-दी का हाथ दबाकर पूछा, मैं क्या बोली थी रे?

निर्विकार की नाईं मझली-दी ने कहा, जो-जो कह कर तू उसे प्यार जताती है, वही। और क्या?

हम सोफे पर बैठकर सेंटर टेबिल पर पाँव रक्खे-रक्खे बातें कर रहे थे। मेम साहब ने दाएँ हाथ से मेरे सिर को करीब खींचकर कान में कहा,

देखा, नींद में भी तुम्हें भूल नहीं पाती हूं।

जरा चुप रह कर फिर बोली, देख लिया, कितना प्यार करती हूँ तुम्हें ?

मैंने सिगरेट सुलगाकर ढेर सा धुआँ उगलते हुए कहा, ठेंगा प्यार करती हो ! यदि सचमुच ही प्यार करती होती, तो आज भी मझली-दी तुम्हारे पास सोने का साहस कर सकती थी ?

मेम साहब ने मुँह बिचका कर कहा, हूँ, दिया सोने उसे !

अब की मैंने उसके कानों में कहा, लेकिन आज तो डोर मेरे हाथों में है। आज उड़कर कहाँ जाओगी ? तिस पर आज तो तुम्हारा वादा है इनाम देने का !

—इनाम ?

—जी हाँ। वही—जो माँगोगे, वही दूँगी—वाला इनाम !

मेम साहब मेरे पास से दौड़कर भाग गई। कहती गई—मैं आज ही कलकत्ता भाग रही हूँ।

नाटक जब इस चरम स्थिति को पहुँचा था, तो मंच पर गजानन का आविर्भाव हुआ। उसने बड़े मिजाज के साथ कहा, दो बज गए। खाना-पीना भी होगा कि आप लोग दिन भर गप्पें मारते रहेंगे।

दो बज गए ? हम दोनों ने एक साथ घड़ी देखी। बड़ी शर्मिंदगी-सी लगी। कहा, तुम लंच ले आओ गजानन। हम लोग दस मिनट के अंदर नहा-धो लेते हैं।

दिल्ली में हमारे इस द्वैत जीवन का मंगलाचरण कैसा लगा ? मेरा ख्याल है, बुरा नहीं लगा। मुझे भी अच्छा लगा था। बड़े ही दुःख, कष्ट और संग्राम से जूझने के बाद आनन्द का यह अधिकार पाया था, इसलिए इस आनंद, इस तृप्ति का स्वाद बड़ा ही मीठा लगा था।

मझली-दी से समझौता करके कालेज से सात दिन की छुट्टी लेकर वह मेरे पास आई थी। आई थी अनेक कारणों से, बहुत जरूरतों से। समाज और संस्कार के आक्टोपस से अपने को छुड़ाकर हम दोनों ने जरा मिलना चाहा था। उसी छुटकारे के स्वाद और आनंद के लिए ही मेम साहब दिल्ली आई थी।

और भी कारण थे। हम दोनों बहुत दिनों तक शून्यता में बहते फिरे। दोनों के ही मन एक सुरक्षित आश्रय की खोज में थे। उस आश्रय, उस घर को बसाने के बारे में बहुतेरी बातें करनी थीं। दोनों के मन में

वहुत-सी कल्पनाएँ और परिकल्पनाएँ थीं। उन सब पर भी विचार-विमर्श करके किसी निश्चित निष्कर्ष पर आना था। खैर।

मैंने भी एक हफ्ते की छुट्टी ले ली थी। सोचा था, मेम साहब को गाड़ी पर सवार कराने तक टाईपराइटर और पार्लियामेंट हाउस के पास तक न फटकूँगा। चाहा था कि एक-एक पल मेम साहव की निकटता का आनंद लूँ।

मैं तुमसे सच कह रहा हूँ दोला भाभी, एक भी क्षण नष्ट नहं किया। चूंकि भगवान् को हमारे विधाता द्वारा निर्धारित भविष्य का पत था, इसलिए उन्होंने एक पल का भी अपव्यय करने नहीं दिया। इन क दिनों को हमने हँसी-खुशी, गीत-गप्प से भर लिया था।

लंच खाने में काफी देर हो गयी। गाड़ी में लगातार चौबीस घंटे वे सफर के बाद भी मेम साहब ने जरा देर आराम करने का मौका नहं पाया। मैंने कहा, अब तुम जरा आराम कर लो। सो जाओ।

—पिछले कई महीने कलकत्ते में खूब सोती रही हूँ, खूब आराम किया है। तुम मुझे सोने को मत कहो।

एक ही मिनट के बाद बोली, तुम बल्कि थोड़ी देर सो लो। मं तुम्हारा बदन सहला देती हूँ।

—मैं क्यों सोऊँ ?

—अजी, लेटो तो सही। मैं तुम्हारे पास बैठकर बातें करूँगी।

लेटने की इच्छा नहीं थी, लेकिन लोभ न सम्हाल सका। दिल्ली वे काव्यहीन जोवन में ऐसे एक परम दिन का सपना दिनों से देखत रहा था।

मेम साहब ने आराम नहीं किया, मगर मैं सचमुच ही लेट गया। मेरे पास बैठकर वह मेरे सिर पर, मुँह पर हाथ फेरते हुए गुनगुना कर ग रही थी। कभी-कभी थोड़ा दुलार लेती थी। किस गजब ही खुशी से मेर तन-मन भर गया था, यह मैं तुम्हें समझा नहीं सकूँगा। सपना इस तरह से साकार हो सकता है, यह सोच कर मैं अनोखी सफलता और सार्थकत का स्वाद पा रहा था।

दोनों तकियों को तो मैंने तलाक दे दिया। मेम साहब की गोद में सर रखा, दोनों हाथों उसकी कमर को पकड़ा और मैंने आँखें बंद क लीं।

उसने पूछा, नींद आ रही है ?

मैं बोला नहीं। सिर हिलाकर बताया, नहीं।

—थकावट लग रही है ?

—नहीं।

—फिर ?

—सपना देख रहा हूँ।

—सपना ?

गरदन हिलाकर जताया, हाँ, सपना।

अपना मुँह मेरे मुँह के करीब लाकर उसने जानना चाहा, क्या सपना देख रहे हो ?

—तुम्हें सपने में देख रहा हूँ।

—मुझे ?

—मैं तो तुम्हारे ही पास बैठी हूँ। मुझे क्या सपने में देख रहे हो ?

उसकी गोद में ही सर रख कर चित लेट गया। दोनों हाथ उसके गले में डालकर कहा, हाँ, तुम्हें ही तो देख रहा हूँ कि जन्म-जन्मांतर में इसी तरह से तुम्हारी गोद में पनाह पा रहा हूँ, तुम्हारा प्यार पा रहा हूँ, भरोसा पा रहा हूँ।

लमहे में बिजली-सी चमकी गर्व की। मेम साहब के सारे मुखड़े को उसने दमका दिया। दूसरे ही क्षण उसकी घनी काली, किंतु चमकती हुई पुतलियाँ जानें किस गहराई में डूब गईं। बोली, अजी ओ, तुम मुझे इस तरह से न देखो, तुम मुझे इतना ज्यादा प्यार न करो।

—क्यों, यह तो कहो ?

—इसलिए कि अगर कभी कोई दुर्घटना घट जाय, कभी अगर मैं तुम्हारी आशा-आकांक्षा के साथ ताल मिला कर चल न सकूँ, तो वह दुःख, वह चोट तुम बरदाश्त नहीं कर सकोगे।

मैंने गरदन हिलाते हुए कहा, ऐसा हो नहीं सकता मेम साहब। मेरे सपने को तोड़ देने का साहस तुम्हें भी नहीं है, भगवान् को भी नहीं।

मेरी बात से शायद उसे गर्व का अनुभव हुआ। बोली, मैं जानती हूँ कि मेरे बिना तुम अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकते, फिर भी ऐसा न कहो।

—क्यों न कहूँ ? तुम्हारे जी में अब भी कोई शंका है क्या ?

—शंका होने से कोई इस तरह से दौड़ी-दौड़ी आती ?

मेम साहब फिर थम गईं। फिर बोली, तुम्हारी ओर से मैं कोई चोट

...वाऊँगी, यह मैं जानती हूँ। डर मुझे अपनी ही ओर से है। मैं ...री आशा पूरी कर सकूँगी ? तुम्हें सुखी कर पाऊँगी ?

—तुम नहीं कर सकोगी तो कोई भी नहीं कर सकेगा मेम साहब। नहीं कर सकोगी, तो स्वयं भगवान् भी मुझे सुखी नहीं कर सकेंगे।

ऐसी कितनी ही बातें हुईं। बातों ही बातों में बेला ढल गई। साँझ आई। घर-घर, राह-बाट में बत्तियाँ जल उठीं।

मेम साहब बोली, छोड़ो, बत्ती जला दूँ।

—नहीं-नहीं। बत्ती मत जलाओ। मैं इस अँधेरे में ही तुमको बहुत ...साफ देख रहा हूँ। बत्ती जलाने से और भी बहुत कुछ देखना पड़ेगा।

—पागल !

—ऐसा पागल तुम्हें दूसरा नहीं मिलेगा।

मुझे जकड़ते हुए वह बोली, ऐसी पगली भी तुम्हें नहीं मिलेगी।

—भगवान् ने बहुत सोच-विचार करके ही पगले के मुकद्दर में पगली को जुटा दिया है। ऐसा न होने से इतना मेल, इतना प्रेम हो सकता है भला !

उसी अँधेरे में और कुछ समय कट गया।

मेम साहब ने कहा, चलो, जरा घूम आएँ।

—घूमने की इच्छा हो रही है तुम्हें ?

—कलकत्ते में कभी भी तो इतमीनान से घूम नहीं पाई। यहाँ कम से कम कोई चिंता नहीं रहेगी घूमते हुए।

मेम साहब ने बत्ती जलाई। घंटी बजा कर बैरे को बुलाया। चाय मँगवाई। खुद से चाय बनाई। मैंने लेटे ही लेटे एक प्याला चाय पी।

मेम साहब ने ताकीद की, लो, झटपट तैयार हो जाओ।

मैंने लेटे-लेटे ही कहा, वार्डरॉब से, मेरा पैंट-बुशशर्ट निकाल दो।

मेम साहब अपनी लंबी लट झुलाती हुई मजे में डोलती-डोलती ग... वार्डरॉब खोलते ही लगभग चीख उठी, अरे ! तुम्हारे वार्डरॉब में साड़...

उलट-पुलट कर देखा। देख कर बोली, यह तो बहुत तरह की साड़... हैं ! घूम-घूम कर कलेक्शन किया है, क्यों ?

मेरा पैंट-बुशशर्ट न देकर हैंगर से एक कटकी साड़ी उतार क... आती हुई लाड़ से बोली, यह साड़ी मैं पहनूँ ?

—और नहीं तो क्या, मैं पहनूँगा ?

साड़ी की दो-चार परतें खोलकर वदन से लपेट कर ड्रेसिंग टे...

सामने खड़ी होकर बोली, लवली !

—क्या लवली है ? मैं कि यह साड़ी ?

बदन से साड़ी को वैसे ही लपेटे आईने के सामने मेम साहब जरा घूम गई। बोली, यू आर नोटोरियस बट साड़ी इज लवली।

मैं बिस्तर से उठ पड़ा। मेम साहब से लिपटते ही वह डाँट उठी—हर वक्त यों लिपटो मत। साड़ी का क्रीज मत बरबाद करो।

झट वह मेरी ओर घूम गई। मेरे मुँह की ओर अकुलाकर ताकती हुई बोली, मगर ब्लाऊज का क्या होगा ? तुमने ब्लाऊज पीस जरूर नहीं खरीदी है।

मैं उसका कान पकड़ कर खींचते हुए एक कोने की ओर ले गया। एक छोटा-सा सूटकेस खोल दिया—नॉटी गर्ल ! हैव ए लुक।

हँसते हुए उसने कहा, ब्लाऊज बनवाया है ?

—जी हाँ।

—नाप कहाँ से मिल गया ?

—तुम्हारे ब्लाऊज का नाप मुझे नहीं मालूम है ?

मेरे दिमाग में शैतानी सूझी। कानों में कहा, शुड आइ टेल यू योर वाइटल स्टेटिस्टिक्स ?

मेम साहब मेरे पास से भाग जाती हुई बोली, बस, सिर्फ बेहयाई ! ये जर्नलिस्ट लोग बड़े बेशर्म होते हैं !

—और तुम जैसी जवान तथा अनब्याही प्राध्यापिकाएँ बड़ी धार्मिक होती हैं, क्यों ?

—क्या करूँ ? तुम जैसे किसी-किसी डाकू-उचक्के के हाथों पड़ जाने से हम लोगों की खैर है ?

मैं और कुछ कहने जा रहा था। उसने टोक कर कहा, अब नाहक यह बहस बंद करके निकलोगे भी ?

मेम साहब ने सोफे पर साड़ी रख दी। अपने सूटकेस से धोती-कुरता निकाल कर बोली, लो, पहनो।

—इस बार भी तुमने जरीदार कोर की धोती नहीं दी ?

—जरी कोर की धोती के बिना कोई असुविधा है ? कोई नुकसान ?

दोला भाभी, मेरे जीवन के उन न भुलाने वाले दिनों की बातें मेरी स्मृति में अमर और अक्षय होकर रह गई हैं। आज मैं कंगाल हूँ, सब तरह से खाली, सूना। मेरा कलेजा जल कर राख हो रहा है। मन में हर

रावण की चिता जल रही है। गंगा-जमना, नर्मदा-गोदावरी सबके
से भी यह आग बुझने की नहीं, नहीं बुझ सकती।
बाहर से मेरी लकदक, मेरी दुनियावी कामयाबी और मेरे होंठों की
ी देखकर सभी मुझे कितना सुखी समझते हैं। कितने लोग जानें और
ा-क्या सोचते हैं। मेरे व्यक्तिगत जीवन के बारे में कितनों की कैसी-
सी अजीबो गरीब धारणा है! मन ही मन मुझे हँसी आती है। काश,
ं चीख कर एक बार रो पाता, एक बार यदि चिल्लाकर सब कुछ कह पाता, यदि हनुमान की तरह अपनी छाती चीर कर सबको दिखा पाता, तब शायद....

देखती हो न, फिर जानें क्या अंट-शंट बकने लगा। मैंने तो तुम्हें पहले ही लिखा है कि उस करमजली के बारे में लिखने और सोचने में बीच-बीच में मेरा दिमाग कैसा तो करने लगता है। थोड़ा और सब्र करो। तुम शायद मेरे मन की हालत समझ सकोगी।

दोला भाभी, हम दोनों की कहानी के आधार पर मोटी-मोटी किताबें लिखी जा सकती हैं। सात दिनों के उस दिल्ली-प्रवास की घटना पर ही मजे का एक उपन्यास लिखा जा सकता है। और फिर तीन दिन की वह जयपुर और सिलिसेर की यात्रा? काश, वे तीन दिन तीन वर्ष हुए होते। यदि वे तीन दिन कभी खत्म ही नहीं होते!

दिल्ली में उस पहली रात में हम लोग एक पल भी नहीं सोए तमाम रात बातें होती रहीं। फिर भी सबेरे लगा कि कोई बात ही नहीं हुई। लगा, विधना के मजाक से अचानक रात ही छोटी हो गई। सबे का सूरज असह्य लगा।

मोटे परदे की दरार से चुपचाप हमारे कमरे में घुसकर किरणों शरारत शुरू कर दी थी। लेकिन वह फिर भी मेरे गले से लग कर धीरे गा रही थी,

जो चाहे मेरा मन
तुम वही कामना के धन!

मैंने पूछा, सच?

वह बोली,

सिवा तुम्हारे इस दुनिया में
मेरा कौन स्वजन?
तुम नहीं अगर सुख पाओ

तो....सुख की खोज में जाओ

—मैं फिर कहाँ जाऊँ ?

मेम साहब ने सिर हिलाकर मुझे धन्यवाद दिया और गाती रही,

तुम्हें हृदय में पाया मैंने
पूर्ण हुआ मेरा जीवन !

—स्योर ?

—स्योर।—वह केहुनी के सहारे दाएँ हाथ को माथे पर रख कर बाएँ हाथ से मेरे चेहरे को सहलाती हुई गाने लगी,

तुम्हारे विरह मे रहूँगी विलीन
तुममें करूँगी वास;
सब दिन दिन औ' रात
ऐसे ही बारहो मास,
यदि, और किसी को चाहो....

मैंने कहा, इसकी इजाजत दोगी तुम ?

पास न मेरे आओ
तो तुम जो चाहो सो पाओ
मै चाहे सुख की हूँ निर्धन !

मैंने कहा, मैं और कुछ नहीं चाहता। तुम भी दु:ख नहीं पाओगी।

उसने मुझे जकड़ लिया। होंठ पर थोड़ा-सा प्यार रख कर बोली, वह मुझे मालूम है, मालूम है।

सवेरे चाय पीते-पीते मेम साहब ने कहा, चलो न, दो दिन जयपुर घूम आएँ।

विचार बेजा नहीं लगा। चाय पीते-पीते ही योजना बन गई। एक दिन जयपुर और एक दिन सिलिसेर के फॉरेस्ट-बंगला में रहा जायगा, यह भी ठीक हो गया। उसके बाद फिर दिल्ली में घूमना-देखना और घर बसाने के ठीक-ठिकाने पर भी सोचा जायगा।

पन्द्रह

मुझे कुछ भी नही करना पडा। मेरी एक अटैची में मेम साहब ने दो दिन की जरूरत की सारी चीजें सँजो लीं। मैंने एकाध बार यह-वह लेने

की कही थी। वह बोली, तुम चुप तो रहो!

मैं चुप ही रहा। रात में अहमदाबाद मेल पकड़ा। सबेरे जयपुर पहुँच गया।

गाड़ी में?

गाड़ी की बात क्या लिखूँ? सेकंड क्लास में गया था। डब्बे में और-और मुसाफिर भी थे। जी तो बहुत कुछ कह रहा था पर....। लेकिन हाँ, एक कोने में बैठकर दोनों ने बहुत रात तक गप्प-शप की थी। मेम साहब को मैंने सो जाने के लिए कहा था। वह तैयार न हुई। कहा, तुम सो जाओ। मैं तुम्हें सुला देती हूँ।

—नहीं-नहीं, सो नहीं होने का।

—क्यों नहीं होगा?

—तुम जगी रहोगी और मैं सोऊँगा?

—पहले तुम थोड़ा सो लो। फिर मैं सोऊँगी।

सोने को जी नहीं चाह रहा था। इसलिए मैंने कहा, इतनी थोड़ी-सी जगह में भी सोया जा सकता है?

—लो, मैं खिसक जाती हूँ। तुम मेरी गोद में सर रख कर सो जाओ।

मुझे हँसी आई।

—हँस क्यों रहे हो?

हँसते-हँसते ही मैंने कहा, तुम क्या रेल के डब्बे में ही मुझे दुलारोगी?

वह रंज हो गई—हाँ, दुलारूँगी। हजार बार दुलारूँगी। मैं क्या किसी पराए मर्द को दुलार रही हूँ?

मेम साहब जरा हट कर बैठ गई। मैं उसकी गोद में सिर रखकर लेट गया।

मेरा सर-मुँह सहलाकर वह मुझे सुलाने की कोशिश करने लगी। थोड़ी देर में अपना मुँह मेरे मुँह के ऊपर लाकर बोली, सो रहे हो?

—नहीं।

—नहीं सोओगे?

—नहीं।

—क्यों?

—इतने सुख, इतनी खुशी में नींद नहीं आती।

मेम साहब हँसी। पूछा, सच, अच्छा लग रहा है?

—बहुत ही अच्छा लग रहा है।

वह चुप हो गई। जरा देर में फिर मेरे मुँह के पास मुँह लाकर बोली, एक बात कहूँ?

—कहो।

—तुम रोज इसी तरह से मेरी गोद में सर रखकर सोया करना, मैं तुम्हें सुला दिया करूँगी।

—क्यों?

—क्यों फिर क्या? मेरी खुशी। मुझे अच्छा लगता है।

मैंने कोई जवाब नही दिया। गोद में मुँह गाड़कर हँसता रहा।

दोनों हाथों से मेरा मुँह अपनी ओर घुमाकर मेम साहब ने कहा, हँस क्यों रहे हो?

—यों ही।

—नहीं, तुम यों मत हँसो।

—ठीक है।

मेम साहब फिर मेरे माथे पर हाथ फेरने लगी। मुझे बेहद अच्छा लग रहा था। मैं सचमुच ही सो गया।

नींद बिलकुल सबेरे की तरफ टूटी। घड़ी देखी। साढ़े चार। मेम साहब भी सो रही थी। दोनों हाथों मेरा सिर थामे सिर झुकाकर बैठी-बैठी ही सो रही थी। बड़ी शर्म लगी, बड़ा कष्ट-सा लगा। मेरे उठ बैठते ही उसकी आँखें खुल गईं। मेरे कुछ कहने के पहले ही वह पूछ बैठी, उठ गये क्यों?

उसकी बात का जवाब न देकर मैंने पूछा, क्या बज रहा है, पता है?

—क्या बज रहा है?

—साढ़े चार।

—अच्छा!

—तुमने तमाम रात यों बैठे-बैठे ही काट दी?

उस धुंधले प्रकाश में ही मैंने देखा, थोड़ी-सी हँसी से मेम साहब का चेहरा खिल पड़ा। बोली, तो क्या हुआ?

मैंने नाराज होकर कहा, तो क्या हुआ? मैं सारी रात मजे में सोता रहा और तुमने बैठकर रात बिता दी?

शांत और कोमल मेम साहब ने मेरे गाल पर हाथ फेर कर कहा,

नाराज क्यों हो रहे हो ? यकीन मानो, मुझे जरा भी तकलीफ नहीं हुई।

मैंने मजाक करते हुए कहा, न-न, तकलीफ क्यों होने लगी ? बड़े आराम से सोई हो।

फिर वही मीठी हँसी, वही शांत-स्निग्ध स्वर। कहा, आराम न सही, आनन्द तो मिला।

तुमसे क्या कहूँ दोला भाभी, उस करमजली ने ऐसे ही प्यार करके मेरा सत्यानाश किया।

जयपुर में क्या किया, मालूम है ? होटल में जाकर नहाया-धोया। नाश्ता किया। मैंने कहा, कपड़े बदल लो।

—क्यों ?

—क्यों क्या ? घूमने जाना है।

—घूमने कहाँ जाओगे ?

—जयपुर आने पर लोग जहाँ घूमने जाते हैं।

उसने कहा, मैं तो अंबर पैलेस या हवामहल देखने नहीं आई।

—तो फिर जयपुर क्यों आई ?

—सिर्फ तुम्हारे साथ निकल आई। इतने दिनों से खट रहे हो। थोड़ा आराम मिल जायगा, इसलिए आई।

मैंने कहा, वह आराम तो दिल्ली में भी कर सकता था।

—सोचा, मेरे साथ बाहर जाने में तुम्हें और अच्छा लगेगा। जभी आई।

लॉन के एक किनारे एक पेड़ की छाँह में बैठकर सारा सवेरा हम दोनों ने बिता दिया।

—अजी सुनो, तुम जब गाड़ी खरीदोगे, तो हर वीक-एंड पर हम बाहर जाया करेंगे, क्यों ?

उँगली से अपनी ओर इशारा करते हुए मैंने कहा, मैं गाड़ी खरीदूँगा ?

—तो क्या मैं खरीदूँगी ?

—तुम क्या पागल हो गई हो ?

—क्यों, तुम क्या गाड़ी नहीं खरीदोगे ?

—हट पगली ! गाड़ी खरीदने के पैसे कहाँ से लाऊँगा मैं ?

वह मानो सचमुच ही जरा रंज हो गई। कहा, हर बात में तुम मुझे पागल मत कहा करो, हाँ !

—पागल जैसी बात करने से भी नहीं ?

भँवें सिकोड़ कर वह लगभग चीख उठी, नहीं।

जरा ही देर बाद फिर बोली, गाड़ी खरीदने को कहो तो इसमें पागलपन क्या हो गया ?

मैंने सिगरेट सुलगाकर धुआँ छोड़ते हुए कहा, कुछ भी नहीं।

गजब के आत्मविश्वास के साथ वह बोली, देख लेना, साल भर के अन्दर ही तुम्हारे पास गाड़ी होगी।

—तुम्हे मालूम है ?

—हजार बार मालूम है।

फिर थोड़ी देर बाद क्या बोली, जानती हो ? वह मुझसे सट कर बैठ गई। मेरे कंधे पर सिर रक्खा। जैसे तुतलाती हो, बोली—अजी सुनो, तुम मुझे गाड़ी चलाना सिखा दोगे ?

वह उस समय बोइंग सेवन् जीरो सेवन् से भी ज्यादा तेजी से ऊपर उठ रही थी। सो मैंने नाहक उसे बाधा नहीं दी। कहा, जरूर सीखा दूँगा।

मन ही मन मुझे हँसी आ रही थी। लेकिन बड़ी कोशिश करके हँसी को दबाकर स्वाभाविक तौर पर जानना चाहा, कौन-सी गाड़ी खरीदना चाहती हो ?

मेरे इस पूछने से वह बेहद खुश हुई। हँसी से मुखड़ा भर गया। उसकी खिंची हुई-सी आँखें और बड़ी-बड़ी हो गईं। बोली, तुम्हें कौन-सी पसंद है ?

उसे प्रसन्न करने की गरज से कहा, गाड़ी खरीदूँगा, तो तुम्हारी पसंद की ही खरीदूँगा।

उसने पहले से ही सोच रक्खा था। लमहे में बोल उठी, स्टैंडर्ड हेराल्ड।

—स्टैंडर्ड हेराल्ड तुम्हें खूब पसंद है, क्यों ?—मैंने पूछा।

—यह गाड़ी देखने में भी अच्छी होती है, फिर....

मेम साहब बीच ही में रुक गई। मैंने पूछा, फिर क्या ?

हँसमुख-सी होकर वह बोली, वह गाड़ी दो दरवाजे की होती है न !

—उससे क्या हुआ ?

मैंने मानो हद की बेवकूफी से ही यह सवाल किया था। वह बोली, वाह, इससे क्या हुआ ?

खूब सीरियस होकर बोली, बच्चों के साथ उस गाड़ी में चलने में कितनी सुविधा है, पता है? अचानक दरवाजा खुलकर गिर जाने का जरा भी खतरा नहीं, यह जानते हो?

मेम साहब की कल्पना की बोइंग सेवन् जीरो सेवन् उस समय चालीस हजार फुट से भी ऊपर उड़ रही थी। और साढ़े पाँच-छै सौ मील की रफ्तार से हवा हो रही थी। मैं उस हवाई जहाज का को-पाइलट होते हुए भी उसे पालम हवाई अड्डे पर नहीं उतार सका। मन ही मन चोट लगी। इसके सिवा उसके भविष्य का सपना शायद अच्छा लगा था। मैंने सिर्फ यह कहा, हाँ-हाँ, ठीक ही कहा है।

दोपहर को लंच के बाद लेटे-लेटे हम दोनों और भी बहुत कुछ कहते-सुनते रहे।

—अजी ओ, खोकन की एक बार तुम्हारे पास आने की बड़ी इच्छा है।

मैंने कहा, भेज देना।

—नहीं-नहीं। अभी नहीं। पहले हमारा घर बस ले, फिर आएगा।

मैंने जानना चाहा, अच्छा मेम साहब, तुम खोकन को खूब चाहती हो, है न!

मेम साहब ने कहा, क्या करूँ, बताओ? चाचा जी को तो हम लोग कभी किराएदार नहीं समझते रहे न। चाची जिंदा होतीं, तो इतनी घनिष्ठता, इतना मिलना-जुलना शायद नहीं होता और वह तो आफिस और ट्यूशन के चलते तमाम दिन घर से बाहर ही रहते हैं। इसलिए हमारे सिवा खोकन को देखेगा कौन?

मैंने कहा, वह तो समझा, लेकिन खोकन को तुम जरा ज्यादा चाहती हो। करवट लेकर मुझे जरा और करीब खींचकर उसने कहा, क्यों, तुम्हें ईर्ष्या होती है?

—मुझे ईर्ष्या किस बात की होगी?

मैंने भी करवट बदली। कहा, पिछली बार खोकन ने जब मैट्रिक का इम्तहान दिया, तो तुमने क्या जो किया!

—करती नहीं? हमारे सिवा उसके और कौन है, कहो?

—हमारे-हमारे क्यों कह रही हो? कहो, मेरे सिवाय कौन करेगा?

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ हँसी। जरा देर बाद बोली, घर में मैं सबसे छोटी हूँ। मुझे दीदी कहकर पुकारने वाला कोई नहीं है।

बचपन से ही मुझे एक भाई का शोक रहा है !

—ग्रो !

वह जानें क्या सोच कर हँसी । पूछा, हँस क्यों रही हो ?

—बचपन की एक बात याद आ गई ।

—कौन-सी बात ?

मेम साहब फिर हँसी । बोली, बचपन में एक भाई देने के लिए मैं माँ को खूब तंग किया करती थी ।

मैं हँसा ।

वह भी हँसते ही हँसते बोली, सच कह रही हूँ, एक भाई के लिए माँ को मैं बहुत दिनों तक तंग करती रही । ग्रौर मैं जैसे ही भाई देने की जिद पकड़ती कि दीदियां फौरन वहाँ से हट जाती ग्रौर माँ मुझे डाँट कर भगा देती ।

—ग्रो, तुम इसलिए खोकन को इतना चाहती हो ?

—हाँ । ग्रौर, खोकन लड़का भी ग्रच्छा है । मुझे भी वह बहुत मानता है ।

—सो तो सच है ।

मेरे होंठों पर प्यार का हलका-सा परस देकर वह बोली, थैंक यू ।

मेम साहब ने फिर कहा, खोकन सबेरे जब धोती-कुरता पहन कर कालेज जाता है, तो मुझे बड़ा ग्रच्छा लगता है ।

—ग्रच्छा लगेगा ही । जिसे इतना स्नेह देकर ग्रपने हाथों इतना बड़ा किया, वह लड़का बड़ा हो ग्रौर ग्रच्छा हो तो बेशक ग्रच्छा लगेगा ।

मैं जरा थम गया । जरा हँसा । उसने पूछा, फिर क्यों हँस रहे हो ?

—यों ही ।

—यों ही क्यों ?

फिर हँसा ग्रौर फिर कहा, यों ही ।

मेम साहब ने तंग करना शुरू कर दिया, यों ही क्यों हँस रहे हो, कहो ?

हँसते-हँसते ही मैंने कहा, बताऊँ ?

—हाँ, बताग्रो ।

मैं फिर हँसा । बोला, सच बताऊँ ?

कँहुनी के सहारे मेम साहब मेरे मुँह के पास मुँह लाकर बोली, कहा तो, बताग्रो ।

खूब सीरियस होकर बोली, बच्चों के साथ उस गाड़ी में चलने में कितनी सुविधा है, पता है ? अचानक दरवाजा खुलकर गिर जाने का जरा भी खतरा नहीं, यह जानते हो ?

मेम साहब की कल्पना की बोइंग सेवन् जीरो सेवन् उस समय चालीस हजार फुट से भी ऊपर उड़ रही थी। और साढ़े पाँच-छै सौ मील की रफ्तार से हवा हो रही थी। मैं उस हवाई जहाज का को-पाइलट होते हुए भी उसे पालम हवाई अड्डे पर नहीं उतार सका। मन ही मन चोट लगी। इसके सिवा उसके भविष्य का सपना शायद अच्छा लगा था। मैंने सिर्फ यह कहा, हाँ-हाँ, ठीक ही कहा है।

दोपहर को लंच के बाद लेटे-लेटे हम दोनों और भी बहुत कुछ कहते-सुनते रहे।

—अजी ओ, खोकन की एक बार तुम्हारे पास आने की बड़ी इच्छा है।

मैंने कहा, भेज देना।

—नहीं-नहीं। अभी नहीं। पहले हमारा घर बस ले, फिर आएगा।

मैंने जानना चाहा, अच्छा मेम साहब, तुम खोकन को खूब चाहती हो, है न !

मेम साहब ने कहा, क्या करूँ, बताओ ? चाचा जी को तो हम लोग कभी किराएदार नहीं समझते रहे न। चाची जिंदा होतीं, तो इतनी घनिष्ठता, इतना मिलना-जुलना शायद नहीं होता और वह तो आफिस और ट्यूशन के चलते तमाम दिन घर से बाहर ही रहते हैं। इसलिए हमारे सिवा खोकन को देखेगा कौन ?

मैंने कहा, वह तो समझा, लेकिन खोकन को तुम जरा ज्यादा चाहती हो। करवट लेकर मुझे जरा और करीब खींचकर उसने कहा, क्यों, तुम्हें ईर्ष्या होती है ?

—मुझे ईर्ष्या किस बात की होगी ?

मैंने भी करवट बदली। कहा, पिछली बार खोकन ने जब मैट्रिक का इम्तहान दिया, तो तुमने क्या जो किया !

—करती नहीं ? हमारे सिवा उसके और कौन है, कहो ?

—हमारे-हमारे क्यों कह रही हो ? कहो, मेरे सिवाय कौन करेगा ?

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ हँसी। जरा देर बाद बोली, घर में मैं सबसे छोटी हूँ। मुझे दीदी कहकर पुकारने वाला कोई नहीं है

बचपन से ही मुझे एक भाई का शोक रहा है !

—ओ।

वह जानें क्या सोच कर हँसी। पूछा, हँस क्यों रही हो ?

—बचपन की एक बात याद आ गई।

—कौन-सी बात ?

मेम साहब फिर हँसी। बोली, बचपन में एक भाई देने के लिए मैं माँ को खूब तंग किया करती थी।

मैं हँसा।

वह भी हँसते ही हँसते बोली, सच कह रही हूँ, एक भाई के लिए माँ को मैं बहुत दिनों तक तंग करती रही। और मैं जैसे ही भाई देने की जिद पकड़ती कि दीदियाँ फौरन वहाँ से हट जाती और माँ मुझे डाँट कर भगा देती।

—ओ, तुम इसलिए खोकन को इतना चाहती हो ?

—हाँ। और, खोकन लड़का भी अच्छा है। मुझे भी वह बहुत मानता है।

—सो तो सच है।

मेरे होंठों पर प्यार का हलका-सा परस देकर वह बोली, थैंक यू।

मेम साहब ने फिर कहा, खोकन सवेरे जब धोती-कुरता पहन कर कालेज जाता है, तो मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

—अच्छा लगेगा ही। जिसे इतना स्नेह देकर अपने हाथों इतना बड़ा किया, वह लड़का बड़ा हो और अच्छा हो तो बेशक अच्छा लगेगा।

मैं जरा थम गया। जरा हँसा। उसने पूछा, फिर क्यों हँस रहे हो ?

—यों ही।

—यों ही क्यों ?

फिर हँसा और फिर कहा, यों ही।

मेम साहब ने तंग करना शुरू कर दिया, यों ही क्यों हँस रहे हो, कहो ?

हँसते-हँसते ही मैंने कहा, बताऊँ ?

—हाँ, बताओ।

मैं फिर हँसा। बोला, सच बताऊँ ?

कँहुनी के सहारे मेम साहब मेरे मुँह के पास मुँह लाकर बोली, कहा तो, बताओ।

खूब सीरियस होकर बोली, बच्चों के साथ उस गाड़ी में चलने में कितनी सुविधा है, पता है? अचानक दरवाजा खुलकर गिर जाने का जरा भी खतरा नहीं, यह जानते हो?

मेम साहब की कल्पना की बोइंग सेवन् जीरो सेवन् उस समय चालीस हजार फुट से भी ऊपर उड़ रही थी। और साढ़े पाँच-छै सौ मील की रफ्तार से हवा हो रही थी। मैं उस हवाई जहाज का को-पाइलट होते हुए भी उसे पालम हवाई अड्डे पर नहीं उतार सका। मन ही मन चोट लगी। इसके सिवा उसके भविष्य का सपना शायद अच्छा लगा था। मैंने सिर्फ यह कहा, हाँ-हाँ, ठीक ही कहा है।

दोपहर को लंच के बाद लेटे-लेटे हम दोनों और भी बहुत कुछ कहते सुनते रहे।

—अजी ओ, खोकन की एक बार तुम्हारे पास आने की बड़ी इच्छा है।

मैंने कहा, भेज देना।

—नहीं-नहीं। अभी नहीं। पहले हमारा घर बस ले, फिर आएगा।

मैंने जानना चाहा, अच्छा मेम साहब, तुम खोकन को खूब चाहती हो, है न!

मेम साहब ने कहा, क्या करूँ, बताओ? चाचा जी को तो हम लोग कभी किराएदार नहीं समझते रहे न। चाची जिंदा होतीं, तो इतनी घनिष्ठता, इतना मिलना-जुलना शायद नहीं होता और वह तो आफिस और ट्यूशन के चलते तमाम दिन घर से बाहर ही रहते हैं। इसलिए हमारे सिवा खोकन को देखेगा कौन?

मैंने कहा, वह तो समझा, लेकिन खोकन को तुम जरा ज्यादा चाहती हो। करवट लेकर मुझे जरा और करीब खींचकर उसने कहा, क्यों, तुम्हें ईर्ष्या होती है?

—मुझे ईर्ष्या किस बात की होगी?

मैंने भी करवट बदली। कहा, पिछली बार खोकन ने जब मैट्रिक का इम्तहान दिया, तो तुमने क्या जो किया!

—करती नहीं? हमारे सिवा उसके और कौन है, कहो?

—हमारे-हमारे क्यों कह रही हो? कहो, मेरे सिवाय कौन करेगा?

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ हँसी। जरा देर बाद बोली, घर में मैं सबसे छोटी हूँ। मुझे दीदी कहकर पुकारने वाला कोई नहीं है।

बचपन से ही मुझे एक भाई का शोक रहा है !

—ओ !

वह जानें क्या सोच कर हँसी। पूछा, हँस क्यों रही हो ?

—बचपन की एक बात याद आ गई।

—कौन-सी बात ?

मेम साहब फिर हँसी। बोली, बचपन में एक भाई देने के लिए मैं माँ को खूब तंग किया करती थी।

मैं हँसा।

वह भी हँसते ही हँसते बोली, सच कह रही हूँ, एक भाई के लिए माँ को मैं बहुत दिनों तक तंग करती रही। और मैं जैसे ही भाई देने की जिद पकड़ती कि दीदियाँ फौरन वहाँ से हट जाती और माँ मुझे डाँट कर भगा देती।

—ओ, तुम इसलिए खोकन को इतना चाहती हो ?

—हाँ। और, खोकन लड़का भी अच्छा है। मुझे भी वह बहुत मानता है।

—सो तो सच है।

मेरे होंठों पर प्यार का हलका-सा परस देकर वह बोली, थैंक यू।

मेम साहब ने फिर कहा, खोकन सवेरे जब धोती-कुरता पहन कर कालेज जाता है, तो मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

—अच्छा लगेगा ही। जिसे इतना स्नेह देकर अपने हाथों इतना बड़ा किया, वह लड़का बड़ा हो और अच्छा हो तो बेशक अच्छा लगेगा।

मैं जरा थम गया। जरा हँसा। उसने पूछा, फिर क्यों हँस रहे हो ?

—यों ही।

—यों ही क्यों ?

फिर हँसा और फिर कहा, यों ही।

मेम साहब ने तंग करना शुरू कर दिया, यों ही क्यों हँस रहे हो, कहो ?

हँसते-हँसते ही मैंने कहा, बताऊँ ?

—हाँ, बताओ।

मैं फिर हँसा। बोला, सच बताऊँ ?

कँहुनी के सहारे मेम साहब मेरे मुँह के पास मुँह लाकर बोली, कहा तो, बताओ।

ख़ूब सीरियस होकर वोली, बच्चों के साथ उस गाड़ी में चलने में
ी सुविधा है, पता है ? अचानक दरवाजा खुलकर गिर जाने का
भी खतरा नहीं, यह जानते हो ?

मेम साहब की कल्पना की वोइंग सेवन् जीरो सेवन् उस समय
लीस हजार फुट से भी ऊपर उड़ रही थी। और साढ़े पाँच-छै सौ मील
रफ्तार से हवा हो रही थी। मैं उस हवाई जहाज का को-पाइलट
ते हुए भी उसे पालम हवाई अड्डे पर नहीं उतार सका। मन ही मन
ोट लगी। इसके सिवा उसके भविष्य का सपना शायद अच्छा लगा था।
मैंने सिर्फ यह कहा, हाँ-हाँ, ठीक ही कहा है।

दोपहर को लंच के बाद लेटे-लेटे हम दोनों और भी वहुत कुछ कहते-सुनते रहे।

—अजी ओ, खोकन की एक वार तुम्हारे पास आने की बड़ी इच्छा है।

मैंने कहा, भेज देना।

—नहीं-नहीं। अभी नहीं। पहले हमारा घर बस ले, फिर आएगा।

मैंने जानना चाहा, अच्छा मेम साहब, तुम खोकन को खूब चाहती हो, है न!

मेम साहब ने कहा, क्या करूँ, बताओ ? चाचा जी को तो हम लोग कभी किराएदार नहीं समझते रहे न। चाची जिंदा होतीं, तो इतनी घनिष्ठता, इतना मिलना-जुलना शायद नहीं होता और वह तो आफिस और ट्यूशन के चलते तमाम दिन घर से वाहर ही रहते हैं। इसलिए हमारे सिवा खोकन को देखेगा कौन ?

मैंने कहा, वह तो समझा, लेकिन खोकन को तुम जरा ज्यादा चाहती हो। करवट लेकर मुझे जरा और करीब खींचकर उसनें कहा, क्यों, तुम्
ईर्ष्या होती है ?

—मुझे ईर्ष्या किस वात की होगी ?

मैंने भी करवट बदली। कहा, पिछली वार खोकन ने जब मैट्रि
का इम्तहान दिया, तो तुमने क्या जो किया !

—करती नहीं ? हमारे सिवा उसके और कौन है, कहो ?

—हमारे-हमारे क्यों कह रही हो ? कहो, मेरे सिवाय कौन करेग

उसने कोई जवाव नहीं दिया। सिर्फ हँसी। जरा देर वाद वोली
में मैं सवसे छोटी हूँ। मुझे दीदी कहकर पुकारने वाला कोई नह

बचपन से ही मुझे एक भाई का शोक रहा है !

—ग्रो !

वह जानें क्या सोच कर हँसी। पूछा, हँस क्यों रही हो ?

—बचपन की एक बात याद आ गई।

—कौन-सी बात ?

मेम साहब फिर हँसी। बोली, बचपन में एक भाई देने के लिए मैं माँ को खूब तंग किया करती थी।

मैं हँसा।

वह भी हँसते ही हँसते बोली, सच कह रही हूँ, एक भाई के लिए माँ को मैं बहुत दिनों तक तंग करती रही। ग्रौर मैं जैसे ही भाई देने की जिद पकड़ती कि दीदियाँ फौरन वहाँ से हट जाती ग्रौर माँ मुझे डाँट कर भगा देती।

—ग्रो, तुम इसलिए खोकन को इतना चाहती हो ?

—हाँ। ग्रौर, खोकन लड़का भी ग्रच्छा है। मुझे भी वह बहुत मानता है।

—सो तो सच है।

मेरे होंठों पर प्यार का हलका-सा परस देकर वह बोली, थैंक यू।

मेम साहब ने फिर कहा, खोकन सबेरे जब धोती-कुरता पहन कर कालेज जाता है, तो मुझे बड़ा ग्रच्छा लगता है।

—ग्रच्छा लगेगा ही। जिसे इतना स्नेह देकर ग्रपने हाथों इतना बड़ा किया, वह लड़का बड़ा हो ग्रौर ग्रच्छा हो तो बेशक ग्रच्छा लगेगा।

मैं जरा थम गया। जरा हँसा। उसने पूछा, फिर क्यों हँस रहे हो ?

—यों ही।

—यों ही क्यों ?

फिर हँसा ग्रौर फिर कहा, यों ही।

मेम साहब ने तंग करना शुरू कर दिया, यों ही क्यों हँस रहे हो, कहो ?

हँसते-हँसते ही मैंने कहा, बताऊँ ?

—हाँ, बताग्रो।

मैं फिर हँसा। बोला, सच बताऊँ ?

कँहुनी के सहारे मेम साहब मेरे मुँह के पास मुँह लाकर बोली, कहा तो, बताग्रो।

दोनों हाथों उसके मुँह को खींचकर कान में कहा, हम लोगों के ोकन* कव होगा ?

मेम साहव ने भी मेरे कान में कहा, तुम जब चाहोगे।

—स्योर?

—स्योर !

उसे गले लगाकर मैंने कहा, थैंक यू वेरी मच !

उसने हँसकर कहा, नॉट ऐट ऑल। इट विल वी माइ प्लेजर।

—आर यू स्योर मैडम ?

—येस् सर, आइ ऐम स्योर।

इसके वाद दोनों को जानें क्या हो गया ? दिमाग में कैसी तो आँधी- ा उठी शरारत की। वैसी शांत-स्निग्ध मेम साहव ने उस दिन दोपहर ो जो हरकत की कि पूछो मत। वाद में मैंने कहा था, जानती हो मेम ाहव, तुमको देखकर कतई समझ में नहीं आता कि तुम्हारे अंदर इतना ारत भरी है !

वह उलट कर सो गई। कहा, वकवक मत करो।

दूसरे दिन सवेरे सिलिसेर पहुँचा। लेक के किनारे पहाड़ के ऊपर भी जो राजप्रासाद था, अव वही सरकारी रेस्ट हाउस है। दुतल्ले पर नेजर की वही में नाम-धाम लिखकर घर की कुंजी लेकर तिनतल्ले की त पर गया। वहाँ जाकर खड़े होते ही झील और पहाड़ देखकर मेम ाहव तो मुग्ध हो गई ! कहा, लवली !

सिर पर घूंघट, माथे पर सिंदूर की वड़ी-सी विंदी, आँखों में धूप का श्मा—इस वाने और इस परिवेश में मेम साहव मुझे और भी हजार नी अच्छी लगी। मैंने कहा, सचमुच ! लवली !

—लेकिन मेरी तरफ ताक कर क्यों कह रहे हो ?

—यह झील, यह पहाड़, यह राजप्रासाद ! तुम इन सवसे भी ज्यादा च्छी लग रही हो।

मेरी तारीफ की परवा न करके वह चारों तरफ घूम-घूम कर लेक और हाड़ देख रही थी। इतने में छत की उस ओर से हाल की व्याही एक ी ने अचानक आकर मेम साहब से पूछा, आप लोग वंगाली हैं ?

उसने गरदन घुमाकर सन-ग्लास के अंदर से मुझे देख कर कहा, । !—थोड़ा रुककर वोली, और आप ?

*मुन्ना।

उन श्रीमती जी ने बत्तीसी निकाल कर कहा, हम लोग भी। मैंने मन ही मन कहा, यहाँ भी क्या थोड़ा निश्चिन्त रहना नसीब न होगा ?

वह देवी जी रुकीं नहीं। पूछा, आप लोग कहाँ रहते हैं ?

मेम साहव को खीज-सी हो रही थी। फिर भी उसके आग्रह की प्यास मिटाए बिना वह आ नहीं पा रही थी। कहा, दिल्ली।

—दिल्ली ? दिल्ली में कहाँ ? लोदी कालोनी ?

—नहीं, वेस्टर्न कोर्ट में।

—आपके पति क्या सरकारी नौकरी में हैं ?

—नहीं, वह पत्रकार हैं।

कमरे का दरवाजा खोलकर बैरा अटैची रख गया। मैंने आवाज दी, सुनो।

मेम साहव ने माथे का घूँघट जरा खींच कर उससे कहा, तो अभी चलती हूँ। फिर भेंट होगी।

—हम लोग आज तीसरे ही पहर अजमेर चले जाएँगे।

—आज ही ?—मेम साहव ने मन ही मन मसोस का भान किया।

कमरे के दरवाजे पर पहुँचते ही मैंने उससे कहा, तुम उसे फौरन रुखसत हो जाने को कहो।

धूप का चश्मा उतारते हुए उसने कहा, आः, सुन लेगी।

मेम साहव अपना बाल खोलने बैठ गई। मैं बाथरूम में दाखिल हो गया। नहा कर बाहर आते ही उसने मुझसे कहा, तुम साबुन तौलिया कुछ नहीं ले गए ?

—नहान घर में ही तो था।

—वह तो होटल का था।

—तो क्या हुआ ? धुला तौलिया और नया साबुन काम में लाने में क्या हर्ज है !

—कुछ हो चाहे न हो, मेरा तौलिया-साबुन रहते तुम होटल की चीज क्यों काम में लाओगे ?

मेम साहव ने भी स्नान कर लिया। मैंने बैरे को बुलाकर कहा, नाश्ता ले आओ।

नाश्ता करके हम दोनों सोफे पर बैठे। मेम साहव से कहा, कोई गीत सुनाओ।

—चारों तरफ लोग-बाग घूम-फिर रहे हैं। अभी नहीं। शाम को

पहाड़ के पास झील के किनारे घूमते समय तुम्हें बहुत-से गीत सुनाऊँगा।

उस दिन मेम साहब से रवीन्द्र-संगीत नहीं सुना जा सका, पर हम दोनों ने भावी-जीवन के संगीत की रचना की थी।....

—अजी ओ, अब तुम्हारी आमदनी कुछ बढ़ जाय तो तुम तीन कमरे का एक फ्लैट लेना।

—अभी से फ्लैट लेकर क्या होगा ?

—धीरे-धीरे हम अपनी गिरस्ती सजा-गुजा लेंगे।

—और, तीन कमरे के फ्लैट का क्या होगा ? एक कमरे का छोटा-सा युनिट होने से ही तो काम चल जायगा।

—नहीं-नहीं। वह नहीं होगा। एक कमरे के फ्लैट में हम दोनों का हाथ-पाँव पसारना गैर-मुमकिन है।

—दो के सिवाय तीसरा कहाँ मिल रहा है ?

इस बार मेम साहब की सारी गंभीरता गायब हो गई। हँसते-हँसते
बोली, तुम जैसे डकैत के साथ गिरस्ती करने से दो से तीन, तीन से चार
चार से पाँच जने होने में भी देर नहीं लगेगी।

उसकी बात सुनकर मैं दंग हुए बिना न रहा। अवाक् होकर अचंभे
उसकी ओर देखने लगा।

—वैसे मुँह बाये क्या देख रहे हो ?

—तुम्हें।

—मुझे ?

सिर हिलाकर कहा, हाँ, तुम्हें।

—मुझे क्या कभी देखा नहीं है ?

उसकी ओर ताकते हुए ही कहा, देखा है।

अब की मेम साहब भी कुछ अवाक् होकर मेरी तरफ देखने ल

—तो तुम वैसे मेरी तरफ क्या देख रही हो ?

मैंने दोनों हाथों से उसके मुखड़े को उठा कर कहा, तुम ज
और सार्थक स्त्री होगी मेम साहब। लेकिन बच्चे की माँ के
तुम्हारी मिसाल नहीं होगी।

मेम साहब ने पहले धीरे-धीरे नजर झुका ली। उसके ब
धीरे से मेरी छाती पर रक्खा। दो उँगलियों से बटन को
बोली, मुझे बच्चों का बेहद शौक जो है! राह-घाट में खूबसूर

—काश, मेरा होता, यही न ?

मेरी बात पर गरदन हिलाकर हामी भरते हुए वह हँसी। और फिर धीरे-धीरे मेरी गोद में अपना मुँह छिपा लिया। मुझे लगा, वह शर्म से क्या तो कह नहीं पा रही है। पूछा, कुछ कहना है ?

मुँह छिपाए-छिपाए ही बोली, तुम्हारे जी में नहीं आता है ?

मैं हँस पड़ा—जानती हो मेम साहब, सपना देखने में बड़ा डर लगता है।

मेरी गोद में छिपाए मुखड़े को घुमाकर उसने मेरी तरफ ताका। बोली, क्यों, डर क्यों लगता है ?

—जीवन में चलते हुए बार-बार गिरता रहा हूँ। इसीलिए भविष्य की सोचने में, भावी जीवन का सपना देखने में डर लगता है।

हथेली से मेरा मुँह दबाते हुए उसने कहा, नहीं-नहीं, डर की बात मत कहो। डर कैसा ?—जरा आतंक से, जरा दुविधा से उसने जानना चाहा, मैं क्या तुम्हारी नहीं हूँगी ?

अब की मैंने उसका मुँह दबा दिया—छिः, ऐसी-वैसी बातें क्यों सोचती हो ? मैं तो तुम्हारा ही हूँ।

उसके चेहरे पर तब भी फिक्र की छाप थी। बोली, वह तो मालूम है, लेकिन तो भी तुम्हें डर क्यों लगता है ?

मैंने दोनों हाथों से पकड़ कर उसे छाती से लगा लिया। दिलासा दिया, डरो मत। तुम्हारा सपना, तुम्हारा प्यार कभी व्यर्थ नहीं हो सकता।

अकुलाहट भरी आवाज में बोली, सच कह रहे हो ?

—हजार बार सच कह रहा हूँ। यदि विधाता की इच्छा नहीं होती, तो ऐसे अनोखे ढंग से हम दोनों की मुलाकात होती ? या कि इस तरह से आज हम दोनों सिलिसेर की झील के किनारे मिल पाते ?

—मुझे भी तो वही लगता है। भगवान् का कोई निर्देश, कोई इशारा नहीं रहा होता तो सचमुच ही हम कभी नहीं मिल पाते।

—तो फिर इतना घबरा क्यों जाती हो ?

शिकायत-सी करती हुई वह बोली, तुम्हीं तो घबराए दे रहे हो।

—घबराए दे रहा हूँ कि सतर्क किए दे रहा हूँ ?

दोला भाभी, उस जंगल-पहाड़ की गोद में हमने वे जो दो दिन बिताए, मेरे जीवन में वे स्मरणीय हैं। इस निकटता से, इतनी गहराई से

मैंने मेम साहब का प्यार कभी नहीं पाया था। वे दो दिन हर पल मेम साहब के प्रेम और उष्ण सान्निध्य का उपभोग किया था मैंने। इसीलिए तो किसी तीसरे व्यक्ति के संपर्क में आने का जी नहीं हुआ।

मेम साहब ने कहा, काफी देर हो चुकी, चलो, लंच खा आएँ। मैंने साफ सुना दिया, मैं तो कमरे से बाहर निकलने का नहीं।

—फिर ?

—फिर क्या ? बैरे से कह दो, खाना यहीं दे जाए।

मैं पुराने युग के राजमहल में राजकुमार के सोने के कमरे में ही महाराजा की तरह लेटा रहा। घंटी बजा कर उसने बैरे को बुलाया। कहा, साहब की तबीयत ठीक नहीं है। मिहरबानी करके खाना यहीं ला दो।

—जो हुक्म मेम साहब।

खाना दे गया। बीच की मेज पर सब ठीक करके उसने कहा, आओ, खा लो।

बड़े सोफे पर अगल-बगल बैठकर हम दोनों ने भोजन किया। खाते-खाते मांस का एक मुलायम-सा टुकड़ा मेरे मुँह में डाल कर बोली, लो, खा लो।

—तुम खाओ न।

—मैं दे रही हूँ, तुम खाओ तो।

मांस का टुकड़ा खाते समय उसकी दो उँगलियाँ काट कर मैंने कहा, तुमको भी खा डालूँ ?

हँसते हुए बोली, मुझको खाना क्या बाकी रक्खा है तुमने ?

खा-पीकर एक चादर ओढ़ कर वह एक ओर लेट गई। मुझको सावधान कर दिया, अब चुपचाप सो जाओ, जरा भी तंग मत करना।

—सच ?

—और नहीं तो क्या, झूठ ?

मैंने जरा उसके करीब खिसक कर कहा, तंग न करके अगर मैं तुम्हें सुखी करूँ, तो ?

हाथ से मुझे ढकेलते हुए कहा, दूर ही से सुखी करो।

—बड़ी दूर हट जाऊँ ?

—हाँ, जाओ।

—ऐसा भी होता है भला। तुम्हें तकलीफ होगी।

हाथ का अँगूठा दिखा कर बोली, ठेंगा होगी। देखूँ तो जरा, जा कैसे सकते हो!

मेम साहब जानती थी कि वह उधर मुँह किए नहीं सो सकेगी। और मैं भी दूर नहीं जा सकूँगा। उसके मन की बात मैं जानता था, मेरे मन की भी वह जानती थी। फिर भी कुछ ज्यादा दुलार, कुछ ज्यादा प्यार पाने के लिए वह ऐसी ही शरारत करती थी। मुझे भी बुरा नहीं लगता था।

दूसरे दिन सारा गेस्ट हाउस ही करीब-करीब खाली हो गया था। सिर्फ हम दो जने और ऊपर के तल्ले में एक बूढ़े दंपति के सिवाय और कोई भी नहीं था।

शाम को हम झील के किनारे-किनारे जंगल और पहाड़ में कितना घूमा किए थे। मेम साहब ने कितना गाना सुनाया! रात को छत के एक कोने में बैठकर लेक की मीठी हवा में हमने भोजन किया। उसके बाद सारी बत्तियाँ बुझाकर खुले आसमान के नीचे हम लोग बैठे रहे। आसमान के तारे टिमटिमा रहे थे, तो भी उस अँधेरे में हम दोनों के मन का आकाश पूनो की चाँदनी से भर गया था।

हमारे आस-पास दुनिया का न कोई आदमी था, न आदमजाद, लगा इस सारे विश्व-ब्रह्मांड के मात्र हम ही मालिक हैं। मानो भगवान् ने हम दोनों का ख्याल करके, हमारी शांति के लिए बाकी सारे लोगों को पृथ्वी पर और कहीं से घूम आने की छुट्टी दे दी थी।

लोगों की भीड़-भाड़ से बाहर इसके पहले भी मेम साहब को मैंने एकांत में पाया था, लेकिन ऐसा निकट नहीं पाया था। ऐसा पूर्ण, परिपूर्ण, संपूर्ण रूप से नही पाया था।

—इस रात की बात भूल तो नहीं जाओगी मेम साहब?

प्रेम की बोतलों व्हिस्की पीकर मेम साहब को इस कदर नशा आ गया था कि बोलने को भी ताकत नहीं रह गई थी। तभी तो सिर्फ सिर हिलाया, नहीं।

—कभी नही?

—नहीं।

—कभी अगर मुझसे बड़ी दूर जा रहो तुम....

—तुम्हारी यह मुहब्बत और यह याद लेकर मैं कहाँ जाऊँगी?

—फिर भी, आदमी की तकदीर का कुछ कहा तो नहीं जा सकता

मेम साहब ने जीभ से होंठ को जरा भिगो लिया, दो दाँतों से होंठ के कोने को जरा काट लिया। उसके बाद बोली, तुम्हारा यह प्यार पाने के बाद और किसी के साथ सारी जिंदगी प्यार का नाटक नहीं कर सकूँगी मैं।

वह जरा रुक गई। मुझको जरा और नजदीक खींच लिया। जरा ज्यादा कसकर पकड़ते हुए बोली, और फिर तुम्हारे जीवन की मिट्टी पलीद करके और किसी को फिर क्यों ठगूँगी ?—जरा जोर से बोल उठी, नहीं-नहीं, यह मुझसे हरगिज न होगा।

मैं भी कैसा तो हो गया था मानो। मैंने भी उसे कस कर पकड़ लिया। जरा गीले गले से कहा, मैं सच कह रहा हूँ मेम साहब, तन-मन-वचन से भगवान् से प्रार्थना करता हूँ, वह दुर्दिन कभी न आए। यदि कभी वह दिन आया तो मैं जिंदा नहीं रहूँगा। या तो पागल हो जाऊँगा या फिर तुम्हारी याद अपने कलेजे में सँजोए इस झील में सदा के लिए डूब जाऊँगा।

उसने झटपट मेरे मुँह को दबा दिया। बोली, छिः। छिः। ऐसी बात जबान पर मत लाओ। लो, तुम्हारी छाती पर हाथ रख कर कहती हूँ, तुम्हें छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।

वह रुकी। मुझे जरा स्नेह किया और फिर बोली, मैं जाना भी चाहूँ, तो तुम मुझे जाने क्यों दोगे ? आखिर मैं तुम्हारी स्त्री हूँ न ! अगर, तुम्हारे मन में कोई शक हो, शुबहा हो तो आज ही रात मेरी माँग में सिंदूर, हाथों में शंख की चूड़ियाँ पहना दो। वही पहने मैं कलकत्ते लौट जाऊँगी।

मेम साहब की बात से मेरे मन से अविश्वास के बादल की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ भी जानें कहाँ गायब हो गईं। मेरा मुखड़ा हँसी से झलमला उठा। मैंने कहा, नहीं-नहीं, मेरे मन में कोई दुविधा नहीं है। तुम अगर मेरी नहीं होती, तो इस तरह से हँसते हुए अपना सारा वैभव, सारा ऐश्वर्य और प्यार मुझे देती ?

बातों में रात काफी जा चुकी। कलाई पर घड़ी थी, पर घड़ी देखने की प्रवृत्ति हम में से किसी को नहीं थी। उस रात मेम साहब मेरी इतनी अपनी, इतनी घनिष्ठ हो गई थी कि वह कहानी लिखी नहीं जा सकती। सिर्फ इतना ही जान लो, हमारे दो मन, दो प्राण, दो आत्मा, आशा-आकांक्षा, स्वप्न-साधना उस चिर-स्मरणीय रात में एक हो गए थे,

एकाकार हो गए थे !

सोलह

दूसरे दिन नींद खुलने में काफी देर हो गई। और भी देर होती शायद। लेकिन आंखों पर सूरज की किरण पड़ने से मेरी नींद टूट गई। बगल की खाट पर मेम साहब मेरी ओर मुंह करके सो रही थी। उसकी आंखों पर सूरज की किरण नहीं पड़ रही थी। लगा, बड़े आनन्द से वह सपने में खोई हुई है।

उसे जगाने को जी नहीं चाहा। इस बेफिक्री से वह सो रही थी कि देखने में मुझे अच्छा लग रहा था। मैं देर तक उसे देखता रहा। बार-बार देखा। उसके अंग-अंग पर बार-बार मेरी आंखें दौड़ती रहीं। शायद बदन पर भी जरा हाथ से सहला दिया था।

मन में कितना क्या सोच गया। सोचा, यही है मेम साहब ! मेरे जीवन-नाट्य की नायिका ! यही वह चपल चंचल बाला है, जिसने मेरे जीवन के इतिहास का रुख मोड़ दिया है। यही वह कलाकार है, जिसने मेरे जीवन में सुर, आंखों में सपना दिया है। सोचा, यह वही लड़की है, जो मेरे जीवन में यदि न आती तो लोगों के अनजाने न जाने मैं कहां खो जाता, वैशाख की आंधी से सूखे पत्ते की तरह अनजाने भविष्य की गोद में सदा के लिए खो जाता।

सोचते हुए बड़ा अच्छा लगा। उसके माथे पर के बिखरे बालों को सहेज कर जरा दुलार लिया।

मेम साहब करवट लेटी थी। उसकी लम्बी चोटी कन्धे के पास से छाती पर से होती हुई बिस्तर पर लोट रही थी। मुग्ध होकर मैं देर तक देखता रहा। उसके शरीर की चढ़ाई-उतराई देखकर ऐसा लगा, वह प्रॉक्सीटिलीस की वीनस है, या कि सांची की यक्षिणी-प्रतिमा, या कि खजुराहो की नायिका, अजन्ता की मारकन्या !

मिलटन की पंक्ति याद आ गई, जो उसने ईव के प्रति कही है—"ओ फेयरेस्ट ऑफ क्रिएशन लास्ट ऐंड बेस्ट, ऑफ ऑल गॉड्स वर्क्स।"

मेम साहब ईव जितनी खूबसूरत बेशक नहीं थी। लेकिन मेरी आंखों, मेरे मन से तो वह बे-मिसाल थी ! अपनी सांवली मेम साहब को मैंने

मुग्ध होकर बड़ी देर तक देखा। सोचा, बाइबिल के अनुसार नारी ही तो ईश्वर की अन्तिम और सबसे अच्छी कीर्ति है। लेकिन सभी क्या मेम साहब होती है? देह का यह लावण्य, आँखों में ऐसा सपना, चरित्र की ऐसी दृढ़ता, मन की यह व्यापकता तो और कहीं नहीं मिली।

सोए-सोए ही उसने मानो मुझे इशारा किया। लगा, जैसे उसने पुकारा, अजी ओ, नजदीक आओ न, दूर क्यों हो? तुम क्या मुझे अपनी छाती से नहीं लगाओगे?

मैं हँसा। मन ही मन कहा, अरी दईमारी, तुझे क्या पता कि तुझे ज्यादा लाड़ करने में भी मुझे डर लगता है। तुझे ज्यादा देर अपने कलेजे से लगाए रहने से जलन होती है, डर लगता है।

डर?

हाँ, हाँ। डर। डर नहीं लगेगा? यदि कभी किसी वजह से, दैव की अदया से कलेजा खाली हो जाय? तो?

सोए-सोए ही मेम साहब ने अपना दायाँ हाथ मेरी गोद पर रखकर मुझे जकड़ लेने की कोशिश की। मानो बोली, नहीं, नहीं जी, । मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।

मैंने उसे जरा और पास खींच लिया। जरा दुलारा।

सुबह की उस मीठी धूप में मेम साहब को दुलार कर बड़ा अच्छा लगा। लेकिन खुशी की उस परम घड़ी में एक बार ऐसा लगा, शाम को तो सूरज डूबता है, धरती पर तो अँधेरा उतर आता है।

जानती हो दोला भाभी, उस मुँहजली लड़की को जब भी मैं अपने बहुत नजदीक पाता था, तभी मेरे मन में डर हो आता था। क्यों, सो नहीं कह सकता! लेकिन आज लगता है—

खैर। रहने दो। वह सब बातें कहने लगूँ तो फिर सब गड़बड़ हो जायगा। जितनी जल्दी बन पड़े, तुम्हें अपनी मेम साहब की कहानी सुना देनी है। समय आँधी की चाल से भाग रहा है। जितनी जल्दी हो सके, तुम्हें तो मुझे किसी लड़की के हवाले करना है। है न? और, मेरी भी तो उम्र आखिर बढ़ रही है! ज्यादा उमर हो जाने से किस्मत में फिर कुछ जुटेगा भी!

उस वन-पर्वत के पास राजमहल में दो दिन दो रात सपने देखकर हम दिल्ली लौट आए। लौट तो जरूर आए पर जो मेम साहब, जो मैं वहाँ गया था, ठीक वही मेम साहब और वही मैं नहीं लौटा। हम दोनों

बिलकुल नए होकर लौटे।

दिल्ली लौटकर मेम साहब ने एक भी घड़ी बरबाद नहीं की। वह गिरस्ती बसाने के धंधे में मशगूल हो गई। एक स्कूटर रिक्शे पर हमने भविष्य का अपना बसेरा पसन्द करने के लिए दिल्ली के मुहल्लों की खाक छानी। करोलबाग, वेस्टर्न एक्सटेन्सन, नया राजेन्द्र नगर, ईस्ट पटेल नगर और दक्षिण में निजामुद्दीन, जंगपुरा, डिफेंस साउथ एक्सटेन्सन, कैलास, हौज खास, ग्रीन पार्क तक घूम गया। सब देखने-सुनने के बाद उसने कहा, हम लोग ग्रीन पार्क में छोटा-सा काटेज लेंगे।

—और, और इतनी जगह के रहते ग्रीन पार्क में?

—शहर से जरा दूर और एकान्त है, इसलिए।

—बहुत दूर है।

—रहे दूर। फिर भी यहाँ रहकर शान्ति मिलेगी।

—हाँ, यह ठीक है।

उसके बाद बोली, दो ही तीन महीने के अन्दर मकान ले लेना। उसे मनमाना सँवार-सहेज कर हम अपनी गिरस्ती बसाएँगे।

हाथ से मेरा मुँह अपनी ओर घुमाकर मेम साहब ने कहा, क्यों? कोई एतराज तो नहीं है न?

गरदन हिलाकर मैंने जताया, नहीं।

इधर-उधर की और कुछ बातों के बाद उसने मेरे गले में बाँहें डाल कर कहा, देखो न तुम, व्याह के बाद तुम्हें किस कदर काबू करती हूँ!

—काबू क्या करोगी?

—जो सो खाना-पीना, खामखा की अड्डेबाजी—यह सब बन्द करा दूँगी।

—अच्छा!

—और क्या।

अब की मैंने भी एक हाथ उसके गले में डाल कर कहा, और क्या करोगी मेम साहब?

रुक-रुक कर बोली, वह सब क्यों बताऊँगी?

—अच्छा!

—नहीं तो क्या! बट यू विल सी, आइ विल मेक यू हैप्पी।

—वह मुझे मालूम है। लेकिन बीच-बीच में मुझे डर लगता है।

—क्या डर लगता है?

मैंने धीरे से उसके कानों में कहा, लगता है, मैं शायद जोरू का गुलाम हो जाऊँगा।

मुझे धक्का देकर वह बोली, फिजूल की बात मत करो। मैं होंठों में मुस्कराया तो, पर खासी गम्भीरता के साथ कहा, फिजूल की नहीं मेम साहब ! ब्याह के बाद लगता है, तुम्हें छोड़कर मैं पार्लमेंट या दफ्तर भी नहीं जा सकूँगा !

मेम साहब होंठों में मुस्कुराई—चौबीस घण्टे घर में बैठे क्या करोगे ?

मैंने फिर कानों में कहा, तुम्हारे साथ पड़ा रहूँगा।

वह हँसकर बोली, बेशर्म कहीं के !—जरा रुक कर बोली, पड़ा रहने दूँगी जब तो ?

मैंने कहा, नहीं रहने दोगी तो चीखकर, रो-पीट कर सारे मुहल्ले में शोर मचा दूँगा।

मेम साहब अब मेरे पास से उठ पड़ी। दौड़ कर उसने बरामदे में भागने की कोशिश की। मगर भाग नहीं सकी। दामन पकड़ कर खींचते हुए उसे सोफे पर ले आया।—अगर यह कहूँ कि....

मुक्का तानकर बोली, नाक तोड़ दूँगी।

—सच ?

इस तरह धीरे-धीरे मेम साहब को दिल्ली की मियाद पूरी हुई। वह इतवार की शाम को डी-लक्स एयर कण्डिशण्ड एक्सप्रेस से कलकत्ता लौट गई। वेस्टर्न कोर्ट से स्टेशन रवाना होते समय उसने मुझे प्रणाम किया। मेरी छाती में सिर रखकर जरा रोई।

मैंने उसे आशीर्वाद दिया। दुलारा। उसकी आँखें पोंछ दीं। हफ्ते भर तक हम दोनों ने जानें कितनी बातें कीं, पर विदाई के वक्त दो में से कोई खास कुछ बोल नहीं सका। मैंने सिर्फ इतना ही कहा, अच्छी तरह से रहना। खत देती रहना।

उसने कहा, खान-पान का ठीक रखना। तुम्हारी सेहत लेकिन ठीक नहीं है।

आखिर नई दिल्ली स्टेशन में जब गाड़ी खुलने लगी, तो वह बोली, मुझे लेकिन अब ज्यादा दिन अकेली मत रहने दो। कलकत्ते में मैं अकेली नहीं रह सकती।

मेम साहब चली गई। मैं वेस्टर्न कोर्ट के सूने कमरे में लौट आया।

वड़ा कैसा तो लगने लगा। खाने नहीं गया। डाईनिंग हाल में मुझे न देखकर गजानन कहने के लिए आया। बड़ा आग्रह किया उसने। मैं फिर भी खाने नहीं गया। कह दिया, तबीयत ठीक नहीं है।

गजानन मेरे मन की हालत जरूर ही भांप गया था। इसलिए उसने भी दुबारा जिद नहीं की। लौट गया।

मेम साहव के कलकत्ता पहुँचने की खबर आते न आते मैंने फिर से काम-काज शुरू कर दिया था। पूरा एक हफ्ता पार्लमेंट नहीं गया। साउथ ब्लाक, नार्थ ब्लाक नहीं गया, मंत्री, एम० पी०, अफसर, डिप्लोमेटों के दर्शन नहीं किए। यहां तक कि टाइपराइटर तक को हाथ नहीं लगाया।

दो-एक दिन इधर-उधर का चक्कर काटा, लेकिन उल्लेख करने योग्य खास खबर नहीं मिली। पार्लामेंट में उस समय अक्सर अकसाई चीन की सड़क के लिए तूफान आया करता था। प्रधान मंत्री बीच-बीच में काफी गरम-गरम बोल रहे थे। दो-चार कूटनीतिज्ञों ने लड़ाई की राय दी, पर प्रधान मंत्री उस पर तैयार नहीं हुए। गोकि भाषणों की यह लड़ाई कब तक चल सकती है? ऑल इंडिया रेडियो और पेकिंग रेडियो का मल्लयुद्ध कड़ुवा हो चला था। लड़ाई की कोई तैयारी [illegible] स्वाहिश सरकारी इलाकों में नहीं नजर आई, इससे मेरे मन में [illegible] विश्वास हो गया कि हो न हो, बात-चीत कुछ होगी।

दो-चार सीनियर कैबिनेट मिनिस्टरों के यहाँ कई दिनों तक [illegible] गया, कोई बू-बास नहीं मिली। आखिर साउथ ब्लाक का चक्कर [illegible] शुरू कर दिया। परराष्ट्र मंत्रालय के सेक्रेटरी और स्पेशल [illegible] के तेल लगाने से भी कोई लाभ न हुआ। अन्त तक जब उम्मीद [illegible] बैठा, तो....

अफ्रीका डेस्क के मिस्टर चोनड़ा के यहाँ से गपशप करके निकलने में साढ़े छे वज गए। वहां से निकलते वक्त प्रधान मंत्री के कमरे में झांका, तो देखा, प्रधान मंत्री लिफ्ट पर सवार हो रहे हैं। मैं हड़बड़ाते [illegible] सीढ़ियों से नीचे उतर [illegible]।

प्रधान मंत्री गाड़ी के दरवाजे के सामने पहुँच गए, पायलट [illegible] मोटर साइकिल स्टार्ट कर चुका, वायरलेस और कि[illegible] स्टार्ट हो गई, सिर्फ चल नहीं पड़ी थी—ऐन उसी [illegible] दौड़ते हुए आए। प्रधान मंत्री के कानों में न[illegible]

और फॉरेन सेक्रेटरी फिर लिफ्ट पर सवार होकर ऊपर चले गए।

मैंने नजदीक खड़े होकर सब कुछ देखा। समझ गया, समथिंग वेरी सीरियस या समथिंग वेरी अर्जेंट। नहीं तो फॉरेन सेक्रेटरी इस तरह से प्रधान मंत्री को ऑफिस में वापस नहीं ले जाते।

मैं प्रधान मंत्री के ऑफिस के पास विजिटर्स रूम में बैठा रहा। देखा, बीस-पचीस मिनट के बाद प्रधान मंत्री फिर बाहर निकले। उन्हें देखकर लगा, उनके मन को मानो राहत मिली है।

मैंने और कुछ मिनटों तक इंतजार किया। देखा, प्रधान मंत्री के चले जाने के बाद ही चीनी डिवीजन के ज्वायंट सेक्रेटरी मिस्टर मल्लिक फॉरेन सेक्रेटरी के कमरे से बाहर निकले।

मुझे समझने में कठिनाई नहीं हुई कि हो न हो, चीन ही के बारे में कोई जरूरी खबर आई है।

उस दिन तो मैं लौट आया। दूसरे ही दिन से मिस्टर मल्लिक के ऑफिस और घर का चक्कर काटने लगा। फिर भी कोई नतीजा नहीं निकला।

आखिरकार युनाइटेड नेशन्स डिवीजन के एक सीनियर अफसर से यह पता चला कि सीमा-विवाद के बारे में बातें करने के लिए प्रधान मंत्री ने चाउ एन-लाई को दिल्ली आने का आमंत्रण दिया है और उस आमंत्रण को उन्होंने मान लिया है।

खबर गोकि उस बाजार में विश्वास करने योग्य नहीं थी, पर मैंने छान-बीन करके देखा, बात सही है। दिल्ली का बाजार उस समय बड़ा गरम था, मगर मैंने फिर भी यह खबर भेज दी। ट्रंक कॉल से समाचार-संपादक को ब्रीफ कर दिया। दूसरे ही दिन डबल कॉलम की हेडिंग में सेकंड लीड देकर यह खबर छपी—चाउ एन-लाई दिल्ली आ रहे हैं।

इस खबर के लिए सब ने मुझे पागल कहा। बहुतों ने मेरे संपादक के पास भी इसके खिलाफ में लिखा। परेशान होकर संपादक ने मुझे ट्रंक कॉल किया। मैंने कहा, सब्र तो कीजिए।

हफ्ता पूरा होते न होते लोकसभा में कोश्चन आवर के बाद स्वयं प्रधान मंत्री ने घोषणा की—सीमा-विवाद पर बातचीत करने के लिए हमारे आमंत्रण पर चाउ एन-लाई दिल्ली पधार रहे हैं।

बहुतों के माथे पर बिना बादल के ही गाज गिरी। लेकिन मैं मारे खुशी के नाच उठा। रात को संपादक का तार मिला, बधाई! स्पेशल

इनक्रीमेंट टू फिफ्टी विथ इमीडिएट इफेक्ट। दोनों हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम किया।

उसी समय मेम साहब को तार से यह खुशखबरी भेज दी। दूसरे ही दिन मेम साहब का भी तार मिला, बधाई और प्रणाम स्वीकार करो। चिट्ठी जा रही है।

मेम साहब की चिट्ठी पाने के बाद भी मैं यह नहीं सोच सका था कि भविष्य में और भी कोई अप्रत्याशित घटना मेरे जीवन में घटेगी। लेकिन आखिर घटी। कई महीनों के बाद ही प्रधान मंत्री के साथ यूरोप जाने का दुर्लभ सुअवसर मुझे मिला।

मेम साहब मुझे विदा देने के लिए दिल्ली आई थी। मैं तो अचंभे में आ गया। कहा, मुझे सी-ऑफ करने के लिए तुम कलकत्ते से दिल्ली आई हो!

अपने दोनों हाथों से मेरे दोनों हाथों को झुलाते हुए उसने कहा, तुम पहली बार यूरोप के दौरे पर जा रहे हो और मैं कलकत्ते में बैठी रहूँ?

हिरनी-सी काली आँखें घुमा-फिराकर वह बोली, और जा रहे हो प्रधान मंत्री के साथ! आये बिना मैं रह सकती थी भला!

उस पगली की बातें सुनकर मुझे हंसी आती थी। हजारों हजार लोग विदेश जा रहे हैं! इसके लिए हजार मील दूर से आकर विदा देनी होगी?

दोनों हाथों से मेरे मुखड़े को ऊपर उठाकर मेम साहब ने कहा, आई, खूब किया। इसके लिए तुम्हें कैफियत देनी होगी?

तुम्हीं बताओ दोला भाभी, ऐसी पगली से भी तर्क किया जा सकता है? नहीं किया जा सकता। मैंने भी तर्क नहीं किया।

पासपोर्ट-विसा-फॉरेन एक्सचेंज, पहले से ही सब ठीक था। एयर पैसेज पहले से ही बुक कर लिया गया था। हम दोनों एयर इंडिया के दफ्तर में गये। टिकट लिया। वहां से कनाट प्लेस जाकर कुछ छोटी-मोटी चीजें खरीदीं। कॉफी हाउस में कॉफी पी और वेस्टर्न कोर्ट लौट आए।

लौटते हुए रास्ते में मेम साहब ने कहा, देखो, अपना सारा काम-काज आज ही कर-करा लेना। कल कोई काम नहीं कर पाओगे।

—क्यों? कल क्या होगा?—मैंने जानना चाहा।

गरदन टेढ़ी करके, आँखें नचा करके उसने कहा, वाह ! परसों सुबह तो चले ही जाओगे। कल का दिन भी मैं नहीं पा सकूँगी ?

लंच के बाद थोड़ा आराम करके बाकी काम-धाम करने के लिए निकला। एक्सटर्नल अफेयर्स मिनिस्ट्री जाकर वहाँ से भेंट-मुलाकात करके साँझ होते ही लौट आया।

आकर देखता क्या हूँ कि मेम साहब ने एक खुशनुमा बालूचर की साड़ी पहन रक्खी है। कान ढँकते हुए खूब दबाकर करीने से बाल बाँधा है, बड़े-से जूड़े में चाँदी के काँटे खोंस लिए हैं। चाँदी की जंजीर में तिब्बती लॉकेट लगा एक हार और कुछ चाँदी के दूसरे जेवर पहने हैं। कपाल पर टुकटुक लाल बड़ा-सा टीका और आँखों में शायद सुरमे की लकीर भी खींची थी।

कमरे में दाखिल होते ही मेम साहब पर नजर पड़ी, तो मैं ठिठक गया। मुँह को नीचे झुकाकर आँखें जरा टेढ़ी करके उसने मेरी तरफ ताका। जरा हँसी।

मैं नहीं हँसा। हँस नहीं सका। पहले की ही भाँति एकटक उसे देखता रह गया।

वह फिर मेरी तरफ देखकर जरा मुस्कुराई। पूछा, आँखें गड़ाकर ऐसे देख क्या रहे हो ?

—तुमको।

बुद्धू जैसी होकर उसने फिर कहा, मुझको ?

—समझ नहीं रही हो ?

वह जरा हँसी। बोली, सो तो समझ गई, लेकिन इस तरह से देखने का क्या है ?

—क्यों देख रहा हूँ, यह समझ नहीं पा रही हो ? देखने की कोई वजह नहीं है क्या ?

मेम साहब ने बात को और नहीं बढ़ाया। देह को जरा डुलाती हुई धीरे कदम से मेरे सामने आई। मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए। मुँह को जरा टेढ़ा करके पूछा, बहुत बुरा लग रहा है ?

मैं लगभग चीख उठा, बेहद ! बेहद !

—सचमुच खराब लग रहा है ?

—उतना खराब या नहीं, यह तो नहीं जानता, मगर तुमको मैं सह नहीं पा रहा हूँ।

इस बार वह वास्तव में कुछ सोच में पड़ गई। पूछा, तो यह सब उतार दूँ ?

अब तक वह मेरे सामने खड़ी होकर बात कर रही थी। मैंने उसे अपने बगल में खींचकर कहा—

हे निरुपमा,
चपलता यदि आज होवे, करना क्षमा!

दोला भाभी, मेम साहब भी कुछ नहीं बोली। दोनों हाथों से मेरा हाथ पकड़ कर सर को जरा झुका कर गाने लगी—

मैं रूप से नहीं, प्रेम से तुमको भुलाऊँगी!

मैंने पूछा, और क्या करोगी ?

गाकर ही वह बोली—

भरूँगी न भूषण भार,
दूँगी नहीं फूलों का हार
सुहाग की माला गले में झुलाऊँगी!

मैंने कहा, सच ?

—हजार बार, लाख बार सच!

गजानन को बुलाकर मेम साहब ने चाय लाने को कहा। चाय आई। चाय पीते-पीते मैंने पूछा, तुम क्या एयर इंडिया या टूरिस्ट ब्यूरो की नौकरी के लिए इंटरव्यू देने जा रही हो ?

—ऐसा क्यों पूछ रहे हो ?

—नहीं तो चाँदी के इतने जेवर क्यों लाद लिए हैं ?

—मुझे बड़ा अच्छा लगता है। तुम्हें बुरा लग रहा है ?

—पागल! बुरा क्यों लगेगा ? बड़ा अच्छा लग रहा है।

—सच ?

—और क्या, झूठ कह रहा हूँ ?

फिर मैंने कहा, जो भी हो। इतनी बनी-ठनी क्यों ?

—तुम्हें अच्छा लगेगा, इसलिए।

साँस लेकर फिर बोली, इसके सिवा....

—इसके सिवा क्या ?

मुँह को जरा छिपा कर बोली, यूरोप जा रहे हो, क्या पता कितनी औरतों से परिचय होगा। इसीलिए जिसमें तुरन्त भूल न जाओ....

—मुझसे आज भी तुम्हें इतना खतरा है ?

जरा लाड़ करके मेम साहब बोली, अरे नहीं जी, नहीं। यों ही जरा सज-सँवर गई।

उस दिन की साँझ और रात तथा पूरा का पूरा दूसरा दिन मेम साहब को दिया था।

हवाई अड्डा जाने के पहले मेम साहब ने मुझे प्रणाम किया। मैंने उसे आशीर्वाद दिया। वह फिर भी चुपचाप खड़ी रही। लगा, कुछ कहेगी। पूछा, कुछ कहोगी ?

वह बिना बोले सिर नीचा किए होंठ चबाकर मुस्कुरा रही थी। उसके मुँह को जरा ऊपर उठाकर मैंने पूछा, क्यों, कुछ कहना है ?

बड़ी देर तक बार-बार पूछने के बाद उस दईमारी ने मेरे कानों में क्या कहा मालूम है दोला भाभी ? कहा, मुझे जरा और अच्छी तरह से दुलार लो।

करता भी क्या ? विदाई की घड़ी का यह अनुरोध रखना ही पड़ा। उसके शरीर में मैं एक निशान छोड़ गया, जिसे सिर्फ मेम साहब ने ही देखा था, दुनिया के और किसी ने नहीं।

पालम की मिट्टी छोड़ कर मैं चला गया।

घूमते-घामते लन्दन पहुँचा, तो एक साथ ही मेम साहब की चार-पाँच चिट्ठियाँ मिलीं। उसने बार-बार यही लिखा था कि लौटते वक्त सीधे दिल्ली न जाकर तुम कलकत्ता आओ तो बड़ा अच्छा हो। कालेज में टेस्ट शुरू हो गया है, लिहाजा छुट्टी नहीं ली जा सकती। और तुम लौटोगे, मैं हवाई अड्डे पर तुम्हारी अगवानी न करूँ, यह नहीं हो सकता।

अन्त में लिखा था, तुम कब, किस फ्लाइट से किस समय दमदम पहुँचोगे, यह और किसी को मत लिखना जिसमें दमदम में भीड़ न हो जाय। अकेली मैं ही तुम्हें रिसीव करूँगी, कोई तीसरा आदमी जिसमें हवाई अड्डे पर न रहे।

मुझे सी-ऑफ करने के लिए मेम साहब कलकत्ते से दौड़ी-दौड़ी दिल्ली आई थी। सो, मैं उसके इस आग्रह को टाल नहीं सका। बॉण्ड स्ट्रीट में एयर इण्डिया के दफ्तर में जाकर कुछ और पैसे दिए। टिकट को बदलवा लिया। रवाना होने से पहले मेम साहब को केबिल भेजा—रीचिंग दमदम एयर इण्डिया सैटरडे मॉर्निंग। मजाक से यह भी लिखा, डोंट इनफॉर्म एनीबडी।

ऑरेंज कोर की ताँत की साड़ी, ऑरेंज रंग का ब्लाउज पहने माथे पर आँचल डाले रेलिंग के पास धूप में मेम साहब मेरे इन्तजार में खड़ी थी। मेरे दोनों हाथों में ब्रीफकेस, टाइपराइटर, केबिन बेग और ओवर-कोट था। मैं हाथ नहीं हिला सका। सिर्फ मुस्कुरा कर जता दिया, मैं आ गया।

कस्टम्स इमीग्रेशन काउण्टर पार करके बाहर आते ही उसने मेरे हाथ से टाइपराइटर और केबिन बेग ले लिया। टर्मिनल बिल्डिंग से बाहर निकलते समय पूछा, अच्छे तो हो?

सिर हिलाकर कहा, हाँ। और तुम?

—मैं भी मजे में हूँ।

टैक्सी पर सवार होने के बाद मेम साहब ने मुझे प्रणाम किया। उसके सर पर हाथ रखकर मैंने कहा, सुखी रहो मेम साहब!

—बेशक सुखी रहूँगी।

मैंने कहा, यह साड़ी और ब्लाउज पहने तुम खूब फबती हो।

बहुत खुश होकर मुस्कुराते हुए उसने पूछा, सच कह रहे हो?

—सच कह रहा हूँ; बड़ी शान्त, स्निग्ध, मीठी लग रही हो।

जरा देर में फिर कहा, जी में आ रहा है, तुमसे लिपट कर दुलारूँ तुम्हें।

मेम साहब ने हाथ जोड़कर कहा, दुहाई तुम्हारी, इस टैक्सी में दुलारने मत लग जाना।

दोला भाभी, मैं और मेम साहब इसी तरह से बढ़ते जा रहे थे। मैं दिल्ली में रहता था, वह कलकत्ते में रहती थी। लुक-छिपकर, मझली-दी को फुसलाकर कभी वह दिल्ली आ जाती थी, कभी मैं ही कलकत्ते चला जाता था। बीच-बीच में हमारी भेंट हुआ ही करती थी। ज्यादा दिनों तक भेंट नहीं होने से हमें भी चैन नहीं मिलती थी।

इस बीच एक जहाजी अफसर से मेम साहब की मझली दीदी का ब्याह हुआ। ब्याह का न्योता मिलने पर मैं कलकत्ते गया था। अच्छी-सी एक भेंट भी दी थी।

मझली-दी के ब्याह में गया, सो अच्छा ही किया। उस मौके पर उसके परिवार के बहुतों से मेरा परिचय हुआ। और, उसी समय मझली-दी ने हम लोगों के मामले को पक्का कर दिया था। मेरा हाथ पकड़ कर मझली-दी मुझे खींचती हुई माँ के पास ले गई। कहा, माँ, इस रिपोर्टर से

तुम्हारी छोटी बेटी का व्याह हो, तो कैसा रहे ?

ऐसी घटना के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं था। शर्म के मारे मेरी आँखें, मुँह, कान सूर्ख हो गए। फिर भी मैंने बड़ी मुश्किल से कहा, आः मझली-दी, कर क्या रही हैं आप ?

मझली-दी ने तुरन्त कहा, अब बनिए मत। चुप रहिए। मझली-दी ने फिर कहा, क्यों, तुम्हें पसन्द नहीं है माँ ?

इस आसानी से उस काली-कुरूप लड़की को मेरे जैसे सुपात्र के हाथों सौंप सकेंगी, मेम साहब की माँ यह ख्वाब में भी नहीं सोच सकी थीं। बोलीं, तुम लोगों को पसन्द हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?

व्याह का घर। घर में और भी बहुत-से लोग भरे हुए थे। उन सबके सामने ही मझली-दी ने मेरे गले में एक धक्का देकर कहा, लीजिए, माँ को प्रणाम कीजिए।

शर्म से मेरा तो सर गड़ गया। मगर क्या करूँ, प्रणाम किया। और तब मझली-दी मेरे सर पर सवार हो गईं—लीजिए, अब मुझको प्रणाम कीजिए।

मैंने बात काटी, आपको क्यों प्रणाम करूँगा ?

आँखें तरेर कर मझली-दी ने कहा, आः ! जो कहती हूँ, वही कीजिए, नहीं तो सारा गुड़ गोबर कर दूँगी।

अगल-बगल के सभी लोग मझली-दी की बातों को निगल रहे थे और मुँह बाये मुझको देख रहे थे।

मैंने इधर-उधर देखकर सबकी नजर बचाकर मझली-दी को कनखी से इशारा किया।

जहाजी अफसर को पाकर मझली-दी के प्राणों में उस समय खुशी की बाढ़ उमड़ी हुई थी। मेरे इशारे का उस समय वह ख्याल क्यों करने लगी ! इसलिए वह सबके सामने ही बोल बैठीं, वह सब इशारा-बिशारा छोड़िए, पहले प्रणाम कीजिए, नहीं तो...

मेरी हालत का तुम जरा अन्दाज लगा लो दोला भाभी ! व्याह का घर। चारों तरफ खचाखच भीड़ और तिस पर रणचण्डी की मूर्ति-सी बहू के बाने में मझली-दी। बहादुरी दिखाकर ज्यादा तर्क करने से सारा राज फाश करके जानें वह क्या कर बैठतीं ! झट से प्रणाम करके मैं भागा जा रहा था, पर मझली-दी ने मुझे पकड़ कर कहा, अहा-हा। जरा रुकिए। हुँकार-सी करके बोलीं, वह देखिए, दीदी खड़ी हैं। उनको प्रणाम

कीजिए।

मैंने जरा आगा-पीछा किया कि मझली-दी ने फिर धमकी दी, खबरदार रिपोर्टर ! बात न मानने से....

दीदी को भी प्रणाम किया।

दिल्ली जाने के दिन मेम साहब स्टेशन पर आई थी। बोली थी, सुनते हो, तुम सबको खूब पसन्द आए।

प्लेटफार्म पर सबके सामने ही उसने मुझे प्रणाम किया। मैंने उसे आशीर्वाद दिया। दिल्ली मेल ने सीटी बजा दी।

सत्रह

कभी सोच भी नही सका था कि मझली दीदी इतनी जल्दी हमारा इतना बड़ा उपकार करेंगी। सिर्फ सोचा नही था इतना ही नही, कल्पना भी नही की थी। मेम साहब मुझे प्यार करती थी, मैं मेम साहब को प्यार करता था। उस प्रेम में कोई दगा, कोई मिलावट नहीं थी। हम निश्चित जानते थे कि हम दोनों का मिलन होगा। हजार बाधा-विपत्ति चाहे आए, हम आखिर मिलते ही।

लेकिन तो भी मझली दीदी की इस मदद, इस उपकार की जरूरत थी और उनके हम दोनों ही एहसानमन्द थे।

असल में मझली दीदी बराबर ही मुझसे स्नेह करती थी। मुझे भी वह बहुत अच्छी लगती थी। मैं भी उन्हें पहले ही दिन से अच्छा लग गया था। कुछ दिनों में उन्होंने मेरे और मेम साहब के प्रेम की गम्भीरता का अनुभव किया। इसीलिए मन ही मन उन्होने छोटी बहन को मेरे हाथों सौंप दिया था।

अब तो उन्होंने सारी दुनिया को ही बता दिया कि मेम साहब मेरी है, मै मेम साहब का हूँ। लाखों-लाख, करोड़ों-करोड़ की जायदाद के हस्तान्तर की बात पक्की हो गई। सिर्फ एक सब-रजिस्ट्रार का दस्तखत और मुहर लगना बाकी रह गया। इस काम के लिए मैं इतना चिन्तित नहीं था।

मेम साहब ने तो बहुत पहले ही कहा था, पर मैंने किराये का मकान लेने के बारे में खूब सीरियसली नहीं सोचा था। उस बार कलकत्ते से

लौटा, तो वास्तव में ग्रीन पार्क का चक्कर लगाना शुरू किया। दो-चार मित्रों से भी कहा।

दो-चार मकान भी देखे, लेकिन वैसा पसन्द नहीं आया। कुछ दिन और इन्तजार किया। कुछ और मकान देखे। दोस्तों से और कुछ राय-मशविरा किया। कई मकानों के बारे में मोल-भाव भी किया।

इस तरह से दो महीने के करीब बीत गए, तब तीन सौ रुपए में तीन कमरे का एक छोटा-सा कॉटेज पा गया। मकान मुझे पसंद आया। मेहर अली रोड से बहुत ज्यादा होगा तो दो सौ गज का फासला। ग्रीन पार्क मार्केट वहाँ से बहुत नजदीक था। तीन-चार मिनट का रास्ता। बाजार दूर होने से मेम साहब के लिए तकलीफदेह होता। और, वह मकान भी बहुत अच्छा था। कोने का प्लाट। बीच में और बगल में मझोले आकार का लॉन। गेट के अंदर से घर के भीतर गाड़ी रखने का इंतजाम था। ड्राइंग-डाइनिंग रूम काफी बड़ा। बीस बाइ पन्द्रह। सोने का एक कमरा बड़ा, एक छोटा। दोनों ही सोने के कमरे में लाफ्ट और वार्डरोब। बड़े सोने के कमरे और ड्राइंग-डाइनिंग रूम के बीच में पश्चिमी ढंग का नहान घर। घर के अंदर भारतीय ढंग का पाखाना। सामने का बरामदा लंबा तो काफी था, उतना चौड़ा नहीं था। भीतर का बरामदा चौकोर-सा और बड़ा। रसोई? दिल्ली के नए मकानों में जैसी होती है, वैसी ही। आलमारी, मीट सेफ, सिंक कपबोर्ड—सब था। चूंकि आलमारियाँ थीं, इसलिए अलग से कोई स्टोर नहीं था, पर छत पर बिना दरवाजे का एक कमरा था।

दोनों लॉन बेशक अच्छे थे, पर दिल्ली के दूसरे मकानों की तरह इस घर में फूल के पौधे नहीं थे। जो इसके किराएदार थे पहले, उन्हें जरूर ही फूलों का शौक नहीं रहा होगा। लेकिन हाँ, सामने के बरामदे के एक ओर बड़ी घनी माधवीलता थी।

मुख्तसर में, कुल मिलाकर मकान मुझे खूब अच्छा लगा था और मेरे जैसे डकैत के पल्ले पड़कर फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन की सभा-नेत्री होने के बावजूद मेम साहब को इस मकान में रहने में कोई असुविधा नहीं होगी, इसलिए वह और अच्छा लगा था।

मकान ले लेने के बारे में मेम साहब को कुछ भी नहीं बतलाया। सोचा, उसके दिल्ली आने के पहले ही घर को सजा-सँवार कर उसे चौंका दूँगा। यह भी सोचा, वेस्टर्न कोर्ट छोड़कर इसी मकान में आ जाऊँ। फिर सोचा, न, यह नहीं होगा। इस घर में अकेले रहूँगा? नामुमकिन। तै

किया, उसके साथ ही इस घर में प्रवेश करूँगा।

अपने इस नए मकान में गजानन को रख दिया। कहा, गजानन, इसकी देखभाल करना। इसके लिए हर महीने में तुम्हें कुछ दिया करूँगा।

गजानन ने साफ सुना दिया, नहीं, छोटे साब, आप से मेरा हिसाब करते न बनेगा। जो लेना होगा, मैं बीबी जी से ले लूँगा।

गजानन बस से आया-आया करता। ड्यूटी खत्म होने के बाद वह एक मिनट को भी देर नहीं करता। सीधे वहीं चला जाता।

बचे रुपयों से मैंने कुछ-कुछ सामान खरीदना रू किया। एक सोफा सेट खरीदा, डबल बेड की एक खाट ली। अपनी किताबें वेस्टर्न कोर्ट से वहाँ ले गया। जो डेकोरेशन पीस मैं विदेश से ले आया था, उन्हें सजा दिया।

दूसरे एक महीने में सभी कमरों के परदे खरीदे। इसके अलावा जब जैसी धुन सवार हुई और जैसी जुर्रत रही, तब-तब कॉटेज इंडस्ट्रीज एम्पोरियम या और किसी स्टेट एम्पोरियम से कुछ-कुछ खरीद कर घर को सँवार रहा था।

गजानन बड़ी रहमदिली से घर की देखभाल करता था। काफी दिनों तक वेस्टर्न कोर्ट में काम करते रहने से उसमें अच्छी रुचि आई थी। उसने मनी प्लांट, कैकटस, फर्न से घर को बड़े खुशनुमा ढंग से सजाया।

मै जब-जब दिल्ली से बाहर गया, फरमाइश कर-करके गजानन ने छोटी-मोटी सुंदर-सुंदर चीजें मँगवाईं। हैदराबाद से दस-पंद्रह रुपए की कीमत के उडकार्विंग ले आया, बनारस से पत्थर के सामान लाया, कलकत्ते से बाँकुड़ा का टेराकोटा घोड़ा और कृष्णनगर के खिलौने लाया। उड़ीसा से सैंडस्टोन की कोनारक मूर्ति, कालीघाट और कटक के पट भी ड्राइंग रूम के लिए ले आया था।

किताब के सेल्फ के दोनों कोने पर दो तसवीरें रक्खी थीं। एक प्रधान मंत्री के साथ अपनी तसवीर और एक मेम साहब का पोर्ट्रेट।

इधर इतना कुछ जो कर रहा था, इसकी कोई खबर मेम साहब को नहीं दी थी। जान कर ही नहीं दी। इस बीच बम्बई से मझली-दी की चिट्ठी आई—

भाई रिपोर्टर,

लड़ाई लड़े बिना ही जो योद्धा हों, भारतीय जल-सेना के ऐसे ही एक

अफसर से शादी करके किस मुसीबत में पड़ी हूँ मैं ! गिरस्ती करने में रोज मुझसे लड़ाई लड़ता है, रोज ही हार जाता है। रोज ही कैद करती हूँ, रोज ही छोड़ती हूँ। लेकिन बार-बार तो युद्ध-बंदी के प्रति इतना उदार व्यवहार नहीं किया जा सकता। इस बार इसीलिए उसे सजा दी है, दिल्ली घुमा लाना पड़ेगा। लेकिन भाई, यह बात कबूल करती हूँ कि बंदी ने कहते ही, बिना विरोध किए यह सजा स्वीकार कर ली।

कुछ ही दिनों में तुम भी बंदी बनने वाले हो। सजा तुम्हें भी उठानी पड़ेगी। लेकिन अपनी मेम साहब से सजा पाने के पहले ही हम दोनों तुम्हें सजा देने के लिए दिल्ली आ रहे हैं।

राष्ट्रपति जी की बड़ी इच्छा है कि हम राष्ट्रपति भवन में ठहरें। लेकिन मेरे भाई, तुम्हारे यहाँ नहीं ठहर कर राष्ट्रपति भवन में ठहरना क्या अच्छा दीखेगा ? तुम्हारा जी दुखाकर मैं राष्ट्रपति भवन में नहीं ठहर सकती ! इसके लिए मुझको माफ करना।

अगले बुधवार को फ्रंटियर मेल के वक्त स्टेशन पर मौजूद रहना मत भूल जाना। तुम वहाँ नहीं मिलोगे तो न चाहते हुए भी लाचारी से राष्ट्रपति भवन जाना पड़ेगा !

—तुम्हारी मझली-दी

बुधवार को मैं फ्रंटियर मेल के वक्त पर स्टेशन गया था। मझली-दी वगैरह को अपने ग्रीन पार्क वाले मकान में ले आया था। मझली-दी ने अपनी अब तक की जिंदगी कलकत्ते में चार कमरे के तिनतल्ले फ्लैट में बिताई थी। उन्हें मेरा ग्रीन पार्क वाला मकान बेहद पसंद आया।

बिना युद्ध किए ही जो योद्धा थे, उन सौभाग्यशाली कैदी ने मेरा घर-द्वार देखकर कहा, देख-सुन कर लग रहा है कि श्रीमती जी शॉपिंग करने गई हैं। बस, लौटकर आईं नहीं कि ड्राइंग रूम में एक प्याला कॉफी पीकर बेड रूम में जाकर लुढ़क जायेंगी।

इसके बाद उन्होंने पूछा, श्रीमती जी के लिए इतनी तैयारियाँ करने के बाद इस घर में अकेले रहने में आपको तकलीफ नहीं होती ?

मैंने कहा, मैं तो यहाँ नहीं रहता हूँ। मैं वहीं, वेस्टर्न कोर्ट में ही रहता हूँ।

मेरी बात सुनकर वे दोनों अवाक् रह गए थे ! शायद खुश भी हुए। खुश शायद यह सोच कर हुए हों, अकेले ही भोग करने के लिए मैंने इतनी

तैयारियाँ नहीं की हैं।

मझली-दी तीन दिन रही थीं। कभी वे दोनों, कभी हम तीनों ही एक साथ घूमते रहे। दिल्ली से उनके लौटने के पहले दिन शाम से काफी रात तक हम लोग उस घर के ड्राइंग रूम में बैठे गप्पें मारते रहे।

बातों ही बातों में मझली-दी ने कहा, गिरस्ती बसाने की सारी तैयारियाँ ही तो आपने कर ली हैं। शादी के समय में आपको क्या दूँ, कहिए तो?

मेरे जवाब देने से पहले ही केदी जी बोल उठे, जो-सो न देकर फोम्ड रबर की एक गद्दी देना। उस पर सोकर इन्हें आराम मिलेगा और हर रोज तुम्हें धन्यवाद देंगे।

ऐसी ही बेसिर-पैर की बातें करते-करते काफी रात हो गई थी। मझली-दी ने कहा, आप अब आज वेस्टर्न कोर्ट मत जाइए, यहीं रह जाइए।

मैंने हँसकर कहा, नहीं-नहीं, यह कैसे होगा!

—क्यों नहीं होगा?

—वहाँ जरूर ही जरूरी चिट्ठी-विट्ठी आई होगी।

मझली-दी यहीं पर बोल उठीं, इतनी रात को अब चिट्ठी-विट्ठी देखकर क्या कीजिएगा? कल सुबह देख लीजिएगा।

मैंने कहा, नहीं मझली-दी, मैं अभी इस मकान में नहीं रहूँगा।

इस पर मझली-दी हँसीं। बोलीं, क्यों? प्रतिज्ञा कर रखी है कि अकेले इस मकान में नहीं रहेंगे?

मैंने कहा, कुछ नहीं, सिर्फ जरा मुस्कुराया। जरा देर बाद उनसे इजाजत लेकर वेस्टर्न कोर्ट चला आया।

दूसरे दिन जब उन्हें विदा करने गया तो मझली-दी ने मुझे जरा अकेले में बुला लिया। बोलीं, आपकी मेम साहब बम्बई कभी नहीं गई हैं। अगली छुट्टियों में इसीलिए वह हम लोगों के यहाँ आएगी। [illegible] कई दिनों के लिए दिल्ली भेज दूँगी। ठीक है न?

मैंने हँसते-हँसते कहा, आपकी मिहरबानी।

मझली-दी बोलीं, इसमें मिहरबानी का क्या है? ब्याह के [illegible] बार आकर सब कुछ देख-सुन ले।

मैंने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया। [illegible] खड़ा रहा। गाड़ी छूटने से पहले [illegible] ने कहा, [illegible]

तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं है न ?

मैं सिर झुकाए ही रहा। कहा, उस समय पार्लमेंट का बजट सेसन जो चलता रहेगा।

—सो चलता रहे। ज्यादा देरी अब ठीक नहीं लग रही है।

जाते-जाते वह बोलीं, ठीक से रहना भाई। चिट्ठी देना।

मझली-दी के चले जाने के बाद सचमुच ही बड़ा बुरा लगने लगा। मैंने किसी निकटतम की विदाई की पीड़ा का अनुभव किया।

कई दिनों के बाद मेम साहब की चिट्ठी मिली।

"....तुमने क्या कोई टोटका करके या जंतर-तावीज देकर मझली-दी को मुट्ठी में किया है ? उसने माँ को छै पन्ने की और मुझे चार पन्ने की चिट्ठी लिखी है। पूरी चिट्ठी में बस तुम्हारा ही जिक्र है, तुम्हारी ही बड़ाई है। तुम जैसा लड़का शायद आजकल मिलना मुश्किल है। तुमने उन लोगों की बड़ी खातिर की है क्या ! बहुत ही आराम से रहे वे लोग।

माँ को चिट्ठी में उसने फागुन में व्याह कर देने को लिखा है। तुम्हारी भी शायद यही राय है। माँ को कोई एतराज नहीं है। आज मझली-दी की चिट्ठी को माँ ने दीदी के पास भेज दिया।

कई दिनों के बाद ही हमारा कॉलेज बंद हो जायगा। छुट्टियों में मैं मझली-दी के पास जाऊँगी। यदि मझली-दी को किसी तरह से मैनेज कर सकी, तो दो हफ्ते वहाँ रह कर एक हफ्ते के लिए तुम्हारे पास जाऊँगी।

यहाँ का सब समाचार मोटे तौर पर अच्छा है। लेकिन इधर खोकन के लिए कुछ परेशानी में पड़ गई हूँ। लग रहा है, वह राजनीति में मशगूल हो गया है। अभी तो पढ़ाई-बढ़ाई ठीक ही चल रही है, किन्तु डर लगता है, राजनीति में कहीं ज्यादा डूब गया तो पढ़ाई का जरूर ही नुकसान होगा। वह अगर किसी वजह से बिगड़ जाय, तो इसकी जिम्मेदारी कुछ-कुछ मेरी भी होगी। सबसे ज्यादा बेचारे विपत्नीक ताऊ जी को चोट लगेगी।"

मैंने मेम साहब को लिखा, मझली-दी ने जो लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। फागुन में पार्लमेंट का सेशन होता रहेगा। सो हो। भाड़ में जाय पार्लमेंट। फागुन में मैं व्याह जरूर करूँगा। विलंब अब बरदाश्त नहीं हो रहा है। तुम मुझसे भी ज्यादा अधीर हो उठी हो, यह मुझे मालूम है।

और भी बहुत कुछ लिखा था। अंत में खोकन के लिए लिखा, तुम

उसके लिए उतनी फिक्र न किया करो। बंगाली लड़के जवानी में या तो राजनीति, नहीं तो काव्य-साहित्य की चर्चा जरूर करेंगे। शरत्, हेमंत, शीत, वसंत—इन ऋतुओं की तरह यह सब भी चिरस्थायी नहीं है। दो-चार दिन इनक्लाव-जिंदाबाद करके डलहौजी स्क्वायर के स्टीम रोलर के नीचे पड़ते ही सब बदल जायगा। खोकन भी बदल जायगा।

यह भी लिखा, तुम खोकन के लिए इतना सोचा न करो। हजार हो, अब वह बड़ा हो गया है, कालेज में पढ़ रहा है। इसके सिवाय उसके पिता तो हैं। इस उमर में लड़के-लड़कियों की आजादी में दखल देने से भले का बुरा होता है बहुत बार। तुम्हारा भी वैसा ही हो सकता है। लिहाजा जरा इसका ख्याल करके चलना।

अंत में लिखा, खोकन जब छोटा था, जब उसे माँ का स्नेह, बहन का प्यार देकर अनसोची आफत के हाथों से बचाने की जरूरत थी, तब तुमने और मझली-दी ने वैसा किया। तुम लोगों के स्नेह की छाया में मातृविहीन एक शिशु आज जो जवान हो गया, सिर ऊँचा किए खड़ा हो गया, तुम लोगों के लिए यही पुरस्कार काफी है। इससे ज्यादा की उम्मीद करने से ही सकता है कि कष्ट पाओ।

मैं तुमसे कहूँ दोला भाभी, खोकन के बारे में मैं इतना नहीं लिखता। लेकिन इन दिनों मेम साहब खोकन के लिए इतना ज्यादा करने लगी, इतना ज्यादा सोचने लगी कि बिना लिखे मुझसे नहीं रहा गया। इधर की उसकी सारी चिट्ठियों में खोकन का जिक्र जरूर रहता था। खोकन का यह हुआ है, तो वह हुआ है। खोकन को क्या हो गया, खोकन का क्या होगा ? खोकन क्या आदमी नहीं बनेगा ? आदि-इत्यादि हजार किस्म की बातें लिखती। तुम्हें तो मालूम ही है कि आजकल तो अपने ही खोकन को आदमी बनाने के पीछे लोग पागल हो उठे हैं, और फिर, स्नेह-प्यार देना सहज है, लेकिन उसके बदले में मर्यादा पाना बहुत ही कठिन है।

खोकन के लिए उसका इतना स्नेह-प्यार देखकर मुझे सचमुच ही डर लगता था। डर लगता था कि कभी यदि खोकन उसके स्नेह की कीमत न आंके, मर्यादा न दे, तो वह दुःख, वह चोट झेलना उसके लिए तक-लीफदेह होगा।

इस खत के जवाब में मेम साहब ने क्या लिखा, जानती हो ? लिखा, तुमने जिस आसानी से खोकन के बारे में मुझे इतनी नसीहत और सलाह दी है, मेरे लिए उसी आसानी से उन सब को मान लेना संभव नहीं है।

उसकी वजह वड़ी सीधी है। अपनी माँ को खोए हुए छै साल के खोकन को लेकर ताऊ जी हमारे यहाँ आए थे। यह वहुत दिन पहले की वात है। माँ का स्नेह देने की क्षमता तो हममें नहीं थी, पर मैंने, मझली-दी ने और दीदी ने उसे पाला। उसे खिलाया, पिलाया, लोरियाँ सुना-सुना कर अपनी गोद में सुलाया किया। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, सालों हम दोनों वहनें खोकन को अपनी छाती से लगाए सोती रहीं। कुछ सालों के वाद दीदी का व्याह हो गया। तव मैंने और मझली-दी ने उसकी देख-भाल की। वह कभी वीमार पड़ा तो मझली-दी ने छुट्टी ली, मैं कालेज नहीं गई, माँ ने मन्नतें मानीं। और, मझली-दी का भी व्याह हो गया। अव खोकन की देख-रेख के लिए अकेली मैं ही रह गई हूँ। तुम भी कलकत्ता छोड़कर चल दिए। माँ-वावूजी को छोड़ दूँ तो खोकन के सिवाय मेरा यहाँ और कौन-सा आकर्षण है? समय भी मुझे वहुत है। जभी तो, उसके वारे में सोचे बिना उपाय क्या है!

मैंने इस चिट्ठी का जो जवाव दिया, उसमें खोकन के वारे में खास कुछ नहीं लिखा। सोचा, मेम साहव छुट्टियों में जव दिल्ली आएगी, तो यहीं वात करूँगा।

छुट्टी में मेम साहव वंवई गई थी। एक वार जी में आया, दो दिन के लिए वंवई हो आऊँ वड़ा मजा आता। लेकिन अंत तक मेरा जाना न हो सका। मझली-दी के यहाँ सत्रह-अठारह दिन रह कर कलकत्ता लौटते हुए मेम साहव दिल्ली आई थी। कलकत्ते में सभी जानते थे कि वह वंवई में ही है। मेम साहव मेरे पास सिर्फ चार-पाँच दिन ही थी।

मेम साहव को ग्रीन पार्क वाले मकान में ले गया था। उसे मकान खूव जँचा। वोली, लवली!

वोली, इसी वीच तुम इतना सजा-सँवार लोगे, मैं यह सोच भी नहीं पाई थी।

मैंने कहा, शादी के वाद तो तुमको जहाँ-तहाँ नहीं रख सकता!

अपनी उन लंवी काली भौंहों को तान कर उसने कहा, इज इट?

—और क्या?

उतना अच्छा वगीचा लगाने के लिए मेम साहव ने गजानन को अशेष धन्यवाद दिया। उससे पूछा, गजानन, वताओ, तुम्हें क्या चाहिए?

गजानन ने कहा, अभी नहीं वीवी जी। पहले आप आ जाओ, सारा

कुछ समझ-बूझ लो, उसके बाद हिसाव-किताब होगा।

दोपहरी ढल आई थी। मैंने कुछ नाश्ता और कॉफी के लिए गजानन को बाजार भेज दिया। वह उधर के सोफे से उठकर मेरे पास आई। मेरा एक हाथ अपने हाथ में लेकर सिर झुकाए जानें क्या तो देख रही थी, जानें क्या सोच रही थी। मैं कुछ बोला नहीं, चुप ही बैठा रहा। कुछ मिनट इसी तरह से गुजर गए। उसके बाद वैसे ही सिर झुकाए वह बोली, सच, मुझे सुखी करने के लिए तुम कितना क्या कर रहे हो।

—क्यों, तो क्या मैं सुखी नहीं हूँगा ?

—क्यों नहीं, फिर भी इतना बड़ा मकान, इतनी सारी तैयारियाँ तो तुमने मेरे ही लिए की हैं।

मैंने मजाक किया, तो इसके लिए कुछ इनाम दो न !

मेम साहब हँस पड़ी। बोली, तुम्हारे दिमाग में बस वही एक चिन्ता है।

—तुम्हारे दिमाग में यह चिन्ता नहीं आती है ?

वह चिल्ला कर बोली, नो-नो-नो।

पल भर के लिए मैं भी चुप हो गया। जरा देर बाद बोला, इधर तो चिल्ला कर खूब नो-नो कर रही हो और उधर शादी से पहले ही बाल-बच्चे का घर ठीक कर रही हो।

मैं सोच नहीं सका था कि मेम साहब इस तरह से फर्स्ट ओवर के फर्स्ट बॉल में ही बोल्ड हो जायगी। उसके पास मेरी बात का कोई जवाब नहीं था। वह सिर्फ इतना ही बोली, तुम जैसे डकैत के साथ घर-गिरस्ती करने से भूत-भविष्य को सोचे बिना उपाय है भला !

ग्रीन पार्क से वेस्टर्न कोर्ट लौट आने के बाद मेम साहब ने कहा, सुनो, मझली-दी ने कहा था, मैं तुमसे पूछकर बता दूँ कि ब्याह में तुम्हें क्या चाहिए।

मैंने भवें सिकोड़कर कहा, अरे, मझली-दी नहीं जानती हैं ?

—तुमने उनसे कहा है क्या ?

—एक वार ? हजार वार कहा है।

मेरा गुस्सा देखकर वह जरा घबरा गई। बोली, शायद हो कि किसी कारण से....

—इसमें कारण-वारन कुछ नही है।

सोच से मेम साहब का चेहरा स्याह हो गया। बोली, मझली-दी ने

शायद सोचा हो कि तुम मुझसे सब कुछ खुलकर कह सकते हो....

—तुमसे जो कहूँगा, मझली-दी भी वह जानती हैं।

मेम साहब मुँह नीचे किए बुत बनी बैठी रही। मैं छिपकर उसकी तरफ देख रहा था। और हँस रहा था।

जरा देर में वह मेरे और नजदीक आ गई। मेरे दोनों हाथ पकड़कर बोली, तुम कहो न, ब्याह में तुम्हें क्या चाहिए ?

मैं लगभग चीखकर बोला, तुम्हारी मझली-दी को मालूम नहीं है कि मैं तुम्हें चाहता हूँ ?

उसने एक बड़ा-सा निःश्वास छोड़कर हँसते-हँसते कहा, बाप रे, कैसा असभ्य आदमी है रे बाबा !

मैंने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से कहा, इसमें मैंने असभ्यता क्या की ?

मेम साहब डपट उठी, बकवास मत करो। छि-छि, इस तरह से भी कोई किसी को चिन्ता में डालता है ?

उसने बाद में फिर मुझसे पूछा, बताओ न, ब्याह में तुम्हें क्या चाहिए ?

मैंने कहा, यह सब पूछने-पाछने में तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुमने क्या मुझे भले आदमी के बाने में वैसा ही नीच समझा है, जो लुक-छिपकर रुपया लेते हैं और बाद में चाल दिखाते हैं।

मैंने मझली-दी को एक खत में यह लिखा था, आप लोग मुझे ठीक-ठीक पहचान नहीं सकीं। ब्याह में दान-दहेज की बात तो दूर रही, किसी भी आदमी की दया या कृपा लेकर मैं जीवन में खड़ा होना नहीं चाहता। ऐसी नीयत रही होती तो बेहाला में सरकारी रुपये से सरकारी जमीन पर मकान या कलकत्ते में बेनामी दो-एक टैक्सी कब की कर ली होती। और ससुर के रुपये से, ससुर की कृपा से समाज-संसार में प्रतिष्ठा ? छिः ! जिसके रीढ़ ही नहीं है, जो पुरुष वीर्यहीन है, उसके सिवाय यह काम और कोई नहीं कर सकता। चोर दरवाजे से कमाकर, जायदाद बनाकर चालबाजी करना मैंने नहीं सीखा। अपनी कर्मठता और कलम की कमाई से जितना कुछ मिलेगा, मैं उसी से सुखी और सन्तुष्ट रहूँगा।

इस चिट्ठी के जवाब में मझली-दी ने लिखा था, भाई रिपोर्टर, तुम्हारी चिट्ठी से मुझे लगा, तुमने हम लोगों को गलत समझा है। तुमसे हमारी सबसे छोटी बहन की शादी हो रही है। इसलिए तुम लोग हमारे

बड़े प्यारे, बड़े लाड़ के हो ! तुम लोगों की शादी में हम लोग कुछ न दें, ऐसा भी होता है ! तुम लोगों को कुछ दिये बिना माँ और बाबूजी के मन को क्या शान्ति मिलेगी ?

मैंने फिर लिखा, सेन्टिमेंट की लड़ाई लड़ने की जुर्रत मुझमें नहीं है। लेकिन मैं इतना कहे देता हूँ कि मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। यदि कुछ देना ही चाहती हैं, तो कन्टेपोरेरी हिस्ट्री की कुछ किताबें दीजिए। कृपा करके और कुछ देकर मुझे परेशान न कीजिएगा।

खैर, जाने दो ये बातें। मेम साहब के कलकत्ता जाने से पहले दिन हम दोनों घूमने निकले थे। घूमते-घामते थक-थकाकर आखिर बड़ी देर तक वृद्ध जयन्ती पार्क में बैठे थे। बातों-बातों में मेम साहब ने खोकन की चर्चा की थी। कहा, कलकत्ते से तुम्हारे चले आने के बाद मैंने समझा कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। एक ऐसा अजीब अकेलापन मुझ पर छा गया कि तुमसे क्या कहूँ! किसी तरह से लेडीज ट्राम पर बैठकर कालेज जाती-आती थी। और कहीं नहीं। अपने-सगे, दोस्त-मित्र, सिनेमा-थिएटर, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

मैंने कहा, इसीलिए तो तुम खोकन को ज्यादा जकड़ कर बैठ गई, यह मैं समझता हूँ।

—इसीलिए शाम को खोकन को पढ़ाने बैठ जाया करती थी। पढ़ाना खत्म होता, तो खा-पीकर हम दोनों छत पर बैठकर गप-शप किया करते। कभी-कभी माँ आ जाती। वह गाना गाने को कहतीं। मुझसे गाया नहीं जाता। गाना गाने का मिजाज मैं खो बैठी थी।

कुछ देर के बाद फिर बोली, गर्मी के दिनों कलकत्ते की शाम कितनी सुन्दर होती है, तुम तो जानते हो। तुम्हारे साथ कितना घूमा करती थी, लेकिन तुम्हारे चले आने के बाद मैं कालेज से लौटकर चुपचाप अपनी खाट पर पड़ी रहती।

—अच्छा !

—सच कह रही हूँ, खिड़की से पास के हरसिंगार के पेड़ और एक टुकड़ा आसमान को देख पाती थी। लेटी-लेटी सिर्फ तुम्हारे बारे में सोचा करती।

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में खींच लिया। कहा, मुझसे अलग तुम चैन से नहीं रह सकती हो, यह मैं जानता हूँ मेम साहब।

उसकी आँखें अजीब छलछला-सी रही थीं। गले की आवाज भी

स्वाभाविक नहीं थी। भर आए गले से कहा, अब सिर्फ खोकन के सिवा कलकत्ते में मेरा और कोई आकर्षण नहीं है। किन्तु उस कम्बख्त ने इन दिनों क्या जो शुरू किया है, वही जाने।

—क्या शुरू किया है?

—लगता है, जोरों से राजनीति कर रहा है।

—इसके लिए डरने या सोचने की क्या बात है?

—तुमने कलकत्ते में अखबार की रिपोर्टरी की है, कितने राजनैतिक आन्दोलन देखे हैं। इसलिए तुम देखते तो समझ सकते थे, मैं नहीं समझ पाती हूँ कि वह क्या कर रहा है? इसीलिए ज्यादा डर लगता है।

—चोरी, लफंगागिरी तो कर नहीं रहा है, तुम इतना घबरा क्यों रही हो?

नजर को जरा घुमाकर मेम साहब ने कैसी तो बेबस की नाईं मेरी ओर ताका। कहा, मालूम है, कुछ ही दिन पहले तो वह हाथ में पट्टी बँधा कर घर लौटा था। पहले तो कुछ नहीं बोल रहा था। बार-बार पूछने पर बताया, पुलिस की लाठी लगी है।

मेम साहब ने मेरे हाथों को दबाया। दबाकर कहा, वही लाठी कहीं सर पर लगी होती तो क्या अनर्थ होता, कहो तो?

मैं खूब समझ गया, खोकन राजनीति के नशे में चूर हो गया है। वह सभा-समिति, जुलूस-प्रदर्शन कर रहा है। आज हाथ में लाठी लगी है, कल सर में लगेगी, परसों हो सकता है, गोली खाकर अस्पताल के आपरेशन थिएटर में जाए। सोच की बात जरूर है, पर मुझे यह भी मालूम है, लड़कों पर एक बार जब नशा सवार हो जाता है, तो उससे अलग करना वैसा आसान नहीं होता। कलकत्ते में अखबार की रिपोर्टरी करते हुए मैंने बहुतों को लाठी से जख्मी होते और गोली से मरते देखा है। यह सब सभी रिपोर्टर देखा करते हैं। पत्थर की निश्चल मूर्ति की नाईं खड़े-खड़े देखा करते हैं। चुप होकर खड़े-खड़े मैंने भी सब कुछ देखा है, लेकिन एक बूंद भी आँसू नहीं बहाया।

मेम साहब ने आज खोकन का जिक्र जो किया तो एकाएक एक क्षण के लिए मन में उन सब दृश्यों की आँधी उठ आई। मन ही मन चिन्तित भी हुआ। लेकिन मेम साहब को मैंने वह सब कुछ नहीं जानने दिया। दिलासा देते हुए कहा, हाथ में जरा लाठी की चोट लग गई है, तो इतना घबड़ा क्यों रही हो। कलकत्ते में रहते हुए जिसने एक लाठी भी पुलिस

की नहीं खाई, वह खाँटी बंगाली नहीं है !

मेम साहब के गाल पर आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ी थीं। मुझसे यह छिपाने के लिए झटपट उसने सारे मुँह को पोंछ लिया और कहा, शायद हो कि तुम्हारी ही बात ठीक हो, पर कभी अगर कुछ ...

मेम साहब आगे बोल नहीं सकी। उसने दोनों घुटनों पर अपना सर रक्खा। मैंने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, इतना डर क्यों रही हो ? इतना सोचने से भी जिया जा सकता है कहीं ?

मेम साहब को राजनीति से कोई वास्ता नहीं था, परंतु कलकत्ते में पैदा हुई, स्कूल-कालेज-युनिवर्सिटी में पढ़ी। लिहाजा चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से, देखा उसने बहुत कुछ है। गोली से किसी को मरते नहीं देखा हो शायद, पर लाठी, टीयर गैस, ढेला-पत्थर चलते बहुत बार देखा है। इसके सिवा अखबार पढ़ती है, तसवीरें देखती है। उसी अनुभव से वह खोकन के लिए कुछ चंचल-सी हो पड़ी है।

वेस्टर्न कोर्ट लौट कर आया, तो मैंने मेम साहब से कहा, न हो तो खोकन को तुम मेरे पास भेज दो। यहाँ पढ़ेगा-लिखेगा और थोड़ी-बहुत मेरी मदद भी करेगा।

मेरे इस प्रस्ताव से वह मारे खुशी के उछल पड़ी।

कहा, सच ? उसे भेज दूँ ?

—हाँ-हाँ, भेज दो।

—लेकिन....

—लेकिन क्या ?

—कई महीने के बाद ही तो उसकी फाइनल परीक्षा है।

मैंने कहा, ठीक है। इम्तहान दे लेने के बाद ही भेज देना। यहीं बी० ए० पढ़ेगा।

मेम साहब जरा हँसी। मुझसे लिपट कर बोली, तब तक तो मैं भी तुम्हारे पास चली आऊँगी, है न ?

मैंने उसके माथे में जरा झटका-सा दिया। प्यार से कहा, फिर तो बड़ा मजा आएगा न ?

मेरी छाती पर सर रख कर वह बोली, सचमुच बड़ा मजा आएगा।

अट्ठारह

भारतवर्ष की राजनैतिक दुनिया की आवहवा धीरे-धीरे जटिल होने लगी। पत्र-पत्रिकाओं में सरहद के बारे में रह-रह कर परेशानी की खबरें छपने लगीं। खबर छपती कि लोकसभा में आँधी-सी उठ आती—शॉर्ट नोटिस, कॉलिंग एटेनशन, एडजोर्नमेंट मोशन ! सरकार और विरोधी दलों की चखचख रोजमर्रे की बात हो गई। यही नहीं, कांग्रेस में भी चुपके-चुपके सरकारी नीति की आलोचना शुरू हो गई। और, उन आलोचनाओं की खबर हमें कांग्रेस के ही लोग न्योता कर-करके दिया करते। अवश्य सबको नहीं, बहुतों को। जमना का पानी और भी बह गया। बीच-बीच में कांग्रेस पालमिंटरी सभा में सरकार की नीति की आलोचना की गूंज सुनाई पड़ने लगी। हाँ, बराबर नहीं। सामूहिक रूप से भी नहीं। पाँच-साढ़े पाँच सौ कांग्रेसी संसद-सदस्यों में से महज दो-चार ने सरकारी नीति की तारीफ करते-करते आखीर में गलती से आलोचना कर दी। राजनैतिक दुनिया का पानी कुछ और गंदला हुआ। जमुना का पानी कुछ और बह गया। कांग्रेस में सरकारी नीति के समालोचकों की संख्या और बढ़ी, आलोचना तीखी से और तीखी हो उठी। अब कभी-कभी नहीं, हर बैठक में आलोचना होने लगी। और अब चुपचाप नहीं, खुले आम ढोल पीट-पीट कर कांग्रेस पार्लमिंटरी पार्टी के सचिव लोग अखबार वालों को ये खबरें देने लगे। देश के हर अखबार में मोटे-मोटे हरफों में ये खबरें छपने लगीं।

उधर उत्तरी सरहद से, जगह-जगह से तरह-तरह की अफवाहें उड़ कर आने लगीं। कभी नेफा के जंगल से, तो कभी लद्दाख की पहाड़ी मरु-भूमि से; कभी वालंग से तो कभी दौलतबेग ओलडी, या चुशुल, मगर, डेमचक से गोली की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। गोलियों की वे आवाजें न्यूज एजेंसी के टेलिप्रिंटर से दिल्ली पहुंचतीं नहीं कि 'मिस्टर स्पीकर, सर' की टेबिल पर कॉलिंग एटेनशन-एडजोर्नमेंट मोशन की नोटिसें जमा हो जातीं। वातानुकूलित लोक-सभा भवन राजनैतिक उत्तेजना की आग से दिन भर जलता रहता।

डिफेंस मिनिस्ट्री और एक्सटर्नल मिनिस्ट्री में भी हलचल खूब बढ़ गई। मीटिंग-कानफरेंस, प्रेस-नोट, प्रोटेस्टों के मारे हम लोगों के काम का दबाव भी हजार गुना बढ़ गया।

भारतवर्ष के इतिहास का यह एक ऐतिहासिक अध्याय था। भारतवर्ष का इतिहास उस समय एक बार फिर मोड़ ले रहा था। दिल्ली प्रवासी हम अखबारों के संवाददाता हर रोज इतिहास के उन टुकड़ों का संग्रह करके अनगिनती पाठक-पाठिकाओं को परोसा करते थे।

ऐसी स्थिति में दिल्ली का महत्व और भी बढ़ गया। विदेशी संवाददाता लोग यहां पहले से भी थे, पर इस बाजार में सनफ्रांसिस्को, न्यूयार्क, वाशिंगटन, ओटावा, लंदन, पेरिस, ब्रुसेल्स, मास्को, प्राग, काहिरा, कराची, सिडनी, टोकियो से और भी बहुतेरे आ पहुँचे। भारत के भी अनेक स्थानों से और भी संवाददाता आए। युनाइटेट नेशन्स, लंदन, पेरिस, मास्को, काहिरा, टोकियो के साथ-साथ दिल्ली भी दुनिया का अन्यतम समाचार-केंद्र बन गई।

मेरे अखबार के डाइरेक्टर और संपादक ने अब यह महसूस किया कि मुझे सिर्फ तनखा देने से ही काम नहीं चलने का, दिल्ली से गरमागरम खबर पाने के लिए और भी कुछ करना होगा। आमतौर से दिल्ली के बारे में राय-मशविरा के लिए अखबार के अधिकारी वर्ग मुझको ही बुला लिया करते थे। इस बार संपादक जी स्वयं मुझसे विचार-विमर्श के लिए दिल्ली पधारे। दोस्त-अहबाबों से मिलने के बहाने संपादक जी दूसरे कई दफ्तरों में घूम आए, उनके काम-काज और दफ्तर का तौर-तरीका देखा। उसके बाद मुझे कहना नहीं पड़ा कि मुझसे और ज्यादा तथा अच्छा काम कराने के लिए मुझको और ज्यादा सुविधाएँ देनी होंगी।

संपादक जी ने कहा, बच्चू, सबसे पहले तो तुम्हारे लिए एक गाड़ी का होना जरूरी है। गाड़ी के बिना यहाँ काम कर सकना रियली बड़ा कठिन है। इसके सिवा हमारे लिए एक दफ्तर का होना भी जरूरी है।

आखिर में बोले, तुम अब वेस्टर्न कोर्ट छोड़कर ग्रीन पार्क चले जाओ। घर पर टेलिफोन लगवा लो। गाड़ी और टेलिफोन होने से खास कोई असुविधा नहीं होगी।

मैंने सर खुजाते हुए कहा, जी, सो तो ठीक है, पर मैं फागुन के बाद ही ग्रीन पार्क जाना चाहता हूँ।

—क्यों? तुम क्या फागुन में ब्याह कर रहे हो?

सिर झुकाकर मैंने कहा, जी, यही तो ठीक हुआ है

—दो जगह के इंतजाम में तुम्हारे कुछ पैसे नाहक ही खर्च हो रहे हैं। खैर ! ये कुछ महीने यहीं रह जाओ। पर गेट ए टेलिफोन इमीडिएटली।

जरा देर बाद बोले, न्यूज पेपर सोसाइटी बिल्डिंग में हो सकता है, कुछ दिनों में ही हमें कमरा मिल जाय। जब तक वह नहीं मिल जाता है, तब तक तुम एक पार्ट-टाइम स्टेनो रख लो।

महीना पूरा होते न होते सचमुच ही मैंने आफिस के पैसे से गाड़ी खरीद ली। स्टैंडर्ड हेराल्ड ! टू डोर ! टेलिफोन भी लग गया। सौ रुपए पर एक पार्ट-टाइम मद्रासी स्टेनो भी रख लिया।

भारत के ऐतिहासिक संकट की ऐसी घड़ी में मेरे भाग्य-गगन में इस तरह से सौभाग्य का सूर्योदय होगा, मैं कभी सोच भी नहीं सका था। दिल्ली का महत्त्व अगर इतना नहीं बढ़ गया होता, अखबारों की आपसी होड़ इतनी तीखी नहीं हो गई होती तो मेरा इतिहास भी कुछ और ही होता। लेकिन विधना का निदेश क्या बदल सकता है ?

तिल-तिल करके, बूंद-बूंद लहू देकर असंख्य दिनों की मिहनत-मशक्कत, उपवास और उनींदी रातों के बदले उस दिन जब मुझे कर्म-जीवन में इतनी बड़ी स्वीकृति, इतनी बड़ी मर्यादा, इतनी कामयाबी मिली, तो मैं खुद ही भौंचक्का रह गया। कलकत्ते में मैंने दिनों, महीनों लगातार चार पैसे का सत्तू और दो पैसे के गुड़ पर एक जून भोजन कर के काटा था। जो मैं सिर्फ मुट्ठी भर दाना और भली तरह जीने का दावा लिए कलकत्ते के रास्तों पर, भिखमंगे की नाईं दरवाजे-दरवाजे भटकता रहा, वही मैं मोटर गाड़ी पर चढ़ूंगा ? विधना का भी कैसा अजीब ख्याल है ! पहले विश्वास नहीं करता था, लेकिन अनगिनती कसौटियों से गुजर कर अजीब-अजीब अनुभव होने के नाते आज यह मानने लगा हूँ कि इस दुनिया में हर कुछ संभव है। भगवान् का आशीर्वाद मिले तो अवश्य ही पंगु चढ़ै गिरिवर गहन !

दोला भाभी, मैंने अब समझा है कि भगवान् बड़े ही विचित्र हैं। वह कभी तो निर्दयी और कभी दयामय हैं। वह सबको सब कुछ हरगिज नहीं देते। अपने कर्म-जीवन में जो कामयाबी हासिल करेगा, बहुत बड़े समाज से आदर-सम्मान पाएगा, जिसका आसन असंख्य लोगों के हृदय पर होगा, वह अपने व्यक्तिगत जीवन में हरगिज सुखी नहीं होगा। अपने जीवन के चरम अनुभव से इस सत्य को मैंने समझा है।

मेरी मेम साहब की कहानी के खत्म होने में अब ज्यादा बाकी नहीं है। जरा ही देर में तुम यह समझ लोगी कि मेरी इस सफलता, इस सार्थकता में भी पीड़ा कहाँ पर है! समझोगी कि सब कुछ पाने के बावजूद आज मैं छिप-छिप कर आँसू क्यों बहाता हूं। समझोगी कि इतने लोगों के संपर्क में रहते हुए भी मैं निरा अकेला क्यों हूं? और थोड़ा सा जानते ही समझ जाओगी, मैं थक क्यों गया हूं!

खैर! भारतवर्ष की ऐसी अजीब राजनैतिक स्थिति और संपादक जी की कृपा से मेरी ऐसी अनसोची सफलता के बाद मैंने मेम साहब को लिखा, तुमने कभी तंत्र-साधना की थी क्या? तुम कहीं ज्योतिषी होती, तो मेरी सहायता और सहयोग के सिवा तुम्हारे लिए मेरे भूत-भविष्य की जानकारी संभव नहीं थी। एक तंत्र-साधना ही है, जिससे कुछ जाने बिना ही दूसरे के भविष्य के बारे में कहा जा सकता है। मेरे बारे में तुमने जो-जो कहा था, जो-जो आशाएँ की थीं, लगभग सभी तो सही उतरीं। अभी मेरे मन में यह संदेह हो रहा है कि तुमने तंत्र-साधना की है।

गजानन गाड़ी को रोज दो-दो बार धोता-पोंछता। उसे ड्राइवर का गाड़ी चलाना कतई पसंद नहीं था। कहता, नहीं छोटे साब, ड्राइवर को गाड़ी मत चलाने दीजिए। ये ड्राइवर लोग जैसे-तैसे गाड़ी चलाया करते हैं। मैंने कभी ख्याल भी नहीं किया था कि अदरख का व्यापारी होकर जहाज की खबर रखनी होगी! लिहाजा मैंने गाड़ी चलाना सीखा नहीं था। तुम्हारे साथ इस गाड़ी में घूमने से पहले मैं हरगिज गाड़ी चलाना नहीं सीखता, मगर गजानन ने नहीं माना। लाचारी में गाड़ी चला रहा हूं, लेकिन तो भी पीछे बैठकर गजानन मुझसे कहता है, छोटे साब, धीरे-धीरे गीयर बदलो।

परसों शाम को मैं ग्रीन पार्क में तुम्हारे घर गया था। बातों-बातों में कम्बख्त गजानन ने क्या कहा, पता है? कहा, बीबी जी की किस्मत खूब अच्छी है। मैंने पूछा, क्यों भला? उसने कहा, बीबी जी की किस्मत से ही तो आपको सब कुछ मिल रहा है। मैं डपट उठा, बकवास मत कर। उस दईमारे ने कहा, सो जो कहिए छोटे साब, बीबी जी न होतीं, तो आपसे कुछ नहीं होता। उसकी यह बात अच्छी ही लगी थी, पर प्रकट मैंने कहा, तू अपनी बीबी जी के ही पास जा, मेरे पास रहने की जरूरत नहीं है।

अच्छा हाँ, उस दिन तुम्हारे कालेज में मैंने ट्रंक कॉल जो कि[illegible]ो

तुम वैसे चौंक क्यों उठी ? तुम्हें जितनी ही परेशानी लग रही थी, मुझे उतना ही मजा आ रहा था। मैंने तै कर लिया है, हर हफ्ते तुम्हें ट्रंक कॉल किया करूँगा।

अंत में लिखा, फागुन तो अब आ ही पहुँचा। अब यह बताओ कि ब्याह में तुम्हें चाहिए क्या ? शर्माना मत। जो भी ख्वाहिश हो, मुझे बताना। मैं तुम्हारी आशा जरूर पूरी करूँगा।

मेम साहब ने लिखा, तुम्हारी हर चिट्ठी की नाईं इसे भी कई बार पढ़ गई। पढ़ने में बड़ा मजा आया। सच ही मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकी थी कि तुम्हारे संपादक जी ऐसे अप्रत्याशित रूप से हमारे सपने को साकार कर देंगे ! भगवान् को शत कोटि प्रणाम किए बिना मुझसे नहीं रहा जाता। उन्हीं की इच्छा से सारा कुछ हो रहा है, भविष्य में भी होगा। आसार से तो लग रहा है कि भगवान् हमें बेशक सुखी करेंगे।

तुम तो गाड़ी लेकर खूब मौज से घूमते फिर रहे हो। सोचते भी मुझे ईर्ष्या हो आती है। तुम्हें गाड़ी चलाकर घूमते हुए देखने की बड़ी इच्छा हो रही है। तुम जब गाड़ी चलाते होगे, देखने में निश्चय ही तुम बड़े अच्छे लगते होगे। खूब स्मार्ट ! खूब हैंडसम ! खूब सावधानी से गाड़ी चलाना। तुम्हारी दिल्ली में दुर्घटनाएँ बहुत होती हैं। तुम गाड़ी चलाते हो, इससे और एक चिंता बढ़ गई। हर वक्त यह याद रखना, अब तुम अकेले नहीं हो। याद रखना कि तुम्हारे जीवन से मेरा जीवन भी ओत-प्रोत होकर जुड़ गया है। सो तुम्हारे नुकसान का मतलब मेरा नुकसान है। सर्वनाश कहो। भूलना मत, हाँ !

अच्छा, उस दिन तुमने अचानक ट्रंक कॉल क्यों किया ? उस समय कालेज के आफिस में लोग भरे थे। फोन प्रिंसिपल ने ही उठाया। जैसे ही उन्होंने सुना कि दिल्ली का ट्रंक कॉल है, वह तुरन्त ताड़ गईं कि फोन तुम्हारा ही है। क्योंकि कालेज के सभी यह जानते हैं कि तुमसे मेरी शादी होगी। प्रिंसिपल को भी मालूम है। और, बीरूत वाला जर्मन फोल्डिंग छाते का दो-एक दिन व्यवहार किया था। उन्हें मालूम है कि वह तुमने ला दिया है। जभी तो प्रिंसिपल ने मुझे लाइन आफिस में दिलवा दी, इसलिए कि उनके सामने मैं तुमसे ठीक से बात नहीं कर सकूँगी। मगर कालेज का आफिस कभी खाली रहता है भला ? मैं तुम्हारी किसी भी बात का जवाब नहीं दे पा रही थी। और तुम वह सब जो-सो क्या पूछ रहे थे ? कालेज के आफिस में बैठकर उन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता

है कहीं ? और मैं तुमसे कहूँ, मेरी इन निरी निजी और गोपनीय बातों की जानकारी की इतनी ही गरज पड़ी है, तो एक बार आ जाओ। आ रहे हो दो-एक दिन के लिए ? आ जाओ तो खुशी होगी।

विवाह के समय तुमने मुझे कुछ उपहार देना चाहा है। तुम्हारा मतलब गहने-कपड़े से है ? वह सब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। आज मेरी सिर्फ एक ही कामना है और वह कामना है तुमको पाने की। मैं तुम्हें तन-मन देकर पाना चाहती हूँ। बस, इसी में मे संतुष्ट हूँ। स्त्री होकर दूसरी और कौन-सी कामना, कौन-सी आशा हो सकती है ? मैं बिलकुल सच कह रही हूँ, तुम कोई उपहार मत देना। मैं तो बस उपहार में तुम्हें ही चाहती हूँ। दोगे न ?

मझली-दी यहाँ थी, तो उसे मैनेज कर के धोखा देकर कई बार तुम्हारे पास गई थी। अब वह होना मुमकिन नहीं है। इसीलिए कह रही थी कि तुम आ जाते, तो बड़ा अच्छा होता। तुम्हें देखे बिना मैं रह नहीं सकती हूँ। मेरी यह तकलीफ क्या समझ सकते हो तुम ? यदि समझते हो तो दया करके एक दिन के लिए दर्शन दे जाओ।

और हाँ, मझली-दी को बच्चा होने वाला है ! यही तो कै महीने हुए शादी के ! इतने में ही बच्चा ? पता नहीं, मेरे करम में क्या लिखा है।

मेम साहब की इस चिट्ठी का जवाब पोस्ट कार्ड में तो दिया नहीं जा सकता। बहुत अधिक व्यस्त रहने के कारण इसीलिए कई दिनों तक चिट्ठी नहीं दे पाया। हाँ, कई दिनों के लिए सौराष्ट्र चला गया था। इस तरह से जवाब देने में काफी देर हो गई। इस बीच मेम साहब की और एक चिट्ठी आ गई। उससे पता चला, इस बीच एक दिन पांच बजे तड़के ही पुलिस ने आकर खोकन के फ्लैट की तलाशी ली। खोकन को भी पकड़ ले गई थी, पर तीसरे पहर छोड़ दिया था।

बंगाल के अखबारों से यह बात खूब समझ में आ रही थी कि बंगाल के राजनैतिक आकाश के ईशान कोण में काली घटाएँ घिरने लगी हैं। फिर दमामा बज उठेगा। सभा-समिति की बारी खत्म हो चुकी है, अब शुरू होगा जुलूस, विरोध प्रदर्शन, धारा १४४ का तोड़ना। फिर लाठी, टीयर गैस, गोली। फिर विरोध, फिर जुलूस। फिर लाठी, फिर गोली। कुछ लोग अपने प्रियजनों से हाथ धो बैठेंगे। वे रोएँगे, तमाम जिंदगी रोते रहेंगे।

मैं समझ गया, खोकन काफी आगे बढ़ गया है। उसके सर से यह नशा अब उतरने का नहीं। कुछ हर्जाना दिये बिना यह नशा नहीं उतरता। बहुतों का तो कभी उतरता ही नहीं। खोकन का भी उतरेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

मेम साहब अवश्य यह सोच रही थी कि मैं कलकत्ता जाकर खोकन को समझा-बुझाकर कुछ उपाय करूँ। पर करूँ तो क्या? खोकन को क्या समझाऊँ? और समझाने से ही क्या वह समझेगा? मेम साहब को देखने की मेरी भी खूब इच्छा हो रही थी। सोचा, दो-एक दिन के लिए हो आऊँ कलकत्ते से। लेकिन मेम साहब की चिट्ठी से खोकन के बारे में जो समाचार मिला, उससे आखिर यह सोच लिया कि नहीं जाऊँगा। मेम साहब को लिख दिया, बहुत परेशान हूँ। इस समय तो जाने का कोई उपाय ही नहीं है। बीच में समय मिल गया तो जाकर तुमसे जरूर मिल आऊँगा। अंत में लिखा, राजनीति बहुतेरे लोग करते हैं, खोकन भी कर रहा है। उसके लिए इतना सोचने या घबराने का क्या है? खोकन आखिर दूध-पीता बच्चा तो नहीं है। इतनी चिंता तुम मत करो।

मैं जानता था कि खोकन के बारे में मेरी यह राय मेम साहब पसंद नहीं करती थी। लेकिन उपाय क्या था, मैं खूब जानता था कि खोकन मेरी बात नहीं मानेगा। उस समय मेम साहब की बात रखना भी उसके लिए संभव नहीं था। तो मैं क्या लिखता और?

मेरी चिट्ठी मिलते ही मेम साहब ने जवाब दिया, जिस वजह से भी हो चाहे, खोकन के बारे में तुम बहुत उदासीन हो। शायद हो कि तुम उसे वैसा पसंद नहीं करते। क्या बात है, मैं ठीक नहीं जानती। तुमसे इसके लिए तर्क नहीं करना चाहती। लेकिन हाँ, इतना कह दूँ, खोकन के लिए मुझे और मेरे परिवार को बड़ी दुर्बलता है।

सच पूछिए तो मैंने कोई तर्क नहीं किया। तर्क क्यों करूँ? किसी के स्नेह-प्यार पर तर्क करना उचित भी है? हरगिज नहीं। और, युक्ति-तर्क, न्याय-अन्याय का सोच-विचार करके क्या कोई प्यार कर सकता है? नहीं। यह मैं जानता हूँ। इसलिए इस विषय में मेम साहब को कुछ न लिखकर इस बार मैंने खोकन को ही एक पत्र लिखा। लिखा, तुम्हारे जैसा किस्मतवर लड़का इस दुनिया में कम ही मिलेगा। इसकी वजह है कि यह दुनिया बड़ी बेरहम है, बड़ी कंजूस। अपनों से ही यहाँ प्यार पाना दुर्लभ है, लिहाजा औरों का स्नेह-प्यार पाना सौभाग्य की बात है। तुम

ऐसे दुर्लभ भाग्यशालियों में अन्यतम हो। बहुत सुख, बहुत आनन्द छोड़कर, बहुत दुःख बहुत कष्ट झेलकर, बहुत ही त्याग-तपस्या करके तुम्हारी बड़ी माँ और दीदियों ने तुम्हें पाला है। तुमसे उन्हें बहुतेरी आशाएँ हैं, तुम्हारे लिए उनके बहुत सपने हैं। तुम्हें जरा-सी खरोंच लगने से उनके पंजरे की एक हड्डी टूट जाती है। शायद हो कि इतना ज्यादा स्नेह-प्यार का कोई मतलब नहीं। लेकिन तुम्हें तो मालूम है भाई, स्नेह-प्यार आदमी को अंधा बना देता है। इसीलिए उसने तुम्हारी बड़ी माँ और दीदियों को भी अंधा बना दिया है। मैं खूब जानता हूँ कि तुम उनके इस स्नेह-प्यार की मर्यादा को कभी आँच नहीं आने दोगे। लेकिन तुम्हारे लिए आजकल वे लोग बहुत चिंतित, बहुत बेचैन रहा करती हैं। तुम क्या इस जहमत से उन्हें छुटकारा नहीं दिला सकते हो? मुझे लगता है चाहो तो तुम वैसा कर सकते हो। जिन लोगों ने तुम्हारे लिए, दिनों, महीनों, बरसों रात जगकर दिन बिताया है, तुम्हारे भले के लिए व्रत रक्खा है, उपवास किया है, कालीघाट में पूजा चढ़ाई है, दौड़कर तारकेश्वर गई हैं, तुम क्या उनके इस उद्वेग को दूर नहीं कर सकते? उनकी आँखों के बहते आँसू को रोक नहीं सकते? जरा शांत होकर सोच कर देखो।

एक संवाददाता होने के नाते मैं तुम्हें राजनीति से अलग होने को नहीं कह सकता। लेकिन पहले पढ़ाई खत्म कर लो तो अच्छा नहीं है क्या? लिख-पढ़कर समाज में सिर ऊँचा करके दस में से एक होकर राजनीति करना ठीक नहीं है क्या? राजनीति करो, हजार बार करो। स्वाधीन देश के नागरिक राजनीति जरूर करेंगे, लेकिन उससे पहले खुद उसके योग्य बनो, तैयार हो लो।

तुम्हारी फाइनल परीक्षा सर पर है। तुम होशियार लड़के हो। ध्यान से जरा पढ़ो तो इम्तहान में जरूर अच्छा करोगे। तुम्हें तो मालूम है, तुम्हारी बड़ी माँ की तबीयत ठीक नहीं रहती, तुम्हारी दीदी भी बड़ी अकेली हैं। उनका थोड़ा ख्याल रक्खा करो। और, अपने पिता को मत भूल जाओ, जो सिर्फ तुम्हारे ही लिए सुबह से शाम तक परिश्रम करते हैं। झटपट आदमी बनकर उन्हें थोड़ा सुख और शांति देने की कोशिश करो।

अंत में उसे लिखा, इस खत का जवाब नहीं देने से भी हर्ज नहीं है। तुम्हें जो कहना है, अपनी छोटी-दी को बताना। वही मुझे सब बता देगी। और हाँ, यदि इच्छा हो, तो तुम दिल्ली आ सकते हो। [illegible]

आ जाओ। यहाँ आने से तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई अच्छी ही होगी। और, मुझे भी तुम्हारा साथ-सहयोग मिलेगा।

इस चिट्ठी के बाद मैं फिर बाहर चला गया। उत्तर-प्रदेश कांग्रेस का घरेलू झगड़ा हद्द को पहुँच गया था। कांग्रेस कमेटी के चुनाव के लिए दो दलों ने प्रायः कुरुक्षेत्र मचा रखा था। संपादक जी के निर्देशानुसार उस कुरुक्षेत्र को कवर करने के लिए मैं लखनऊ पहुँचा। जाने से पहले मेम साहब को खबर नहीं दे पाया। लखनऊ पहुँचने के बाद भी दो दिन समय नही मिला। उसके बाद उसे लिखा, मैं दिल्ली में नहीं हूँ, लखनऊ आ गया हूँ।

एक सप्ताह लखनऊ में रहा। वहाँ से एक पत्रकार मित्र और एक एम० पी० के पल्ले पड़कर नैनीताल चला गया। दो ही दिन रहने की बात थी, मगर उन लोगों के चलते एक हफ्ते के बाद दिल्ली लौट पाया।

दिल्ली आने पर बहुत-सी चिट्ठियाँ मिलीं। मझली-दी के पत्र से पता चला, जहाजी अफसर की कोचीन बदली हो गई है। अभी चूँकि वहाँ क्वार्टर नहीं मिलेगा, इसलिए मझली-दी कलकत्ता जा रही हैं। इस बीच क्वार्टर मिल भी जाय तो भी वह कोचीन नहीं जाएँगी, अब एकबारगी हमारे ब्याह के बाद ही। सोचा, खूब रही! मैंने मझली-दी को लिखा, राम कहिए, इतनी जल्दी भी कोई को-चीन जाता है भला? और तिसपर अकसाई चीन के बाजार में? अब एकबारगी खोकन को परेम्बुलेटर में बिठाकर बंगाल की खाड़ी के किनारे-किनारे घूमते-घामते भुवनेश्वर में चाय पीकर, कोनारक में कॉफी पीकर, वालटेयर में काजू खाकर, मद्रास में डोसा खाकर, कन्याकुमारी में भारत महासागर के पानी में तैरकर, त्रिवेंद्रम में नारियल खाकर को-चीन जाइएगा, ठीक है न? जरूरत हो तो परेम्बुलेटर मैं ही दूँगा। क्योंकि इसके बाद तो हमें उसकी जरूरत पड़ेगी, है न?

मैंने जो खोकन को चिट्ठी लिखी थी, मेम साहब इससे खुश हुई थी। उसने लिखा भी था, खोकन में कुछ तो परिवर्तन आया है।

अब मैंने दो-तीन दिन के लिए कलकत्ता जाने की सोची। संपादक जी को लिखकर एक हफ्ते की छुट्टी ली। मेम साहब को लेकिन जाने के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। मझली-दी को लिखा, जानें कब से तो आप से भेंट नहीं हुई है। लगता है जाने कितने युग पहले आपको देखा था। आपको देखे बिना मुझसे अब रहा नहीं जा रहा है। काम-काज में जो

नहीं लगता। रिपोर्ट लिखने में बार-बार गलतियाँ कर बैठता हूँ। मुँह का स्वाद बिगड़ चुका है। और तो और, मधुबाला, सोफिया लोरेन की फिल्म देखने को भी जी नहीं चाहता। मुझे माफ करें, इसीलिए आपको देखने के लिए अगले सोमवार को दिल्ली मेल से कलकत्ता जा रहा हूँ।

उन्नीस

उस बार का कलकत्ता जाना मैं जिन्दगी में कभी नहीं भूल सकूँगा। नहीं, कभी नहीं। उस बार के कलकत्ते की यादगार मेरे जीवन की सबसे कीमती यादगार है। मेरे पास दुनियावी दौलत आज बहुत है, भविष्य में हो सकता है और हो। आज लाखों लाख आदमियों से मेरी जान-पहचान है। कितने वी० आई० पी० के साथ देश-विदेश घूमा किया। उनकी कितनी मीठी, कितनी प्यारी, कितनी चटकदार स्मृतियाँ मेरे मन के सेफ डिपॉजिट वॉल्ट में जमा हैं। लेकिन उस बार की कलकत्ता यात्रा की यादगार से किसी भी यादगार की तुलना नहीं हो सकती। कभी शायद हो कि मेरा सारा कुछ खो जाए, शायद हो कि मैं पिछले दिनों की तरह एक मुट्ठी दाने के लिए, कोई लेख लिखकर उसके दस रुपए पाने के लिए कलकत्ते की सड़कों पर फिर भटकूँ। मगर मेरी स्मृतियाँ कभी नहीं खोएँगी—मेम साहब की स्मृति, उस बार कलकत्ते जाने की स्मृति!

मझली-दी हवड़ा स्टेशन आई थीं। मेम साहब को वहाँ मौजूद न पाकर मैं जरा अवाक् हुआ। मझली-दी से कुछ कहा नहीं, सिर्फ इधर-उधर नजर दौड़ा रहा था। सोच रहा था, शायद कहीं छिपी हुई है। मझली-दी जरा मुस्कुराकर बोलीं, इधर-उधर ताकने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा। वह नहीं आई है।

मैं जरा जोर से हँसकर बोला, जी, नहीं। उसको कौन ढूंढ़ रहा है। मेरे एक मित्र के आने की बात थी। उसी को देख रहा हूँ—आया है कि नहीं।

मझली-दी जरा शरारत की हँसी-हँसकर बोलीं, ओ आइ सी!

प्लेटफार्म से टैक्सी स्टैण्ड की तरफ जाते समय मझली-दी ने कहा, आज रात आप हमारे ही यहाँ भोजन कीजिएगा।

मैं ठिठक गया। कहा, ऐसी क्या बात है !

—माँ का हुक्म है।

—रियली ?

—और क्या, मैं आपसे मजाक कर रही हूँ ?

मेम साहब उस दिन सचमुच ही स्टेशन नहीं आई थी। चीफ ऑफ प्रोटोकोल होकर मेरी अगवानी के लिए मझली-दी आई थीं। मेम साहब को वहाँ न देखकर थोड़ी-सी हताशा तो हुई थी, लेकिन अपनी इस सामाजिक मर्यादा से खासे गर्व का अनुभव हुआ।

रात को न्योता खाने के लिए गया था। मेम साहब का दिया हुआ धोती-कुर्ता पहनकर वास्तव में दामाद के बाने में ही ससुराल गया था। मेरे ही इन्तजार में मेम साहब ड्राइंगरूम में बैठी थी। मैंने जैसे ही घण्टी बजाई, वह चीख उठी, मझली-दी, देख तो कौन आया है। मैंने बाहर खड़े-खड़े ही उसकी बातें सुनीं। उसने कुछ ऐसा भाव दिखाया, उसे कोई गरज नहीं पड़ी है। असल बात तो यह है कि शर्म आ रही थी।

मझली-दी ने दरवाजा खोलते ही चिल्लाकर कहा, माँ, तुम्हारे छोटे जमाई बाबू आए हैं।

अन्दर से मैंने मेम साहब की माँ का गला सुना—आः, शोर मत कर।

मझली-दी कमरे से अन्दर जाती हुई, हुक्म फरमा गई, चुपचाप बै जाइए। लम्बी उसाँस भरने की जरूरत नहीं है, भेज देती हूँ।

मझली-दी उधर गईं और इधर मेम साहब आ गई। एक नजर इध उधर ताक लिया और मेरे पास आकर खड़ी हो गई। उसका हाथ प कर पास से मैंने उसे सामने कर लिया। उसके बाद दोनों हाथों से उस पीठ पकड़कर अपना सर हलके से उसकी छाती के पास रक्खा।

हलके से मेरे सर को सहलाकर उसने कहा, आः, छोड़ो। कोई जायगा।

मैंने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। उसी तरह स कसकर पकड़े रहा।

धीरे-धीरे मेरा हाथ छुड़ाते हुए उसने कहा, अरे भई, छोड़ कोई देख लेगा।

उसके दोनों हाथ, हाथ में लेकर मैंने उसके मुँह की ओर कहा, देखने दो न ! देख लेगा तो क्या हुआ ?

अपना एक हाथ छुड़ाकर मेरे मुँह, माथे और सिर पर फेरते हुए कहा, कैसे हो ?

—सकुशल।

मैंने पूछा, और तुम ?

—मैं ठीक नहीं हूं।

—क्यों ?

—क्यों फिर क्या ? मुझे अब अकेली-अकेली रहना जरा भी अच्छा नहीं लगता।

उसके फूले-फूले गालों को जरा दबा कर मैंने कहा—बस, आ तो गया। अब तो पूरे दो महीने भी नहीं रह गए!

उस दिन रात को मेम साहब की माँ ने सचमुच ही जमाई के सम्मान के साथ मुझे खिलाया। छुटपन में माँ को गँवा बैठा था। उतने आदर-जतन की मुझे आदत नहीं। इतना भला-बुरा खाने-पीने की आदत कभी नहीं थी। मैंने कुछ खाया, कुछ नहीं खाया।

भोजन के बाद बैठके में मझली-दी और मेम साहब से बड़ी देर तक बातें करता रहा। वहाँ से आते वक्त जब मेम साहब की माँ को प्रणाम किया, तो उन्होंने मेरी उँगली में नगवाली एक अँगूठी डाल दी। मैंने कहा, यह क्या कर रही हैं आप ?

—शादी से पहले तो तुम यहाँ आ नहीं रहे हो। आशीर्वाद का रस्म तो अब विवाह-मण्डप में ही होगा। इसलिए इसे रख लो।

मैंने फिर आपत्ति की। उन्होंने कहा, यह माँ का आशीर्वाद है। इसमें ना नहीं करना चाहिए।

मैंने फिर ना-नू नहीं किया।

दूसरे दिन मेम साहब और मैं दक्षिणेश्वर गया था। साँझ को आरती के बाद नाव से बेलूड़ गया। गंगा के ऊपर से पूस की साँझ की मीठी और ठण्डी हवा बह रही थी। मुझसे सटकर मेम साहब ने मेरे कन्धे पर अपना सर रक्खा।

उस दिन हम दोनों में कोई खास बात नहीं हुई। खुशी और तृप्ति से दोनों का मन लबालब भरा हुआ था। ज्यादा बोलने की इच्छा किसी को नहीं हुई।

मेम साहब ने पूछा, इस बीच तुम अब कलकत्ता नहीं आओगे ?

—नहीं।

—अब वही शादी के ही समय ?

—हाँ ।

जरा देर में वह बोली, ब्याह के बाद तुम लेकिन मुझे अपने मन के मुताविक बना लेना । ताकि मैं तुम्हारी ही जरूरतें पूरी कर सकूं ।

—मेरी सारी जरूरतों का तो तुम्हें पता है । और, बात तो यह है कि तुमने ही तो मुझे बनाया है । मैं तुम्हें क्या बना लूंगा ?

—मैं तो एक निमित्त भर हूं । तुम्हारे अंदर अपना गुण था, तुम इसीलिए सफलतापूर्वक खड़े हो सके । गुण न हो तो कोई किसी को कुछ बना सकता है भला ?

मैंने कहा, बेशक बना सकता है मेम साहब । केवल ईंट-लकड़ी-सीमेंट रहने से ही तो कोई अच्छा मकान नहीं बन सकता । आर्किटेक्ट चाहिए, इंजीनियर चाहिए, कारीगर चाहिए । सोने के ढेले की कीमत हो सकती है, उसमें सुंदरता नहीं होती । सुनार के हाथ में पड़ जाने पर उसी सोने के कितने सुंदर-सुंदर गहने बनते हैं !

उसके गाल पर गाल रखकर मैंने कहा, तुम वही आर्किटेक्ट हो मेम साहब, इंजीनियर, कारीगर !

मेरी इन बातों का जवाब न देकर उसने कहा, तुम मुझे बेहद प्यार करते हो । जभी तो तुम मुझे अकृपण होकर सम्मान देना चाहते हो ।—मुँह फेर कर बोली—है न ?

—तुम्हारी तरह मैं तो युनिवर्सिटी में नहीं पढ़ा हूँ न ! मनुष्य के चरित्र की इतनी छान-बीन मैंने नहीं सीखी है ।

मेम साहब जैसे रूठ गई जरा । बोली, यह सब फिजूल की बातें तुम मत बोलो तो ! हजार हो, आखिर तुम मेरे स्वामी हो । और, एम० ए० पढ़ने से ही क्या सब पंडित हो जाते हैं ?

अपने सवाल का उसने आप ही जवाब दिया, हरगिज नहीं । तुम्हारे ज्ञान, बुद्धि, अनुभव के पास मैं खड़ी भी हो सकती हूं ?

मैं तुम से बताऊं दोला भाभी, मेम साहब मुझे प्यार ही नहीं करती थी, श्रद्धा करती थी, भक्ति करती थी । सोने में जैसे थोड़ी मिलावट के बिना जेवर नहीं बनते, वैसे ही प्रेम के साथ थोड़ी-सी श्रद्धा-भक्ति मिले बिना प्रेम टिकाऊ नहीं होता । मेम साहब आज दूर, बहुत दूर चली गई है ! लेकिन वह जितनी दूर चाहे चली जाए, जहाँ भी रहे, मैं निश्चित रूप से जानता हूं कि वह मुझे आज भी भूल नहीं सकी है । मुझे मालूम है,

वह आज भी मुझे प्यार करती है। हर दिन की हर घड़ी की स्मृति आज भी उसके मन में ताजी है।

कलकत्ते में और भी कई दिन था। अब की मैंने सबको बता दिया, फागुन में मेम साहब के साथ मेरा ब्याह हो रहा है। कोई तो अवाक् हुआ सुन कर, किसी-किसी ने कहा, यह हम पहले से ही जानते थे।

मैंने किसी के कुछ कहने की परवा न की। परवा करूँ भी क्यों? तुम लोगों ने क्या मुझे प्यार किया है? क्या कोई विपत्ति की घड़ी में मेरे पास आकर खड़े हुए हो? किसी ने भी तो फूटी पाई देकर या एक कप चाय पिलाकर कभी मेरा उपकार नहीं किया। मैं तुम्हारी परवा करूँ भी तो क्यों आखिर? जब जहाँ भी जिससे भेंट हो गई उसी से कहा, मेरी शादी है। मेम साहब से। कब? इसी फागुन में। बहुतों को न्योता दिया, देखो, आना पड़ेगा, हाँ? मित्रों से कहा, अब की अगर तुम लोग दिल्ली नहीं आए, तो सर-फुड़ौवल हो जायगा।

ब्याह से पहले चूँकि अब कलकत्ता आना नहीं होगा, इसलिए ब्याह का कुछ काम भी वहाँ कर लिया। दिल्ली में बढ़िया कुरता नहीं सिलता। भवानीपुर की दूकान से उमदा सिल्क का तीन गज कपड़ा खरीदा। श्याम-बाजार में मंटू बाबू के यहाँ सिलने के लिए दे दिया। दिल्ली में अच्छा बंगला कार्ड नहीं मिलता। कई सौ कार्ड खरीद लिए। और? और सिल्क हाउस से मेम साहब के लिए दो बनारसी साड़ियाँ खरीदीं। दिल्ली में बनारसी साड़ी मिलती है, लेकिन दाम बहुत है। मन मुताबिक मिलती भी मुश्किल से ही है। साड़ी खरीदने के समय पसंद करने के लिए मेम साहब को साथ ले गया था। आसमानी रंग वाली बनारसी मुझे बेहद पसंद थी, उसे भी खूब अच्छी लगी थी, लेकिन उसने बार-बार यही कहा, इतनी कीमती साड़ी खामखा क्यों ले रहे हो?

मैंने कहा, इससे कम कीमत की साड़ी में तुम फबोगी नहीं।

भवें सिकोड़ कर वह बोली, अच्छा!

—और क्या!

साड़ी लेकर दूकान से निकला, तो मेम साहब ने कहा, तुम मेरा दिया हुआ धोती-कुरता पहन कर ब्याह करने के लिए आना।

—अरे! मैंने तो कपड़ा खरीद कर कुरता सिलने के लिए दे दिया!

—तो क्या हुआ! तुम लेकिन मेरा दिया हुआ

करना।

सेंट्रल एवेन्यु के खादी ग्रामोद्योग से मेम साहब ने मेरे लिए कुरते का कपड़ा खरीदा। बोली, चलो, अब धोती खरीद लें।

धोती खरीदने चले, तो मैंने चुपके से मेम साहब के कानों में कहा, ऐसी ही कोर की दोगी कि जरी कोर की ?

जरी कोर की धोती मैंने कई बार माँगी थी, नहीं मिली थी। अबव मिली। एक नहीं, दो।

मैंने पूछा, दो पहन कर ब्याह करूँगा ?

—बदतमीजी मत करो! थोड़ा रुक कर बोली, कुल दो ही तो धोर है तुम्हारे पास। इसलिए एक जोड़ी ही रख लो।

वहाँ से चलकर रास्ते में मैंने कहा, ब्याह का कपड़ा तो तुमने दिया लेकिन फूलशय्या के लिए तो कुछ नहीं दिया ?

उसने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। बोली, उस दिन तुम क्य करोगे, यही सोच कर मुझे बुखार आ रहा है।

—अच्छा ?—मैंने जरा देर में फिर कहा, खैर, ठीक है। तो फि ब्याह ही हो। फूलशय्या की जरूरत नहीं है।

आड़ी निगाहों ताककर वह मुस्कुराते हुए बोली, भूत के मुँह में रा नाम !

इसी तरह से कलकत्ते में कई दिन मजे से कट गए। कलकत्ते रहने क मेरी मियाद पूरी हो गई। दिल्ली मेल के डब्बे में शरीर को फिर ला लिया। मन ? वह वहीं कलकत्ते में पड़ा रह गया। मेम साहब के पास।

दिल्ली लौटा तो फिर काम-काज के बोझ से दब गया। दस-बारह दिन तक तो साँस लेने की फुर्सत नहीं रही। आने वाले कांग्रेस अधिवेशन के लिए पार्टी में दलबंदी हद पर पहुँच गई। कांग्रेस का घरेलू विवाद जितना बढ़ा, हम पर काम-काज का दबाव भी उतना बढ़ा।

इधर कलकत्ते के अखबारों से साफ समझ में आ रहा था, हालत ठीक नहीं है। आग भड़कने ही वाली है।

मद्रास में कांग्रेस अधिवेशन कवर करने गया। वहाँ पहुँचते ही खबर मिली कि कलकत्ते में गोली चली है। दो आदमी मरे हैं। बंगाल में, खास कर कलकत्ता शहर में, इस तरह के राजनैतिक नाटक अक्सर खेले जाते हैं।

दिल्ली लौटकर खबर मिली, डूयर्स, कृष्णनगर, दुर्गापुर और बशीरहाट में भी गोली चली है। कुछ लोग मरे हैं और कुछ घायल हुए

हैं। अब काफी चिंतित हुआ। पता नहीं, अब खोकन क्या कर बैठे। पिछली बार कलकत्ते जाकर उसे काफी तो समझा आया था, लेकिन मेरे मन में शक था कि मेरी सलाह उसके कान में नहीं पैठी है। उपदेश और परामर्श से अगर काम होता तो आज बंगाल के घर-घर में विद्यासागर, विवेकानन्द और नेताजी मिलते।

इस बीच हिमालय की शान्त सरहद अशान्त हो उठी थी। विभिन्न पत्रों में अजीबोगरीब किस्से-कहानियां छापी जा रही थीं। उन खबरों से सरकार स्वाभाविकतया ही उद्विग्न हो गई थी। इसके अलावा पार्लियामेंट का बजट अधिवेशन भी आ पहुँचा था। इस ढंग की खबरों से पार्लियामेंट में नाहक ही तूफान उठ खड़ा होता है। बहुत सोच-विचार के बाद सरकार ने कुछ पत्रकारों को लद्दाख ले जाने का निश्चय किया। आर्मी हेडक्वार्टर्स इस राय से सहमत नहीं था, इसलिए कि उस करारी सर्दी में पत्रकारों को लद्दाख ले जाने में बड़ा झमेला था। लेकिन अन्त तक वे लोग भी राजी हो गए। देशी-विदेशी दस पत्रकारों में मुझे भी जगह मिली।

एक हफ्ते का कार्यक्रम। मेम साहब को मैंने लिखा, एक हफ्ते के लिए लद्दाख जा रहा हूँ। हम लोग २ फरवरी को रवाना होंगे। यहाँ से जम्मू। वहाँ से ऊधमपुर—कोर कमाण्डर के हेडक्वार्टर्स। वहाँ एक दिन रहकर लेह जाएँगे। एक दिन वहां रहकर आपरेशनल एरिया देखने जाएँगे। लौटते हुए फिर एक दिन लेह। तब दिल्ली।

१४ फरवरी से बजट अधिवेशन शुरू होगा। २८ फरवरी को बजट पेश होगा। ४ मार्च को मैं कलकत्ते रवाना हूँगा। पिताजी २ या ३ मार्च को बनारस से कलकत्ते पहुँचेंगे। ६ मार्च को ब्याह। ८ मार्च को डी-लक्स एक्सप्रेस से तुम्हें लेकर दिल्ली लौट आऊँगा। १४ मार्च को मेरी छुट्टी खत्म होगी। इसलिए अगर कहीं बाहर घूमने जाना हो, तो उन्ही कई दिनों में लौट आना होगा। पार्लियामेंट का सत्र खत्म होने पर तुम्हारे साथ जरूर कहीं घूमने जाऊँगा। क्यों, राजी ?

मेम साहब ने लिखा, तुम्हारी चिट्ठी से पता चला, तुम लद्दाख जा रहे हो। पत्रकार हो, तो तुम्हें तो तमाम जगह जाना पड़ेगा। बहुत बार आफत के आमने-सामने भी खड़ा होना पड़ेगा। मेरा ख्याल करके तुम जरूर ही सब जगह सावधानी से रहोगे। लेकिन इतना मैं जानती हूँ, कोई भी विपदा तुम्हें छू नहीं पाएगी।

तुमने लिखा है, लद्दाख में इस समय माइनस १०-१२ डिग्री तापमान

है। कलकत्ते के बंगाली के नाते यह हम लोगों की कल्पना से बाहर है। मुझे तो यह सोचते हुए भी डर लगता है। ऊनी अंडरवीयर, ग्लोव्स, कैप लेना मत भूलना। जो ओवरकोट तुम बर्लिन से लाए हो उसे जरूर साथ रखना। मैं जानती हूँ, तुम ठीक ही रहोगे, फिर भी चिन्ता तो रहेगी। इसलिए बने तो लेह पहुँचकर एक तार कर देना।

लिखा, ८ मार्च को तुम्हारे साथ दिल्ली जाने के बाद ज्यादा घूमने का समय रहेगा क्या ? माना कि तुमने तो सब कुछ सजा-सँवार दिया है, फिर भी नई गिरस्ती का कुछ झमेला तो रहेगा ही और फिर तुम्हें थोड़ा विश्राम भी तो चाहिए ! अभी-अभी तो काँग्रेस कवर करके लौटे। अब लद्दाख जा रहे हो। लौटते ही पार्लियामेंट। उसके बाद कलकत्ता जाने-आने और ब्याह में कुछ कम मिहनत पड़ेगी तुम्हें ? इसलिए दिल्ली पहुँच कर फिर कहीं जाने का इरादा मेरा नहीं है।

इस बीच तुम्हें देख नहीं पाऊँगी। बस, २० फागुन को एकबारगी उस शुभ घड़ी में ही ! सोचने में भी बड़ा मजा आता है। तुम्हें भी आ रहा है न ?

मेम साहब की चिट्ठी पाने के दूसरे ही दिन भोर में पालम के एयर फोर्स स्टेशन से एक स्पेशल विमान द्वारा हम लोग जम्मू चले गए। वहाँ से मोटर से ऊधमपुर। एक रात ऊधमपुर में बिताई। दूसरे दिन तड़के जम्मू आया तो मालूम हुआ, लेह की आबहवा बहुत खराब है। प्रूविंग फ्लाइट में एक हवाई जहाज गया है। यदि वह हवाई जहाज वहाँ उतर सका, तो वैसी खबर पाने पर ही हम लोगों का हवाई जहाज उड़ेगा। आठ-साढ़े आठ बजे तक आबहवा की हालत नहीं सुधरी तो आज अब जाना नहीं होगा।

साढ़े आठ बजे तक वहाँ से कोई मैसेज नहीं आया। प्रूविंग फ्लाइट में जो हवाई जहाज गया था, वह नौ बजे के करीब वापस आ गया। कोर हेडक्वार्टर्स से फौजी हेडक्वार्टर्स को खबर चली गई—बैड वेदर एराउण्ड लेह। प्रूविंग फ्लाइट फेल्ड। प्रेस पार्टी हेल्ड-अप। मैंने भी अपने हेडक्वार्टर्स को एक तार भेजा—लेह अंडर बैड वेदर। नो फ्लाइट टुडे।

ऊधमपुर में और भी एक रात मजे में ही बीती। दोपहर के बेहतरीन लंच के अलावा कोर कमाण्डर ने रात को अपनी ओर से एक काकटेल पार्टी दी। दूसरे दिन रवाना होने के पहले हम लोगों ने वेदर-रिपोर्ट चेक-अप करके जाना, लेह की आबहवा अच्छी ही है। इसलिए पहली

सॉर्टी के पहले ही एयरक्राफ्ट से जम्मू से रवाना होकर हम लोग लेह पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर थोड़ा आराम करके शहर गया। वहाँ से मेम साहब को एक अर्जेन्ट टेलिग्राम किया—सकुशल पहुँचे।

लद्दाख में कलकत्ते की कोई खबर नहीं मिली। समय भी नहीं मिलता, मौका भी नहीं। कलकत्ते का स्टेशन बड़ा कमजोर है। फिर इतनी ठण्ढक में बैटरी भी ठीक से काम नहीं करती। इसलिए रेडियो से भी कलकत्ते की कोई खबर नहीं मिली।

एक दिन लेह में रहा, उसके बाद हम लोग फारवर्ड एरिया देखने गए। कहीं जीप, कहीं हेलीकाप्टर। पूरे दिन हिमालय के रेगिस्तानी इलाके में चौदह-पन्द्रह हजार फुट की ऊँचाई पर घूमता-फिरता। तीसरे पहर से आधी रात तक अपने या किसी-न-किसी अफसर के मंगोलियन टेन्ट में बिताता।

फारवर्ड एरिया से हम लौटकर लेह आए। आने पर मालूम हुआ, पाँच दिन से कोई भी हवाई जहाज यहाँ नहीं उतरा है। बैड वेदर। आबहवा कब ठीक होगी, यह किसी को मालूम नहीं। दूसरे दिन भी ठीक हो जा सकती है और आठ-दस दिन में भी ठीक नहीं हो सकती। सर्दियों में लद्दाख की आबहवा ऐसी ही रहती है। चिन्तित हुए बिना नहीं रहा गया और चिन्ता करने से भी क्या उपाय था?

शहर गया। डाकघर से मेम साहब को एक तार भेजा। रिटर्न्ड फ्रॉम फॉरवर्ड एरिया। बैड वेदर। प्रोग्राम अनसर्टेन।

आखिर एक हफ्ते के बदले बारह दिन में हमने पालम की मिट्टी पर पाँव रक्खा।

एयरपोर्ट से सीधे वेस्टर्न कोर्ट गया। रिसेप्सन काउण्टर में कमरे की कुंजी माँगी तो कहा, योर सिस्टर-इन-लॉ इज देयर।

सिस्टर-इन-लॉ?

मैं भौंचक्के में पड़ गया। दीदी? मझली-दी? लेकिन वह इस समय क्यों आएँगी भला? घूमने के लिए? कोई खबर तो मिलती! कोई जरूरी काम है? लिफ्ट पर चढ़ते-चढ़ते बहुत कुछ सोच गया। यह भी सोचा, ब्याह में कोई गड़बड़ी हो गई क्या? नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है?

अन्दर जाते ही मझली-दी को देखकर ठिठक गया। उन्हें वैसी बुरी हालत में देखकर लगा, शायद उन्हीं का चरम [illegible]

पीड़ा से मन भर गया। यही तो कई महीने पहले बेचारी की शादी ही हुई है। इसी बीच....

मुझे देखते ही मझली-दी फुक्का फाड़कर रो उठीं और मुझे जकड़ लिया। एक तो उनका यह अचानक आना, उससे भी अप्रत्याशित उनका यह रोना देखकर मैं तो ऐसा घबड़ा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी नहीं फूटा। मुझसे उसी तरह लिपटकर मझली-दी कब तक रोती रहीं, यह मुझे याद नहीं। लेकिन बड़ी देर के बाद ही वह एकाएक बोल उठी थीं, अकेले तुम कैसे जीओगे भाई ?

अकेले ? मैं ?

मैंने अब मझली-दी से अपने को छुड़ाकर उनके दोनों हाथ पकड़ कर पूछा, मेम साहब कैसी है ?

मेम साहब का नाम सुनते ही मझली-दी से रहा नहीं गया। फिर मुझे अपनी छाती से लगा कर वह जोरों से रो पड़ीं।

मुझसे अब बरदाश्त नहीं हो सका। डपट कर पूछा, क्या हो गया मेम साहब को ?

अस्पष्ट स्वर में वह बोलीं, वह नहीं रही भाई !

लमहे में लगा, सारी दुनिया अँधेरे में डूब गई। जाने किसके अमंगल-स्पर्श से पृथ्वी पर से सबकी प्राण-शक्ति लुप्त हो गई। लगा, पाँव के नीचे की जमीन खिसकती जा रही है और मैं पाताल की अतल गहराई में धँसता जा रहा हूँ।

दोला भाभी, मुझसे खड़ा नहीं रहा गया। घोर पियक्कड़ की तरह लड़खड़ाते हुए सोफे पर गिर पड़ा। उतने बड़े महासर्वनाश का समाचार सुनकर भी मुझे कुछ नहीं हुआ। बड़े आराम से सो गया। नींद टूटी तो देखा, रात हो गई है और मेरे चारों ओर बहुत से लोग भीड़ लगाए खड़े हैं। पहले तो मैं किसी को पहचान नहीं पा रहा था। कुछ देर के बाद देखा, डॉक्टर सेन मेरे पास बैठे हुए हैं।

मेरे सर पर हाथ फेरते हुए डॉक्टर सेन ने पूछा, कैसी तबीयत है ?

नींद टूटने के बाद डॉक्टर सेन को देखकर मैं अवाक् हो गया था। सोचा, शायद घूमने आ गए हैं। इसलिए मैंने भी पूछा, आप कैसे हैं ?

—मैं अच्छा हूँ। आप अच्छे हैं तो ?

—बड़ी नींद आ रही है। कल आइएगा।—मैं फिर सो गया। दूसरे दिन बड़ी देर से मेरी नींद टूटी। गजानन चाय लेकर आया, वापस कर

दिया उसे। नहाने को कहा, नहाया नही। फिर थोड़ी देर वाद आकर गजानन ने निहोरा किया, उसे फिर लौटा दिया। मैं चुपचाप वैठा रहा।

उसके वाद मझली-दी आईं—नहा लो भाई, थोड़ा-सा कुछ खा लो।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर तक यों ही वैठे रहने के बाद जी में आया, ग्रीन पार्क जाकर मेम साहब की गिरस्ती देख आऊँ। गजानन को आवाज देकर कहा, गाड़ी निकालो।

—कहाँ जाइएगा छोटे साव ?—बहुत धीरे से उसने पूछा।

—ग्रीन पार्क !

कुछ देर में गजानन ने आकर खबर दी, गाड़ी तैयार है। सुनते ही मैं उठ पड़ा।

गजानन ने कहा, इन्ही गंदे कपड़ों में निकलेंगे ?

—और क्या सिल्क का कुरता पहन कर निकलूँ ?

पैरों में चप्पल डाल कर तेजी से निकल पड़ा। गजानन दौड़ता हुआ गया। दरवाजा खोल कर पीछे की सीट पर बैठ गया।

उस दिन मैंने विजली की गति से गाड़ी चलाई थी। सिगनल तक की परवा नहीं की। गजानन ने कहा, गाड़ी इतनी तेज मत चलाइए। मैंने उसे कोई जवाब ही नहीं दिया। मझली-दी ने कहा, जरा धीरे चलाओ भाई, बड़ा डर लगता है।

—कोई डर नही मझली-दी, हम लोग नही मरेंगे।

ग्रीन पार्क वाले मकान में आकर पहले तो ठिठक गया। आँखों में आँसू भर आया। पोंछ लिया। सारे मकान को घूम-घूम कर देखा, खूब अच्छी तरह से देखा। ड्राइंग रूम में आया। बुकसेल्फ पर से मेम साहब के पोर्ट्रेट को उठा लिया।

बस ! उसके बाद मैं अपने को सम्हाल नहीं सका। जोर-जोर से रो पड़ा। माँ को इतनी कम उम्र में खोया था कि आँसू नहीं बहा पाया था। आगे चलकर जीवन में बहुत-बहुत दुःख उठाया, चोटें खाईं, फिर भी आँसू बहाने का अवकाश नहीं मिला। इसीलिए उस दिन मेरे आज तक के रोक रक्खे आँसू बेरोक बह निकले।

मेम साहब मेरे पास नहीं थी, मगर मैं खूब जानता हूँ, वह मेरा रोना सुने बिना नहीं रह सकी होगी। अपने सारे जीवन के जमा हुए आँसू को उस दिन उस मुँहजली के लिए मैंने उँड़ेल दिया था। आगे के लिए एक बूँद भी छिपाकर नही रखा।

पीड़ा से मन भर गया। यही तो कई महीने पहले बेचारी की शादी ही हुई है। इसी बीच....

मुझे देखते ही मझली-दी फुक्का फाड़कर रो उठीं और मुझे जकड़ लिया। एक तो उनका यह अचानक आना, उससे भी अप्रत्याशित उनका यह रोना देखकर मैं तो ऐसा घबड़ा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी नहीं फूटा। मुझसे उसी तरह लिपटकर मझली-दी कब तक रोती रहीं, यह मुझे याद नहीं। लेकिन बड़ी देर के बाद ही वह एकाएक बोल उठी थीं, अकेले तुम कैसे जीओगे भाई ?

अकेले ? मैं ?

मैंने अब मझली-दी से अपने को छुड़ाकर उनके दोनों हाथ पकड़ कर पूछा, मेम साहब कैसी है ?

मेम साहब का नाम सुनते ही मझली-दी से रहा नहीं गया। फिर मुझे अपनी छाती से लगा कर वह जोरों से रो पड़ीं।

मुझसे अब बरदाश्त नहीं हो सका। डपट कर पूछा, क्या हो गया मेम साहब को ?

अस्पष्ट स्वर में वह बोलीं, वह नहीं रही भाई !

लमहे में लगा, सारी दुनिया अँधेरे में डूब गई। जाने किसके अमंगल-स्पर्श से पृथ्वी पर से सबकी प्राण-शक्ति लुप्त हो गई। लगा, पाँव के नीचे की जमीन खिसकती जा रही है और मैं पाताल की अतल गहराई में धँसता जा रहा हूँ।

दोला भाभी, मुझसे खड़ा नहीं रहा गया। घोर पियक्कड़ की तरह लड़खड़ाते हुए सोफे पर गिर पड़ा। उतने बड़े महासर्वनाश का समाचार सुनकर भी मुझे कुछ नहीं हुआ। बड़े आराम से सो गया। नींद टूटी तो देखा, रात हो गई है और मेरे चारों ओर बहुत से लोग भीड़ लगाए खड़े हैं। पहले तो मैं किसी को पहचान नहीं पा रहा था। कुछ देर के बाद देखा, डॉक्टर सेन मेरे पास बैठे हुए हैं।

मेरे सर पर हाथ फेरते हुए डॉक्टर सेन ने पूछा, कैसी तबीयत है ?

नींद टूटने के बाद डॉक्टर सेन को देखकर मैं अवाक् हो गया था। सोचा, शायद घूमने आ गए हैं। इसलिए मैंने भी पूछा, आप कैसे हैं ?

—मैं अच्छा हूँ। आप अच्छे हैं तो ?

—बड़ी नींद आ रही है। कल आइएगा।—मैं फिर सो गया। दूसरे दिन बड़ी देर से मेरी नींद टूटी। गजानन चाय लेकर आया, वापस कर

दिया उसे। नहाने को कहा, नहाया नहीं। फिर थोड़ी देर बाद आकर गजानन ने निहोरा किया, उसे फिर लौटा दिया। मैं चुपचाप बैठा रहा।

उसके बाद मझली-दी आईं—नहा लो भाई, थोड़ा-सा कुछ खा लो।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर तक यों ही बैठे रहने के बाद जी में आया, ग्रीन पार्क जाकर मेम साहब की गिरस्ती देख आऊँ। गजानन को आवाज देकर कहा, गाड़ी निकालो।

—कहाँ जाइएगा छोटे साब?—बहुत धीरे से उसने पूछा।

—ग्रीन पार्क!

कुछ देर में गजानन ने आकर खबर दी, गाड़ी तैयार है। सुनते ही मैं उठ पड़ा।

गजानन ने कहा, इन्हीं गंदे कपड़ों में निकलेंगे?

—और क्या सिल्क का कुरता पहन कर निकलूँ?

पैरों में चप्पल डाल कर तेजी से निकल पड़ा। गजानन दौड़ता हुआ गया। दरवाजा खोल कर पीछे की सीट पर बैठ गया।

उस दिन मैंने बिजली की गति से गाड़ी चलाई थी। सिगनल तक की परवा नहीं की। गजानन ने कहा, गाड़ी इतनी तेज मत चलाइए। मैंने उसे कोई जवाब ही नहीं दिया। मझली-दी ने कहा, जरा धीरे चलाओ भाई, बड़ा डर लगता है।

—कोई डर नहीं मझली-दी, हम लोग नहीं मरेंगे।

ग्रीन पार्क वाले मकान में जाकर पहले तो ठिठक गया। आँखों में आँसू भर आया। पोंछ लिया। सारे मकान को घूम-घूम कर देखा, खूब अच्छी तरह से देखा। ड्राइंग रूम में आया। बुकसेल्फ पर से मेम साहब के पोर्ट्रेट को उठा लिया।

बस! उसके बाद मैं अपने को सम्हाल नहीं सका। जोर-जोर से रो पड़ा। माँ को इतनी कम उम्र में खोया था कि आँसू नहीं बहा पाया था। आगे चलकर जीवन में बहुत-बहुत दुःख उठाया, चोटें खाईं, फिर भी आँसू बहाने का अवकाश नहीं मिला। इसीलिए उस दिन मेरे आज तक के रोक रक्खे आँसू बेरोक बह निकले।

मेम साहब मेरे पास नहीं थी, मगर मैं खूब जानता हूँ, वह मेरा रोना सुने बिना नहीं रह सकी होगी। अपने सारे जीवन के जमा हुए आँसू को उस दिन उस मुँहजली के लिए मैंने उँड़ेल दिया था। आगे के लिए एक बूँद भी छिपाकर नहीं रक्खा।

मझली-दी सोफे पर बैठी चुपचाप रो रही थीं। गजानन दरवाजे के पास खड़ा रो रहा था।

आँसू की बाढ़ थमी तो मैंने मझली-दी से पूछा, मेम साहब को क्या हुआ था मझली-दी ?

—होगा क्या ? कलकत्ते का वही चिरंतन झमेला और खोकन का विद्रोह !

पाँच फरवरी। सवा तीन बजे क्लास खत्म हुआ। कालेज से निकलते-निकलते उसे पौने चार बज गए। घर आने के लिए हवड़ा में उसने ५ नंबर बस पकड़ी। पिछले कई दिनों की तरह उस दिन भी बस डलहौजी होकर नहीं गई। खैर। घर पहुँचते ही खोकन के एक सहपाठी ने हाँफते हुए आकर खबर दी, छोटी दीदी, खोकन की छाती में गोली लगी है।

मेम साहब ने चीख कर सिर्फ पूछा, कहाँ ?

—ऐसप्लेनेड ईस्ट में।

मेम साहब ने एक सेकंड भी समय नष्ट नहीं किया। टैक्सी लेकर ऐसप्लेनेड भागी। ग्रैंड होटल के सामने टैक्सी रुकी। पुलिस ने और आगे जाने नहीं दिया। मेम साहब वहीं से ऐसप्लेनेड ईस्ट को दौड़ गई। उस समय वहाँ कुरुक्षेत्र मचा हुआ था। मेम साहब खोकन की खोज में दौड़ती फिर रही थी। खोकन भला कहाँ मिलता ? वह तो उस समय मेडिकल कालेज अस्पताल में था। खोकन को न पाकर वह पागल-सी हो उठी थी, पर ज्यादा देर तक पागल रहने की नौबत नहीं आई। उस हलचल में, आँसू गैस के धुएँ के धुंध में राइफल का एक छोटा-सा बुलेट आकर उसकी छाती में लग गया।

और खोकन ? गोली उसकी छाती में नहीं, पाँव में लगी थी। छोटी-दी के मरने के समाचार से वह भी उन्मादी हो गया था। मेडिकल कालेज के सारे रोगियों की रुलाई को दबाकर उसकी रुलाई सुनाई पड़ी थी।

दो दिन बाद कलकत्ते के पत्रों में मेम साहब की मौत पर बड़ी अच्छी ह्यूमन स्टोरी निकली थी। एक अखबार ने मेम साहब और खोकन की तसवीर पास-पास छापी थी। रिपोर्ट पढ़ कर सबका मन दुखी हो गया था। स्कूल-कालेज, आफिस-रेस्तराँ, ट्राम-बस, लोकल ट्रेन में सभी इसी कहानी की चर्चा करते रहे। पुलिस के लोगों ने भी उसे पढ़ा था। सभी दुखी और मर्माहत हुए थे।

याद आया, बहुत दिन पहले मैं जब कलकत्ते में रिपोर्टरी करता था,

तब मैंने भी ऐसी कितनी ह्यूमन स्टोरी लिखी और पढ़ी थी, लेकिन जिस दिन मेरी मेम साहब पर कलकत्ते के अखबारों में इतनी बड़ी और इतनी अच्छी रिपोर्ट छपी, उस दिन मैं उस रिपोर्ट को पढ़ नहीं पाया।

उन अखबारों को छाती से दबाकर सिर्फ चुपचाप आँसू बहाता रहा।

बीस

उसके बाद का इतिहास अब क्या बताऊँ? मेरे जीवन की भरी दोपहरी में ही ऐसे अप्रत्याशित रूप से मेरा जीवन-सूर्य सदा के लिए काले बादलों में छिप जायगा, कभी कयास तक नहीं था। लेकिन क्या करूँ? जीवन से लाटरी खेलने के लिए ही शायद भगवान् ने मुझे दुनिया में भेजा है। जीवन में जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की, जो मुझ जैसे महज मामूली आदमी के जीवन में होना नहीं चाहिए था, मेरे जीवन में वे सारे असंभव संभव हुए। जो बहुतों के जीवन में सभव हुआ है और होगा, जो मेरे जीवन में भी हो सकता था, वही नहीं हुआ।

क्यों, क्यों मेरा ऐसा हुआ, बता सकती हो? जीवन में यह मान-सम्मान किसने माँगा था? धन, यश, प्रतिष्ठा? स्टैंडर्ड हेराल्ड किसने चाहा था? हर साल यह विदेश-यात्रा? मैंने तो यह सब कुछ भी नहीं चाहा था। महज तीन-चार सौ रुपए माहवार का रिपोर्टर होकर मिर्जापुर या बैठकखाना में ही तो मैं मजे में रह सकता था। लाखों-लाख, करोड़ों-करोड़ दूसरे बहुतेरों की तरह मैं भी तो अपनी आशा-आकांक्षा, स्वप्न-साधना की मानसी को पा सकता था! पा सकता था अपनी प्रेयसी को, अपने जीवन की देवी को, अपनी उस अद्वितीया अनन्या को! वह दईमारी मुँहजली लडकी मेरे जीवन में न आती तो क्या पृथ्वी का घूमना बंद हो जाता? चाँद-सूरज नहीं उगते?

बीच-बीच में जी में आता है, कालापहाड़ की नाईं भगवान् को इस दुनिया को आग लगा दूँ। जी में आता है इन मंदिर-मस्जिद-गिरजाघरों को तोड़-फोड़ कर जमींदोज कर दूँ। मुझ जैसे बेबस-बेसहारे लोगों के साथ आँख-मिचौनी खेलने का अधिकार भगवान् को किसने दिया? माँ की गोद से इकलौते बच्चे को छीन लेने का अधिकार भगवान् को किसने दिया? लाखों-करोड़ों लोगों की सजी-सजाई दुनिया को उजाड़ने व

साहस भगवान् को किसने दिया ?

२० फागुन यानी ६ मार्च को मेरी शादी का दिन था। मैं मेम साहब का दिया हुआ धोती-कुरता पहन कर ग्रीन पार्क वाले मकान में गया था। उसके उस पोर्ट्रेट को अपनी गोद में लेकर यही सब अंट-शंट सोचते हुए मैं सारी रात वहाँ आँसू बहाता रहा था। आँखें पोंछते हुए उस तसवीर को मैंने माला पहनाई थी, माथे में सिंदूर दिया था! और? अपने कलेजे से लगाकर उसे प्यार किया था।

एक उस शुभ दिन को ही नहीं, तब से मैं रोज ग्रीन पार्क जाया करता हूँ। अपना काम-धंधा समेट कर रोज साँझ को वहाँ जाकर मेम साहब की गिरस्ती की खोज-खबर लेता हूँ, मेम साहब को दुलारता हूँ, सुख-दुःख की बातें करता हूँ। रोज कम से कम एक बार मेम साहब के पास गए बिना मुझसे रहा नहीं जाता। कभी-कभी काम-काज में काफी रात हो जाती है, थकी-हारी आँखें नींद से बुझती आती हैं। लगता है, वेस्टर्न कोर्ट ही चला जाऊँ, जाकर सो रहूँ। लेकिन गजब! गाड़ी का स्टियरिंग ठीक हेस्टिंग्स-तुगलक रोड से घूम कर सफदरजंग हवाई अड्डे के बगल से मेहर अली रोड होते हुए आखिर ग्रीन पार्क में ले जाकर हाजिर कर देता।

लद्दाख से लौटने के बाद मझली-दी से जब मैंने अपने सर्वनाश की वह खबर सुनी थी, तो लगा था, मैं अब जिंदा नहीं रह सकूँगा। किसी प्रियजन के विछोह की वेदना से हर किसी के मन में ऐसी प्रतिक्रिया होती है। मेरे भी हुई थी। समय के साथ-साथ मुझमें भी परिवर्तन हुआ है। मेम साहब नहीं है, मगर मैं हूँ। मैं नहीं मरा, मर नहीं सका। मैं अच्छा-खासा तंदुरुस्त आदमी-सा जिंदा हूँ। बाहर से मुझे देखकर कोई नहीं समझ सकता, जान सकता कि मेरे कलेजे के अन्दर व्यथा-वेदना, दुःख-पश्चात्ताप का हिमालय छिपा पड़ा है। मेरा हँसी-ठट्ठा, हो-हुल्लड़ देखकर किसी को अन्दाज तक नहीं होता कि मैं एक वियोगांत नाटक का हीरो हूँ। मेरे होंठों पर हँसी है, लेकिन मन की बिजली, प्राणों की उमंग, आँखों का सपना, सब गायब हो गया है, सदा के लिए खो गया है।

तुमसे बता दूँ दोला भाभी, जब तक काम करता रहता हूँ, तब तक मजे में रहता हूँ। कलेजे की पीड़ा को महसूस करने का मौका नहीं मिलता। लेकिन रात को? जब मैं सारी दुनिया के लोगों से बहुत दूर चला जाता हूँ, जब मैं अपनी स्मृतियों के आमने-सामने होता हूँ, तब मैं

थिर नहीं रह पाता। अपने को बिलकुल खो बैठता हूँ। मेरे सारे शासन की उपेक्षा करते हुए आँखों से आँसू बहना जारी हो जाता है। मेम साहब की तसवीर को दुलारता हूँ, प्यार करता हूँ, उससे बातें करता हूँ। घंटों बातें करता रह जाता हूँ। रात काफ़ी हो जाती है, पर नींद नहीं आती। और नींद आने से ही क्या चैन है? वह दईमारी मुँहजली मुझे अकेले सोते देखकर शायद ईर्ष्या से जल मरने लगती है। मेरी नींद तोड़े बिना गोया उसे कल नहीं पड़ती।

फ़िराक़ गोरखपुरी का एक शेर याद आ रहा है—

नींद आए तो ख्वाब आए
ख्वाब आए तो तुम आए
पर तुम्हारी याद में—
न नींद आए, न ख्वाब आए।

है न खूब? नींद आते ही सपने आते हैं, सपने आते ही तुम आती हो। लेकिन ज्यों ही तुम आती हो, त्यों ही न नींद आती है, न सपने आते हैं।

इस शायर की जिंदगी में भी शायद मेरी ही जैसी कोई दुर्घटना घटी होगी, नहीं तो ऐसी दर्दभरी, इतनी सच्ची बात को इतनी मिठास देकर कैसे लिख गए? शायर की बात हरूफ़-ब-हरूफ़ सच है। मेरी पलकें भारी होकर जैसे ही बुझने लगती हैं वैसे ही दबे पाँव वह मेरे कमरे में घुस आती। मैं समझ जाता हूँ, तो भी करवट लेकर पड़ा रहता हूँ। मेरे पास आकर वह लुढ़क जाती है, मैं फिर भी उसकी ओर नहीं देखता। वह दईमारी लाड़ से, प्यार से मेरे दोनों होंठों का तो सत्यानाश कर देती है। फिर कुछ देर मेरी छाती पर सर रखकर सो जाती है, या कि मेरे सिर को अपने कलेजे से लगाकर लेट जाती है। फिर उससे चुप नहीं रहा जाता। आवाज देती है, सुनते हो? मैं सुनता हूँ, पर जवाब नहीं देता। वह फिर पुकारती है, अजी ओ, सुनो।

मैं छोटा-सा जवाब देता हूँ, ऊँ।

हाथ से मुझे खींचती हुई कहती है, इस करवट नहीं लेटोगे?

अस्फुट स्वर में एक अजीब-सी आवाज करके मैं चित्त लेट जाता हूँ। एक झटके में वह मुझे अपनी ओर घुमा लेती है। मुझसे फिर चुप नहीं रहा जाता। उसे जकड़ लेता हूँ और आँखें भर कर जैसे ही उसे देखना चाहता हूँ कि मेरी नींद खुल जाती है।

सी तरह दिन पर दिन, महीनों, बरसों से मेम साहब रोज रात रे पास आकर मेरी नींद छीन लेती है। पहले कैसी वाहियात नींद री ! दुनिया चाहे उलट-पलट जाय, मेरी नींद नहीं टूटने की। इस के लिए मेम साहब ने ही क्या मुझे कम फटकारा है ? और आज- ? घंटों बिस्तर पर लुढ़कता रहता हूँ, नींद नहीं आती। भोर की फ दो-तीन घंटे सोता हूँ, बस।

जिंदगी कैसी तो फीकी हो गई है, बदरंग। सब कुछ होते हुए भी मेरा छ भी नहीं है। घर-गिरस्ती रहते हुए भी मैं गृही नहीं हो सका। और, इस गिरस्ती के लिए किया भी तो कुछ कम नहीं। एक अच्छे सुखी परिवार के लिए जो भी चाहिए, वह सब कुछ मेरे ग्रीन पार्क के मकान में है। जहाँ भी गया, वहीं से कुछ न कुछ लाकर मेम साहब के लिए ग्रीन पार्क के मकान में जमा किया है। सोफा, कालीन, फ्रीज से लेकर रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेप रेकार्डर तक है। मेम साहब के तो बाल बहुत अच्छे थे न इसीलिए उसको मैंने एक बार कहा था, तुम्हें मैं एक हेयर-ड्रायर लाक दूँगा। बेडरूम में देख लीजिए, मैंने वह भी ला रखा है। उसे आरगन बजा कर गीत गाने का बड़ा शौक था। कोई दो साल पहले जर्मन दूतावास के फर्स्ट सेक्रेटरी की बदली हो गई। उनका आरगन मैंने खरीद लिया। ड्राइंग रूम के दाएँ कोने में वह रक्खा हुआ है। आरगन के एक और मेम साहब की तसवीर और 'गीत-वितान' की एक प्रति रक्खी हुई है। दाईं तरफ चेक कट-ग्लास की फूलदानी में फूल रख दिया करता हूँ।

मेम साहब के सपने देखने की कोई सीमा नहीं थी।...."अजी ओ तुम मुझे एक रॉकिंग चेयर खरीद देना। जाड़ों में खा-पीकर बरामदे धूप में उस पर बैठकर झूलते हुए मैं तुम्हारी किताबें पढ़ा करूँगी।"... कब किताब लिखूँगा और वह कब मेरी किताब पढ़ेगी, नहीं जान लेकिन ग्रीन पार्क के मकान में सामने के बरामदे पर मैंने रॉकिंग चे रख दी है। जाड़ों में कभी अगर दोपहर मे वहाँ जाता हूँ तो मैं साफ पाता हूँ कि अपने लंबे बाल खोले रॉकिंग चेयर पर बैठी मेम साहब किताब पढ़ रही है। ड्राइंग रूम में जाता हूँ तो लगता है, मेम आरगन पर गा रही है....

जीवन-मृत्यु की सीमा के उस पार,
तुम हो खड़े मीत, ओ मेरे प्यार !

अब और क्या लिखूं दोला भाभी? अब मुझसे लिखा नहीं जाता। ये बातें लिखने में मेरा हाथ तक बेबस हो जाता है। मैं सोच नहीं सकता कि मेम साहब नहीं है। राह-बाट में चलते हुए कुछ दूर पर सांवली-सी खिंची-खिंची आंखों वाली कोई लड़की दीख जाती है तो लगता है, मेम साहब है शायद। मैं लगभग दौड़ता हुआ वहां जाता हूँ। पर मेम साहब कहां? उसने अपने को ऐसी ओट में रक्खा है कि मैं तमाम जिंदगी चोर बनकर उसे खोजता फिरूंगा, लेकिन पकड़ नहीं पाऊंगा। मैं सिर्फ यही सोचता हूं, मुझे इतना कष्ट देकर उसे लाभ क्या है? क्या उसे जरा भी तकलीफ नहीं होती? जरा देर के लिए मेरे सामने आती, तो क्या मैं उसे निगल जाता? आज अब मैं और कुछ नहीं चाहता। सिर्फ कभी-कभी उसे देखना चाहता हूँ, देखना चाहता हूँ उसकी वे घनी काली बड़ी-बड़ी आंखें और वह बड़ा-सा जूड़ा, हलकी-सी हँसी। और? और क्या चाहूँगा? चाहने से ही क्या मिलेगा? अपने माथे पर उसके हाथ का जरा परस पाऊँगा क्या? मैं यह नहीं सोच सकता कि मैं अब कभी उसे देख भी नहीं पाऊँगा।

दिल्ली में एक साथ ज्यादा दिन मैं टिक नहीं पाता। साल में आठ-दस बार कलकत्ते भाग जाया करता हूँ। जिन सड़कों से मेरी और उसकी स्मृतियां जड़ी हुई हैं, उन सड़कों पर घूमता रहता हूँ। सवेरे रासबिहारी मोड़ पर लेडीज ट्राम के लिए और तीसरे पहर एसेम्बली हाउस के कोने पर या हाईकोर्ट के उस तरफ वाले रेस्तरां का चक्कर काटा करता हूँ। उसे तो नहीं देख पाता, परंतु उसकी छाया को देखा करता हूँ।

जानें और कितना क्या करता हूँ! जहां भी मेम साहब की याद छिपी हुई है, समय मिलने पर मैं वहीं दौड़ा जाता हूँ। डायमंड हारबर, काकद्वीप से लेकर दार्जिलिंग के पहाड़ पर, पुरी के समुद्रतट पर, जयपुर की सड़कों पर, सिलिसेर की झील के किनारे। बदले में मिलता क्या है? सिर्फ आंसू और पंजरा हिलाने वाला लंबी उसांस! बस।

कभी-कभी लगता है, मैं भूल हूँ, मिथ्या हूँ, छाया हूँ, अव्यय हूँ! जी में होता है, अपने आप से यों वंचना करके क्या लाभ है? अगर मेम साहब मुझे ठगकर यों छिपी रह सकती है, तो मैं ही उसे क्यों याद रक्खूं? उस दईमारी को भूलने के लिए ह्वाइट हॉर्स या वैट सिक्स्टीनाइन की बोतलें गटागट पी गया हूँ। पीते-पीते छाती और पेट में जलन उठी है और मैं आपे में नहीं रह सका हूँ, फिर भी उसकी हँसी वे [illegible] आंखें

इसी तरह दिन पर दिन, महीनों, बरसों से मेम साहब रोज रात को मेरे पास आकर मेरी नींद छीन लेती है। पहले कैसी वाहियात नींद थी मेरी! दुनिया चाहे उलट-पलट जाय, मेरी नींद नहीं टूटने की। इस नींद के लिए मेम साहब ने ही क्या मुझे कम फटकारा है? और आज-कल? घंटों बिस्तर पर लुढ़कता रहता हूँ, नींद नहीं आती। भोर की तरफ दो-तीन घंटे सोता हूँ, बस।

जिंदगी कैसी तो फीकी हो गई है, बदरंग। सब कुछ होते हुए भी मेरा कुछ भी नहीं है। घर-गिरस्ती रहते हुए भी मैं गृही नहीं हो सका। और, इस गिरस्ती के लिए किया भी तो कुछ कम नहीं। एक अच्छे सुखी परिवार के लिए जो भी चाहिए, वह सब कुछ मेरे ग्रीन पार्क के मकान में है। जहाँ भी गया, वहीं से कुछ न कुछ लाकर मेम साहब के लिए ग्रीन पार्क के मकान में जमा किया है। सोफा, कालीन, फ्रीज से लेकर रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेप रेकार्डर तक है। मेम साहब के तो बाल बहुत अच्छे थे न, इसीलिए उसको मैंने एक बार कहा था, तुम्हें मैं एक हेयर-ड्रायर लाकर दूँगा। बेडरूम में देख लीजिए, मैंने वह भी ला रखा है। उसे आरगन बजा कर गीत गाने का बड़ा शौक था। कोई दो साल पहले जर्मन दूतावास के फर्स्ट सेक्रेटरी की बदली हो गई। उनका आरगन मैंने ख़रीद लिया। ड्राइंग रूम के दाएँ कोने में वह रक्खा हुआ है। आरगन के एक ओर मेम साहब की तसवीर और 'गीत-वितान' की एक प्रति रक्खी हुई है। दाईं तरफ चेक कट-ग्लास की फूलदानी में फूल रख दिया करता हूँ।

मेम साहब के सपने देखने की कोई सीमा नहीं थी।...."अजी ओ, तुम मुझे एक रॉकिंग चेयर खरीद देना। जाड़ों में खा-पीकर बरामदे में धूप में उस पर बैठकर झूलते हुए मैं तुम्हारी किताबें पढ़ा करूँगी।"....मैं कब किताब लिखूंगा और वह कब मेरी किताब पढ़ेगी, नहीं जानता। लेकिन ग्रीन पार्क के मकान में सामने के बरामदे पर मैंने रॉकिंग चेयर रख दी है। जाड़ों में कभी अगर दोपहर मे वहाँ जाता हूँ तो मैं साफ देख पाता हूँ कि अपने लंबे बाल खोले रॉकिंग चेयर पर बैठी मेम साहब मेरी किताब पढ़ रही है। ड्राइंग रूम में जाता हूँ तो लगता है, मेम साहब आरगन पर गा रही है....

जीवन-मृत्यु की सीमा के उस पार,
तुम हो खड़े मीत, ओ मेरे प्यार!

अब और क्या लिखूं दोला भाभी ? अब मुझसे लिखा नहीं जाता। ये बातें लिखने में मेरा हाथ तक बेबस हो जाता है। मैं सोच नहीं सकता कि मेम साहब नहीं है। राह-घाट में चलते हुए कुछ दूर पर साँवली-सी खिंची-खिंची आँखों वाली कोई लड़की दीख जाती है तो लगता है, मेम साहब है शायद। मैं लगभग दौड़ता हुआ वहाँ जाता हूँ। पर मेम साहब कहाँ ? उसने अपने को ऐसी ओट में रक्खा है कि मैं तमाम जिंदगी चोर बनकर उसे खोजता फिरूँगा, लेकिन पकड़ नहीं पाऊँगा। मैं सिर्फ यही सोचता हूँ, मुझे इतना कष्ट देकर उसे लाभ क्या है ? क्या उसे जरा भी तकलीफ नहीं होती ? जरा देर के लिए मेरे सामने आती, तो क्या मैं उसे निगल जाता ? आज अब मैं और कुछ नहीं चाहता। सिर्फ कभी-कभी उसे देखना चाहता हूँ, देखना चाहता हूँ उसकी वे घनी काली बड़ी-बड़ी आँखें और वह बड़ा-सा जूड़ा, हलकी-सी हँसी। और ? और क्या चाहूँगा ? चाहने से ही क्या मिलेगा ? अपने माथे पर उसके हाथ का जरा परस पाऊँगा क्या ? मैं यह नहीं सोच सकता कि मैं अब कभी उसे देख भी नहीं पाऊँगा।

दिल्ली में एक साथ ज्यादा दिन मैं टिक नहीं पाता। साल में आठ-दस बार कलकत्ते भाग जाया करता हूँ। जिन सड़कों से मेरी और उसकी स्मृतियाँ जड़ी हुई हैं, उन सड़कों पर घूमता रहता हूँ। सवेरे रासबिहारी मोड़ पर लेडीज ट्राम के लिए और तीसरे पहर एसेम्बली हाउस के कोने पर या हाईकोर्ट के उस तरफ वाले रेस्तरां का चक्कर काटा करता हूँ। उसे तो नहीं देख पाता, परंतु उसकी छाया को देखा करता हूँ।

जानें और कितना क्या करता हूँ ! जहाँ भी मेम साहब की याद छिपी हुई है, समय मिलने पर मैं वहीं दौड़ा जाता हूँ। डायमंड हारबर, काकद्वीप से लेकर दार्जिलिंग के पहाड़ पर, पुरी के समुद्रतट पर, जयपुर की सड़कों पर, सिलिसेर की झील के किनारे। बदले में मिलता क्या है ? सिर्फ आँसू और पंजरा हिलाने वाला लंबी उसाँस ! बस।

कभी-कभी लगता है, मैं भूल हूँ, मिथ्या हूँ, छाया हूँ, अव्यय हूँ ! जो मैं होता है, अपने आप से यों वंचना करके क्या लाभ है ? अगर मेम साहब मुझे ठगकर यों छिपी रह सकती है, तो मैं ही उसे क्यों याद रक्खूं ? इस दईमारी को भूलने के लिए व्हाइट हॉर्स या वेट सिक्स्टीनाइन की बोतलें गटागट पी गया हूँ। पीते-पीते छाती और पेट में जलन उठी है और मैं आपे में नहीं रह सका हूँ, फिर भी उसकी हँसी, उसकी वे दोनों आँखें

मेरी निगाहों के सामने से दूर नहीं गई। बीच-बीच में मन में ऐसा भी आया है कि मैं लंपट, बदमाश, बदचलन बनूँगा; जब जहाँ जो लड़की मिल जाएगी, तब वहीं उसके साथ मौज-मजे करूँगा, लुत्फ उठाऊँगा। सोचा, हाड़-मांस के इस शरीर के साथ आँखमिचौनी खेलूँगा। लेकिन कुछ नहीं कर सका दोला भाभी, कुछ करते नहीं बना। मौका भी हाथ में आया, तो भी नहीं। सोफिस्टिकेटेड सोसाइटी की कितनी ही लड़कियों से मेरी जान-पहचान है। कितनों के साथ घूमा करता हूँ, सिनेमा जाता हूँ, होटल में जाता हूँ, फ्लोर शो में जाता हूँ। कभी-कभी बाहर भी घूमने जाया करता हूँ। लहू-मांस की थोड़ी-बहुत छूत-छात से उनकी जात नहीं जाती, यह मुझे मालूम है, लेकिन मुझसे कुछ नहीं होता। लगता है, मेम साहब मेरी बगल में खड़ी मुस्करा रही है।

मेम साहब को भूलूँ तो कैसे ? उसे भूलना हो तो अपने को भी भूलना पड़ेगा। भूलना पड़ेगा अपने भूत, वर्तमान और भविष्य को। क्या यह संभव भी है ? मैं अगर पागल न होऊँ, तो यह कैसे हो सकता है ? अपने जीवन की अमावस्या के अँधेरे में उससे मेरी मुलाकात हुई थी। अँधरिया पाख के लंबे सफर में अकेली वही मेरी हमसफर थी। पूर्णिमा की चाँदनी में मैं उसे पाऊँ, वह उसके पहले ही भाग गई। उसने मुझे सब कुछ दिया है। कर्म-जीवन में कामयाबी, समाज-जीवन में इज्जत, दिल खोल कर प्यार—सब कुछ दिया। उसने स्वयं कुछ नहीं भोगा। कुछ का भी भाग नहीं लिया। सब कुछ छोड़ गई, ले गई सिर्फ मेरा कलेजा !

इस इतनी बड़ी दुनिया में कितने अनोखे आकर्षण बिखरे पड़े हैं। मनुष्य के मन को लुभाने के लिए देश-देश में संपद-संभोग की बाढ़ बह रही है। कितनी स्त्रियाँ, कितने ही पुरुष तो उसका उपभोग कर रहे हैं। मेरे जीवन में भी बार-बार सुयोग आया है, बहुत बार। अपने देश में, विदेश में—हर जगह। लेकिन मुझसे नहीं हो सका। मेरे मन में ऐसी जमी हुई रुलाई बैठी है कि उस आनंद के करीब जाते ही मैं चिहुँक उठता हूँ। दिल्ली, कलकत्ता, बंबई में रोज शाम को रस का कितना मेला लगता है। कितने बंधु-बांधव, कितनी बांधवियाँ, उस उत्सव में, रस के उस मेले में हिस्सा लेने को आमंत्रित करती हैं। वैसे उत्सवों में उपस्थित भी रहता हूँ, तो होंठों के कोने में सूखी हँसी की एक लकीर खींचकर काकली राय या अणिमा मैत्र को ह्विस्की या शैंपेन का एक और ग्लास बढ़ा देता हूँ, लेकिन उनकी तरह उनमें डूब नहीं पाता। केवल यहीं क्यों, लंदन, पेरिस,

न्यूयार्क में ? वहाँ तो शाम के वाद आदमी माटी पर रहते हुए भी अमरावती और अलकनंदा की सैर करता है। जाने-चीन्हे लोग, स्त्री और पुरुष मुझे होटल में खींच ले जाते हैं, अकेले नहीं रहने देते। लेकिन मैं उनकी तरह उड़कर क्या अमरावती, अलकनंदा पहुँच सकता हूँ ? क्या भूल सकता हूँ अपने को ? नहीं बनता है दोला भाभी, नहीं बनता है। हर वक्त बस यही लगता है, मेम साहब होती, तो बड़ा मजा आता !

मेरे साथ देश-विदेश घूमने की उसे कितनी इच्छा थी ! जब वह मेरे पास थी, तब उसे लेकर घूमने की मुझमें जुरंत नहीं थी। बेकार-सा निकम्मा एक पत्रकार होने के नाते उसके साथ कलकत्ते की सड़कों पर निकलने में भी डर लगता था, लोक-लाज से हिचक होती थी। आज ? आज वह हालत नहीं रही। आज उस सदा के चीन्हे-जाने कलकत्ते के राजपथ पर मैं किसी भी औरत को ले कर घूम सकता हूँ। मुझे मालूम है, कोई मेरी आलोचना नहीं करेगा और करेगा तो उस विश्वनिंदक की मैं परवा नहीं करता। मगर, आज अपनी मेम साहब को मैं कहाँ पाऊँ ? कलकत्ते के जिस राजपथ से पैदल चलते हुए हम दोनों ने भावी-जीवन के सपने देखे थे, आज मैं उस रास्ते पर अकेले ही घूमता हूँ। सुबह से साँझ, साँझ से काफी रात गए तक घूमता रहता हूँ। थक जाता हूँ तो एक प्याला चाय या एक पेग ह्विस्की लेकर बैठ जाता हूँ, लेकिन जिन रास्तों से मेम साहब की स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, उन रास्तों के मोह को जीत कर अपने घर नहीं लौट सकता। सोचता हूँ, अकेले चलते हुए ही मैंने एक दिन मेम साहब को पाया था। भीड़ में मैंने उसे खो दिया। हो सकता है, रास्ते में चलते-चलते ही वह मुझे फिर मिल जाए ! मैं खूब समझता हूँ, इस धरती पर एक और मेम साहब का मिलना कठिन है, गोकि उसके हर कुछ का मेल तो ढूंढ़े मिलता है, पर उसके उस आपरेशन का निशान तो नहीं मिलेगा !

मेम साहब को पाकर मेरे मन में शायद बड़ा घमंड हो गया था। शायद उस जवान प्रेमी की तरह सोचा था—

'जिश्त पर इनक़लाब आने दे
कमसिनी पर सबाब आने दे
ऐ खुदा, तेरी खुदाई पलट दूँगा
जरा लब तक शराब आने दे !

मरने और जीने का फ़ैसला होगा
ज़रा उनका जवाब आने दे !'

शायद हो कि उस जवान प्रेमी की तरह सोचा था, मेरे हृदय में विद्रोह आए, मेरी उस प्राक्-युवती की जवानी आ ले, उसके होंठों पर सरूर आ जाए, तो खुदा की खुदाई को मैं पलट दूंगा।

मैंने भी यही सपना तो देखा था, मेम साहब मिल जाय, फिर तो सारी दुनिया को एक बार मैं दिखा दूंगा। आज मेरे बगल में मेम साहब रही होती, हो सकता है, हम दोनों मिल कर बहुत सारे असंभव को संभव कर देते ! अपनी मातबरी बरकरार रखने के लिए भगवान् ने हमें वह मौका नहीं दिया, ईर्ष्यालु भगवान् ने मुझसे मेरी मेम साहब को छीन लिया। कम्बख्त भगवान् कहीं हमारी तरह लहू-मांस का बना होता, तो समझ सकता कि हमें क्या पीड़ा है, क्या दुःख है ! लेकिन बेजान पत्थरों की ये मूर्तियां हमारे सुख-दुःख, हँसी-रोना, जलन-यंत्रणा को कैसे अनुभव कर सकती हैं ! मनुष्य के मन की बात को नहीं समझें, इसीलिए तो वे पत्थर की मूरत बनकर हमारी हँसी उड़ा रहे हैं, हमारा मखौल कर रहे हैं !

काम-काज, फर्ज-जिम्मेदारी से जरा छुटकारा मिला और अकेले हुआ कि दिमाग में यही सब आलतू-फालतू बातें आ जाती हैं। कभी-कभी ऐसा ख्याल हो आता है, मेम साहब के साथ इतना आनन्द करना उचित नहीं हुआ। भगवान् के बैंक में मेरे नसीब के खाते में जितना आनंद जमा था, मैंने शायद उससे ज्यादा, कहीं ज्यादा आनंद का चेक काट दिया था और अब शायद इसीलिए सारी जिंदगी आँसुओं की किस्तों में वह देना अदा करना पड़ेगा। फिर कभी-कभी यह लगता है, श्याम बाजार के मोड़ पर जैसे फिरपो, ग्रैंड-ग्रेट ईस्टर्न होटल नहीं सोहते, ऐसप्लेनेड के मोड़ पर जैसे छेना की दूकान नहीं सोहती, वैसे ही मेरे पास शायद मेम साहब ठीक नहीं जंचती थी। आइ० एफ० एस० या आइ० ए० एस० या किसी टॉप मार्केंटाइल एक्जीक्युटिव के बगल में वह जैसी जंचती, मेरे बगल में वह संभव था क्या ? लेकिन यदि यही बात थी, तो भगवान् उसे मेरे जीवन में ले क्यों आया ? इस मजाक की जरूरत क्या थी ?

यह सब सोचने लगता हूँ तो अपने आपको मैं सम्हाल नहीं पाता। दिमाग के अन्दर पीड़ा होने लगती है, कलेजे में जोरों का दर्द होता है, हाथ-पाँव शिथिल हो जाते हैं। कभी सोचता हूं, उस दईमारी मुँहजली के

बारे में नहीं सोचूँगा, उसकी स्मृति की याद नहीं करूँगा। इसी भुलाने की नीयत से एक-दो बांधवियों से जरा ज्यादा मिला-जुला, कभी-कभी जरा ज्यादा उछल-कूद मचाया लेकिन एक कदम आगे बढ़ा तो तीन कदम पीछे लौट आया। दूसरी किसी लड़की से मेरी घनिष्ठता मेम साहब बरदाश्त नहीं कर सकती थी। कहती थी, अजी ओ, तुम दूसरी किसी लड़की से ज्यादा मिला-जुला मत करो।

मैं पूछता, क्यों? मैं क्या खोया जा रहा हूँ!

—सो नहीं जानती, मगर मुझे बड़ी तकलीफ होती है।

यही स्मृति, यही बात, मेम साहब का यही मुखड़ा जैसे ही याद आ जाता है, मैं उन बांधवियों के पास से भाग आता हूँ। और, वह अगर दूसरे लोगों से हँसी-ठट्ठा या गपशप करती, तो मैं वह भी बरदाश्त नहीं कर सकता था। उस बार दार्जिलिंग में वह जब आधे घंटे की कहकर दो घंटे तक युनिवर्सिटी के अपने पुराने बंधु-बांधवों से मिल-जुलकर होटल वापस आई, तो मैंने बहुत बकझक की थी। सो आज मुझे बनानी, चंद्रावली या किसी दूसरी लड़की के साथ जहाँ-तहाँ घूमने का क्या अधिकार है? जो अधिकार मैं उसे नहीं दे सका, उस अधिकार का उपभोग मैं किस मुँह से करूँ?

इसीलिए मैं उन लोगों के पास से भाग आता हूँ—भाग कर [illegible] पार्क आता हूँ। मेम साहब के घर। उसने जिसे अपने हाथों लगाया था, उस कटहली चंपे में थोड़ा-सा पानी डाल देता, बरामदे के टेढ़े [illegible] को ठीक करके रख देता हूँ। ड्राइंग रूम में जाकर आरगन की [illegible] [illegible] पोंछ देता हूँ, मेम साहब के पोर्ट्रेट को जरा टेढ़ा रख कर [illegible] [illegible] सामने बैठ जाता हूँ।

पहले सोचा करता था, काम-काज खत्म कर घर लौटूँगा, [illegible] कर गीत सुनूँगा। सोचता था, दो-एक गीत सुना देने के बाद वह कहेगी, दिन भर के बाद घर आए हो, पहले नहा-धोकर खा-पी लो; उसके बाद फिर तुम्हें गाना सुनाऊँगी।

—पहले तुम गाना सुनाओ। बाद में नहाऊँगा।

—नहीं मेरे प्यारे, पहले खा-पी लो, फिर गाना सुनना। खाने-पीने में इतनी लापरवाही न करो।

मेम साहब की बोली सदा के लिए बन्द हो गई। आज मैं कितना भी चाहे लापरवाही करूँ, मना करने वाली, टोकने वाली कोई नहीं है।

कोई नहीं रही मुझे बाधा देने को। और गीत? मेरे जीवन से सुर और छंद सदा के लिए विदा हो गए।

टेप रिकार्डर पर मैंने कितने बड़े-बड़े गवैयों के कितने ही गीतों को रिकार्ड करके रक्खा है! किसी-किसी दिन घंटों ड्राइंग रूम में बैठकर वही सब गाना सुनता हूँ। गीत सुनते-सुनते मैं अपने आप को भूल बैठता हूँ। कभी-कभी सो जाता हूँ। गजानन आकर पुकारता, छोटे साब, रात हो गई। अब आइए, खाना-पीना नहीं करना है?

मैं धीरे से मुस्कुराता। कहता, गजानन, खा-पीकर चैन की नींद ही सोना था, तो तुम्हारी बीवी जी को क्यों खो बैठा?

गजानन नजर बचाकर धोती के छोर से अपना आँसू पोंछ लेता। कहता, छोटे साब, आप अगर इस तरह से अपने को कष्ट देंगे, तो बीवी जी को भी कष्ट होगा।

गजानन की बात पर मैं पागल-सा हो उठता। दप् से जल-सा उठता अचानक। उसे गालियाँ देता, जो मन में आता। फ़िजूल की बात मत बोलो— नानसेंस, इडियट, रासकेल। बीवी जी को कष्ट होगा? खाक होगा तुम्हारी बीवी जी को! जिस औरत ने मुझे जला-जला कर राख कर डाला, उसे कष्ट होगा?

अजीब है! गजानन मेरी बात पर नाराज नहीं होता, सिर्फ रोने लगता।

यह कम्बख्त गजानन मेरा एक और सिरदर्द है। इस अभागे को भी जाने के लिए किसी भाड़ में जगह नहीं मिलती। अपनी बीवी को तो बहुत पहले ही खाए बैठा है। लड़की की भी शादी कब के हो चुकी है। रिटायर करने के बाद से ही जो मेरे कंधे पर सवार हो गया है, सो उतरने का नाम नहीं लेता। कितनी बक-झक करता हूँ, कितनी गालियाँ देता हूँ! कितनी ही बार कहता हूँ, निकल जा यहाँ से। मगर यह अभागा हिलता ही नहीं। मेरी गरदन पर भारी चट्टान की तरह बैठ गया है। ज्यादा कुछ कहो तो इस कदर रोना-धोना शुरू कर देता है कि और कुछ कहते नहीं बनता। कभी-कभी मेरा मन-मिजाज ठीक रहता है, तो पूछता हूँ, गजानन, तनखा नहीं लोगे?

वह अवाक् होकर कहता, तनखा? मैं रुपए लेकर क्या करूँगा छोटे साब? आप खाने-पहनने को देते ही हैं, और क्या चाहिए मुझे?

जरा देर के बाद एक लंबा निःश्वास छोड़कर कहता, क्या हिसाब-

किताब करूँ ? जिससे हिसाब-किताब करने की सोच रक्खी थी, वही तो सारा हिसाब-किताब खत्म करके चली गई ।

इसके बाद भी क्या कुछ कहने की गुंजाइश है ? मैं चुप रह जाता ।

इतने बड़े मकान में अकेला रहता है, इसलिए गजानन को बहुत बार बहुत झमेला झेलना पड़ता है । बहुत-से लोग बहुत तरह के सवाल किया करते हैं । वह किसी से कहता, बीवी जी पढ़ने के लिए विलायत गई हैं, कई साल बाद लौटेंगी । ग्रीन पार्क के ज्यादातर लोग यही जानते हैं कि मेम साहब पढ़ने के लिए विलायत गई हैं । किसी-किसी से वह कह देता, बीवी जी अपने मैके गई हैं । कई महीने बाद लौटेंगी । दो-एक से शायद यह भी कहा है, बीवी जी के बच्चा होने वाला है, कलकत्ते गई हैं ।

कभी-कभी मैं कहता, हाँ रे गजानन, ये सब फिजूल बातें बताने से क्या लाभ है ?

वह कहता, हमारे घर की बात से उन्हें क्या मतलब ? हम क्या उनके घर के बारे में कुछ जानना चाहते हैं ?

गजानन को देखकर बीच-बीच में मैं सचमुच अपना दुःख-कष्ट भूल जाता हूँ । ग्रीन पार्क वाले मकान को उसने इतना सजा-सँवार कर रक्खा है कि क्या बताऊँ ! ड्राइंग रूम, बेड रूम, किचेन, बाथ रूम सब झकमक-झकमक करता है । लॉन में भी कहीं जरा-सी गंदगी नहीं ! देखकर कोई सोच नहीं सकता कि मेम साहब नहीं है, वह अब कभी नहीं आएगी । कभी-कभी मैं भी नहीं सोच सकता । लगता है, गाड़ी लेकर मेम साहब कुछ खरीदने के लिए कनाट प्लेस गई है, तुरंत आ जाएगी !

जिन्हें मेम साहब के बारे में मालूम है, उनमें से बहुतेरे लोग मुझे शादी कर लेने की सलाह देते हैं । कहते हैं, अरे भैया, पागलपन मत करो, ब्याह कर लो । जो चली गई, वह तो कभी लौटने की नहीं । अपने जीवन के साथ यह आँख-मिचौनी क्यों खेल रहे हो ? शादी कर लेने की बात सभी कहते हैं, कहता नहीं है केवल गजानन । ब्याह की बात सुनते ही वह जल-भुन जाता है । कहता है, ये लोग क्या प्यार करना जानते हैं ? इनके दिमाग में तो बस मौज-मजे की बात है । वह मेरा हाथ पकड़ कर कहता, नहीं-नहीं छोटे साब, आप ब्याह कर लेंगे तो बीवी जी स्वर्ग में भी चैन से नहीं रह पाएँगी ।

मैं कोई जवाब नहीं देता । चुप बैठा रह जाता । गजानन भी कुछ देर चुप रहता, फिर कहता, छोटे साब, अगर आप ब्याह कीजिएगा, तो

मुझे जरा पहले ही बता दीजिएगा। मेरे रहते आप इस घर में दूसरी किसी लड़की को नहीं ला सकते।

मेरी काली मेम साहब की कहानी सुन ली दोला भाभी? कैसी लगी? जिसके लिए तुम लोग छिप-छिप कर फुसफुसाती रहीं, जिसके लिए बहुतों ने पीठ पीछे मेरी शिकायतें कीं, यह रहा उस मेम साहब का इतिहास! मेरे जीवन की कहानी।

तुम मेरा ब्याह कराना चाहती हो, ठीक है। लेकिन उस दईमारी मुँहजली की सूनी जगह भर सकने योग्य किसी को पाओगी? बता सकती हो, ऐसी लड़की कहाँ है, जो मेरे ग्रीन पार्क के घर में आकर सुखी होगी? उस रॉकिंग चेयर पर बैठकर किताब पढ़ेगी, आरगन पर गीत गाएगी, ड्राइंग रूम में बैठकर गप्प लड़ाएगी, उस बेड रूम में लेट कर मुझे दुलारेगी—ऐसी हिम्मत किस लड़की की होगी?

टेनीसन की दो पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

टाईम मार्चेस ऑन बट
मेमरी स्टेज़
टॉर्चरिंग साइलेंटली दि रेस्ट
ऑफ आवर डेज़।

लगता है, उन्हीं यादों की जलन लिये मेरी जिंदगी के बाकी दिन गुजरेंगे। है न?

—तुम्हारा बच्चू।